MAHN303CCT

भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा का विकास

एम.ए.

(तृतीय सेमेस्टर के लिए)

पेपर – 11

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

हैदराबाद-32, तेलंगाना, भारत

© Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad

Course : Bhasha Vigyan Aur Hindi Bhasha Ka Vikas

ISBN: 978-81-974230-6-2

First Edition: June, 2024

Publisher	:	Registrar, Maulana Azad National Urdu University
Edition	:	2024
Copies	:	500
Price	:	131/-
Copy Editing	:	Dr. Wajada Ishrat, MANUU, Hyderabad Dr. L. Anil, DDE, MANUU, Hyderabad
Cover Designing	:	Dr. Mohd. Akmal Khan, DDE, MANUU, Hyderabad
Printing	:	Print Time & Business Enterprises, Hyderabad

Bhasha Vigyan Aur Hindi Bhasha Ka Vikas

For

M.A. Hindi

3rd Semester

On behalf of the Registrar, Published by:

Directorate of Distance Education

Maulana Azad National Urdu University

Gachibowli, Hyderabad-500032 (TS), Bharat

*Director:*dir.dde@manuu.edu.in *Publication:* ddepublication@manuu.edu.in

Phone number: 040-23008314 Website: manuu.edu.in

© All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronically or mechanically, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher (registrar@manuu.edu.in)

संपादक

डॉ. आफ़ताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Editor

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar
DDE, MANUU

संपादक-मंडल
(Editorial Board)

प्रो. ऋषभदेव शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
परामर्शी (हिन्दी), दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Prof. Rishabha Deo Sharma
Former Head, P.G. and Research Institute, Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Hyderabad
Consultant (Hindi), DDE, MANUU

प्रो. श्याम राव राठोड़
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अंग्रेज़ी और विदेशी भाषा वि.वि.,हैदराबाद

Prof. Shyamrao Rathod
Head, Department of Hindi
EFL University, Hyderabad

प्रो. गंगाधर वानोडे
क्षेत्रीय निदेशक
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, सिकंदराबाद, हैदराबाद

Prof. Gangadhar Wanode
Regional Director
Central Institute of Hindi
Secunderabad, Hyderabad

डॉ. आफ़ताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar, DDE, MANUU

डॉ. वाजदा इशरत
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (सं)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Wajada Ishrat
Guest Faculty/Assistant Professor (Cont.)
DDE, MANUU

डॉ. एल. अनिल
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (सं)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. L. Anil
Guest Faculty/Assistant Professor (Cont.)
DDE, MANUU

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. आफ़ताब आलम बेग

सहायक कुल सचिव, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

लेखक	**इकाई संख्या**
• **डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह,** असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), राजकीय मॉडल डिग्री कॉलेज, अरनियाँ, खुर्जा, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)	1,2,3,4
• **प्रो. शीला मिश्रा,** पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद	5,6,8,16
• **डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा**, एसोसिएट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नै	7,13,14,15
• **डॉ. पूर्णिमा शर्मा,** पूर्व हिन्दी काउंसलर, डॉ. बी.आर. अंबेडकर सार्वत्रिक विश्वविद्यालय, हैदराबाद	9,10,11,12

विषयानुक्रमणिका

संदेश	:	कुलपति	7
संदेश	:	निदेशक	9
भूमिका	:	पाठ्यक्रम–समन्वयक	11

खंड/ इकाई		**विषय**	**पृष्ठ संख्या**
खंड 1	**:**		
इकाई 1	:	भाषा: परिभाषा, प्रकृति एवं स्वरूप	13
इकाई 2	:	भाषा के विविध रूप	31
इकाई 3	:	भाषा विज्ञान: परिभाषा, क्षेत्र, प्रकार और अध्ययन की प्रणालियां	50
इकाई 4	:	भाषा विज्ञान का इतिहास: भारतीय और पाश्चात्य परंपरा	65
खंड 2	**:**		
इकाई 5	:	ध्वनि विज्ञान	77
इकाई 6	:	रूप विज्ञान	107
इकाई 7	:	वाक्य विज्ञान	132
इकाई 8	:	अर्थ विज्ञान	147
खंड 3	:		
इकाई 9	:	भाषा परिवार एवं भारतवर्ष की भाषाएँ	169
इकाई 10	:	भारतीय आर्य भाषाओं का विकास	187
इकाई 11	:	हिन्दी की बोलियाँ	207
इकाई 12	:	हिन्दी के विविध रूप	233
खंड 4	**:**		
इकाई 13	:	हिन्दी भाषा का व्याकरण – एक परिचय	244
इकाई 14	:	हिन्दी शब्द रचना	267

इकाई 15	:	हिन्दी का भाषिक स्वरूप और स्वनिमिकी	282
इकाई 16	:	लिपि विज्ञान	296
		परीक्षा प्रश्नपत्र का नमूना	**316**

प्रूफ रीडर:

प्रथम	:	डॉ. वाजदा इशरत, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर(सं), दू. शि. नि., मानू
द्वितीय	:	डॉ. एल. अनिल, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (सं), दू. शि. नि., मानू
अंतिम	:	डॉ. आफ़ताब आलम बेग, सहायक कुलसचिव, दू. शि. नि., मानू.

संदेश

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी की स्थापना 1998 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई थी। यह NAAC मान्यता प्राप्त एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है। विश्वविद्यालय का अधिदेश है: (1) उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार और विकास (2) उर्दू माध्यम से व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा (3) पारंपरिक और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना, और (4) महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देना। यही वे बिंदु हैं जो इस केंद्रीय विश्वविद्यालय को अन्य सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों से अलग करते हैं और इसे एक अनूठी विशेषता प्रदान करते हैं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा के प्रावधान पर जोर दिया गया है।

उर्दू माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का एकमात्र उद्देश्य उर्दू भाषी समुदाय के लिए समकालीन ज्ञान और विषयों की पहुंच को सुविधाजनक बनाना है। लंबे समय से उर्दू में पाठ्यक्रम सामग्री का अभाव रहा है। इस लिए उर्दू भाषा में पुस्तकों की अनुपलब्धता चिंता का विषय रहा है। नई शिक्षा नीति 2020 के दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू विश्वविद्यालय मातृभाषा / घरेलू भाषा में पाठ्यक्रम सामग्री प्रदान करने की राष्ट्रीय प्रक्रिया का हिस्सा बनने को अपना सौभाग्य मानता है। इसके अतिरिक्त उर्दू में पठन सामग्री की अनुपलब्धता के कारण उभरते क्षेत्रों में अद्यतन ज्ञान और जानकारी प्राप्त करने या मौजूदा क्षेत्रों में नए ज्ञान प्राप्त करने में उर्दू भाषी समुदाय सुविधाहीन रहा है। ज्ञान के उपरोक्त कार्य-क्षेत्र से संबंधित सामग्री की अनुपलब्धता ने ज्ञान प्राप्त करने के प्रति उदासीनता का वातावरण बनाया है जो उर्दू भाषी समुदाय की बौद्धिक क्षमताओं को मुख्य रूप से प्रभावित कर सकता है। ये वह चुनौतियां हैं जिनका सामना उर्दू विश्वविद्यालय कर रहा है। स्व-अध्ययन सामग्री का परिदृश्य भी बहुत अलग नहीं है। प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ में स्कूल/कॉलेज स्तर पर भी उर्दू में पाठ्य पुस्तकों की अनुपलब्धता पर चर्चा होती है। चूंकि उर्दू विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम केवल उर्दू है और यह विश्वविद्यालय लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों के पाठ्यक्रम प्रदान करता है, इसलिए इन सभी विषयों की पुस्तकों को उर्दू में तैयार करना विश्वविद्यालय की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय अपने दूरस्थ शिक्षा के छात्रों को स्व-अध्ययन सामग्री अथवा सेल्फ लर्निंग मैटेरियल (SLM) के रूप में पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराता है। वहीं उर्दू माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए भी यह सामग्री उपलब्ध है। अधिकाधिक लोग इससे लाभान्वित हो सकें, इसके लिए उर्दू में इलेक्ट्रॉनिक पाठ्य सामग्री अथवा eSLM विश्वविद्यालय की वेबसाइट से मुफ़्त डाउनलोड के लिए उपलब्ध है।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि संबंधित शिक्षकों की कड़ी मेहनत और लेखकों के पूर्ण सहयोग के कारण पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य उच्च-स्तर पर प्रारंभ हो चुका है। दूरस्थ शिक्षा के छात्रों

की सुविधा के लिए, स्व-अध्ययन सामग्री की तैयारी और प्रकाशन की प्रक्रिया विश्वविद्यालय के लिए सर्वोपरि है। मुझे विश्वास है कि हम अपनी स्व-शिक्षण सामग्री के माध्यम से एक बड़े उर्दू भाषी समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होंगे और इस विश्वविद्यालय के अधिदेश को पूरा कर सकेंगे।

एक ऐसे समय जब हमारा विश्वविद्यालय अपनी स्थापना की 25वीं वर्षगांठ मना चुका है, मुझे इस बात का उल्लेख करते हुए हर्ष हो रहा है कि विश्वविद्यालय का दूरस्थ शिक्षा निदेशालय कम समय में स्व-अध्ययन सामग्री तथा पुस्तकें तैयार कर विद्यार्थियों को पहुंचा रहा है। देश के कोने कोने में छात्र विभिन्न दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों से लाभान्वित हो रहे हैं। यद्यपि पिछले वर्षों कोविड-19 की विनाशकारी स्थिति के कारण प्रशासनिक मामलों और संचार में भी काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है लेकिन विश्वविद्यालय द्वारा दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए सर्वोत्तम प्रयास किए गए हैं।

मैं विश्वविद्यालय से जुड़े सभी विद्यार्थियों को इस परिवार का अंग बनने के लिए हृदय से बधाई देता हूं और यह विश्वास दिलाता हूँ कि मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय का शैक्षिक मिशन सदैव उनके लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। शुभकामनाओं सहित!

प्रो. सैयद ऐनुल हसन

कुलपति

संदेश

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को पूरी दुनिया में अत्यधिक कारगर और लाभप्रद शिक्षा प्रणाली की हैसियत से स्वीकार किया जा चुका है और इस शिक्षा प्रणाली से बड़ी संख्या में लोग लाभान्वित हो रहे हैं। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी ने भी अपनी स्थापना के आरंभिक दिनों से ही उर्दू तबके की शिक्षा की स्थिति को महसूस करते हुए इस शिक्षा प्रणाली को अपनाया है। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी का प्रारम्भ 1998 में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से हुआ और इस के बाद 2004 में विधिवत तौर पर पारंपरिक शिक्षा का आग़ाज़ हुआ। पारंपरिक शिक्षा के विभिन्न विभाग स्थापित किए गए।

देश की शिक्षा प्रणाली को बेहतर अंदाज़ से जारी रखने में UGC की अहम् भूमिका रही है। दूरस्थ शिक्षा (ODL) के तहत जारी विभिन्न प्रोग्राम UGC-DEB से मंजूर हैं।

पिछले कई वर्षों से यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) इस बात पर ज़ोर देता रहा है कि दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था को पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था से जोड़कर दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के छात्रों के मेयार को बुलंद किया जाये। चूंकि मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी दूरस्थ शिक्षा और पारंपरिक शिक्षा का विश्वविद्यालय है, अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) के दिशा निर्देशों के मुताबिक़ दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम को जोड़कर और गुणवत्तापूर्ण करके स्व-अध्ययन सामग्री को पुनः क्रमवार यू.जी. और पी.जी. के विद्यार्थियों के लिए क्रमशः 6 खंड- 24 इकाइयों और 4 खंड – 16 इकाइयों पर आधारित नए तर्ज़ की रूपरेखा पर तैयार किया गया है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय यू.जी., पी.जी., बी.एड., डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कोर्सेज़ पर आधारित कुल 17 पाठ्यक्रम चला रहा है। साथ ही तकनीकी हुनर पर आधारित पाठ्यक्रम भी शुरू किए जा रहे हैं। शिक्षार्थियों की सुविधा के लिए 9 क्षेत्रीय केंद्र (बेंगलुरु, भोपाल, दरभंगा, दिल्ली, कोलकत्ता, मुंबई, पटना, रांची और श्रीनगर) और 6 उपक्षेत्रीय केंद्र (हैदराबाद, लखनऊ, जम्मू, नूह, अमरावती और वाराणसी) का एक बहुत बड़ा नेटवर्क मौजूद है। इस के अलावा विजयवाड़ा में एक एक्सटेंशन सेंटर कायम किया गया है। इन क्षेत्रीय केन्द्रों के अंतर्गत 160 से अधिक अधिगम सहायक केंद्र (Learner Support Centre) और 20 प्रोग्राम सेंटर काम कर रहे हैं, जो शिक्षार्थियों को शैक्षिक और प्रशासनिक सहयोग उपलब्ध कराते हैं। दूरस्थ शिक्षा निदेशालय (DDE) अपने शैक्षिक और व्यवस्था से संबन्धित कार्यों में आई.सी.टी. का इस्तेमाल कर रहा है। साथ ही सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश सिर्फ़ ऑनलाइन तरीके से ही दिया जाता है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की वेबसाइट पर शिक्षार्थियों को स्व-अध्ययन सामग्री की सॉफ्ट कॉपियाँ भी उपलब्ध कराई जा रही हैं। इसके अतिरिक्त ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग का लिंक भी वैबसाइट पर उपलब्ध है। इसके साथ-साथ शिक्षार्थियों की सुविधा के लिए SMS और व्हाट्सएप्प ग्रुप एवं ईमेल की व्यवस्था भी की गयी है। जिसके द्वारा शिक्षार्थियों को पाठ्यक्रम के विभिन्न पहलुओं जैसे- कोर्स के रजिस्ट्रेशन, दत्तकार्य, काउंसेलिंग, परीक्षा आदि के बारे में सूचित किया जाता है। गत वर्षों से रेगुलर काउंसेलिंग के अतिरिक्त एडिशनल रेमेडियल क्लासेस(ऑनलाइन) उपलब्ध कराये जा रहे हैं। ताकि शिक्षार्थियों के मेयार को बुलंद किया जा सके।

आशा है कि देश की शैक्षणिक और आर्थिक रूप में पिछड़ी आबादी को आधुनिक शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने में दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की भी मुख्य भूमिका होगी। आने वाले दिनों में शैक्षणिक जरूरतों के अनुरूप नई शिक्षा नीति (NEP 2020) के अंतर्गत विभिन्न पाठ्यक्रमों में परिवर्तन किया जायेगा और आशा है कि यह दूरस्थ शिक्षा को अत्यधिक प्रभावी और कारगार बनाने में मददगार साबित होगा।

प्रो. मो. रज़ाउल्लाह ख़ान

निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

भूमिका

'भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा का विकास' शीर्षक यह पुस्तक मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद के **एमए (हिन्दी) तृतीय सत्र** के दूरस्थ शिक्षा माध्यम के छात्रों के निमित्त **ग्यारहवें प्रश्नपत्र** की स्व-अध्ययन सामग्री के रूप में तैयार की गई है। इसकी संपूर्ण योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के निर्देशों के अनुसार, नियमित माध्यम के पाठ्यक्रम के अनुरूप रखी गई है।

यह पुस्तक निर्धारित पाठ्यचर्या के अनुरूप चार खंडों में विभाजित है। हर खंड में चार-चार इकाइयाँ शामिल हैं। पहले खंड 'सामान्य भाषाविज्ञान' में सम्मिलित चार इकाइयों में भाषा की परिभाषा और स्वरूप, भाषा के विविध रूप, भाषाविज्ञान की परिभाषा, क्षेत्र, प्रकार और प्रणालियाँ तथा उसका इतिहास शामिल हैं। दूसरे खंड की चार इकाइयों में भाषाविज्ञान की चार प्रमुख शाखाओं की जानकारी दी गई है। ये हैं ध्वनि विज्ञान, शब्द/रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान और अर्थ विज्ञान। तीसरा खंड हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास से परिचय कराता है। इसमें शामिल चार इकाइयों में भाषा परिवार, भारतीय आर्य भाषाएँ, हिन्दी की बोलियाँ और हिन्दी के विविध रूप विषयक चर्चा शामिल है। इसी प्रकार, हिन्दी रूप रचना विषयक चौथे खंड में हिन्दी भाषा के व्याकरण, शब्द रचना, भाषिक स्वरूप और लिपि पर केंद्रित चार इकाइयाँ शामिल हैं।

इस पाठ सामग्री के अध्ययन से छात्र भाषाविज्ञान और हिन्दी भाषा के विकास से तो परिचित होंगे ही, भाषाविज्ञान के विविध अंगों का भी सम्यक परिचय प्राप्त कर सकेंगे। इससे भारत और विश्व की भाषाओं के संबंध में वैज्ञानिक समझ का विकास हो सकेगा।

दूरस्थ माध्यम के छात्रों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इस पाठ सामग्री को यथासंभव सरल, सहज, सुबोध, तर्कसंगत और प्रवाहपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

इस समस्त पाठ सामग्री को तैयार करने में हमें जिन विद्वान इकाई लेखकों, आचार्यों, ग्रंथों, ग्रंथकारों और पत्र पत्रिकाओं से सहायता मिली है, उन सबके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

-डॉ. आफ़ताब आलम बेग

पाठ्यक्रम समन्वयक

भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा का विकास

इकाई 1 : भाषा : परिभाषा, प्रकृति एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मूल पाठ: भाषा: परिभाषा, प्रकृति एवं स्वरूप

1.3.1 भाषा की परिभाषा

1.3.2 भाषा का स्वरूप

1.3.3 भाषा की प्रकृति

1.4 पाठ सार

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

1.6 शब्द संपदा

1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

भाषा व्यक्ति के मन के भावों को प्रकट करने करने तथा एक से दूसरे तक अपनी बात को पहुंचाने का सबसे उत्तम साधन है। दूसरे शब्दों में संसार के विभिन्न प्राणियों द्वारा मनोभावों को प्रकट करने के साधनों जैसे अंग-प्रत्यंगों के संचालन, भाव-मुद्राओं और ध्वनि संकेतों को भाषा कहा जाता है। संसार के सभी प्राणियों की अपनी-अपनी कोई कोई न भाषा अवश्य होती है। मानव उनमें से कुछ को समझ पाता है कुछ को नहीं और प्रत्येक भाषा में विचारों के प्रकटीकरण के अपने अपने नियम होते हैं। आदि काल में तो मनुष्य भाषा के अभाव में अपने कार्य प्रायः अंग-प्रत्यंगों के संचालन, भाव-मुद्राओं और विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के माध्यम से करता था। परंतु धीरे-धीरे उसने विचार प्रधान भाषा के माध्यम से भावों को प्रस्तुत करने के लिए निश्चित ध्वनि संकेतों के लिए निश्चित लिपि का विकास किया। आज मनुष्य की भाषा की व्याख्या मुख्य रूप से समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों और भाषा-वैज्ञानिकों द्वारा की जा चुकी है। समाजशास्त्रियों ने स्पष्ट किया कि भाषा का विकास सामाजिक क्रियाकलापों के माध्यम से होता है और इसलिए भाषा सामाजिक अंत:क्रिया का आधार एवं परिणाम दोनों मानी जाती है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य सामाजिक समूहों में संगठित होते हैं और भाषा के द्वारा ही वे अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का विकास कर पाते हैं। भाषा मानव समाज के विकास की आधारशिला है।

भाषा की विभिन्न इकाइयों का अध्ययन, भाषा-विकास, भाषा-परिवर्तन और प्रयोग आदि का व्यावहारिक और प्रयोगात्मक अध्ययन ही भाषाविज्ञान कहलाता है। चूंकि भाषा का सुसंगठित अध्ययन ही भाषाविज्ञान है इसलिए भाषाविज्ञान के आधार पर ही भाषा का सटीक ज्ञान संभव हो पाता है। भाषा की संरचना में ध्वनि, वर्ण, अक्षर, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ आदि इकाइयाँ होती हैं।

1.2 : उद्देश्य

अध्ययन के पश्चात् आप -

1. भाषा की विभिन्न परिभाषाओं से अवगत हो सकेंगे।
2. भाषा की प्रकृति के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. भाषा के स्वरूप के विभिन्न पहलुओं से परिचित हो सकेंगे।

1.3 : मूल पाठ : भाषा : परिभाषा, प्रकृति एवं स्वरूप

'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना है। 'भाष' का अर्थ है 'बोलना' या 'कहना' अर्थात् भाषा वह है, जिसे बोला जाए, जिसके माध्यम से कुछ सार्थक कहा जाए। बोलते तो संसार के प्रायः सभी प्राणी हैं जैसे- गाय, बन्दर, कुत्ता, बिल्ली, चिड़िया आदि। परंतु भाषा विज्ञान के अंतर्गत मानव समुदाय द्वारा विचारों और भाव-विनिमय के साधन के रूप में मौखिक या लिखित रूप को ही भाषा माना गया है। मानव समुदाय द्वारा भावों, विचारों और अभिप्रेत अर्थों को ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करना ही भाषा माना गया है। मानव द्वारा प्रयुक्त भाषा का निर्माण जिन व्यक्त ध्वनियों से हुआ है, उन्हें 'वर्ण' कहा जाता है। स्वर-विकार, मुख-विकृति, इंगन आदि भी भाषा के प्रमुख अंग हैं। ये विशेषताएं अशिक्षित लोगों की भाषा में भी होती हैं परंतु विकसित एवं शिक्षित मानव समुदायों के द्वारा लिखित एवं मौखिक रूप से स्पष्ट उच्चरित ध्वनि व्यवस्था को ही भाषा के नाम से स्वीकार करते हैं। किसी देश, देश-विभाग या बड़ी जाति द्वारा परस्पर विचार विनिमय हेतु प्रयुक्त ध्वनि समूहों को उनके द्वारा प्रयुक्त 'बोली' या 'भाषा' कहा जाता है। इस अर्थ में हिंदी, बंगला, ओड़िया, नेपाली, तिब्बती, चीनी, फारसी आदि भाषाएँ भी 'भाषा' कहलाती हैं। एक भाषा में अनेक स्थानीय और प्रांतीय भेद हो सकते हैं। 'हिंदी एक भाषा है, किंतु इसमें अनेक स्थानीय और प्रांतीय भेद हैं, किंतु हिंदी को अंतरंग भाषाओं और बोलियों को बोलने वाले भी समझते हुए प्रयोग में ला सकते हैं।

1.3.1 भाषा की परिभाषा

विभिन्न भाषाशास्त्रियों ने ‘भाषा’ के शास्त्रीय अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी परिभाषा निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। इनमें भारतीय और पाश्चात्य, प्राचीन और आधुनिक सभी वर्गों के विद्वान हैं। इनमें प्रमुख मत इस प्रकार हैं-

अ) भारतीय परिभाषाकार

1. संस्कृत आचार्य

संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ अग्रलिखित रूप में देखी जा सकती हैं-

महर्षि पतंजलि

पाणिनि की अष्टाध्यायी महाभाष्य में भाषा की परिभाषा करते हुए पतंजलि ने कहा है कि ”व्यक्ता वाचि वर्णां येषां त इमे व्यक्तवाचः।“ जो वाणी से व्यक्त हो उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है। अन्य शब्दों में भाषा वह व्यापार है जिससे हम वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।

भर्तृहरि

भर्तृहरि ने शब्द उत्पत्ति तथा ग्रहण के सम्बन्ध में भाषा को इस प्रकार परिभाषित करते हुए कहा है कि ”शब्द कारणमर्थस्य स हि तेनोपजायन्ते। तथा च बुद्धि विषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते।।“ अर्थात् शब्द व्यापार (भाषा) दो बुद्धियों के बीच विचार आदान-प्रदान का एक माध्यम है।

अमरकोश

अमरकोश में भाषा को वाणी का पर्यायवाची बताते हुए कहा गया है। ”ब्राही तु भारती भाषा गीर् वाग् वाणी सरस्वती।“

काव्यादर्श

काव्यादर्श के अनुसार "यह समस्त तीनों लोक अंधकारमय हो जाते, यदि शब्द रूपी ज्योति से यह संसार प्रदीप्त न होता।"

2. आधुनिक भारतीय भाषा परिभाषाकार

डॉ.मंगलदेव शास्त्री

आपने ‘भाषा’ को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ‘भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किये गये वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं। (तुलनात्मक भाषाशास्त्र)

डॉ. बाबूराम सक्सेना

"एक प्राणी अपने किसी अवयव द्वारा दूसरे प्राणी पर कुछ व्यक्त कर देता है- यही विस्तृत अर्थ में भाषा है।" (सामान्य भाषाविज्ञान)

डॉ. श्यामसुंदर दास

"मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।" (भाषाविज्ञान)

आचार्य किशोरीदास बाजपेयी

"विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द-समूह ही–भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।" (भारतीय भाषाविज्ञान)

डॉ. भोलानाथ तिवारी

"भाषा, उच्चारणावयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।" (भाषाविज्ञान)

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा

"उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।" अथवा "जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते हैं, उस यादृच्छिक, रूढ़, ध्वनि-संकेत की प्रणाली को भाषा कहते हैं।" (भाषाविज्ञान की भूमिका)

सुमित्रानंदन पंत

"भाषा संसार का नादमयं चित्र हैं, ध्वनिमय स्वरूप हैं, यह विश्व की हृदय तन्त्री की झंकार हैं, जिनके स्वर में अभिव्यक्त पाती हैं।"

सीताराम चतुर्वेदी

"भाषा के आविर्भाव से सारा मानव संसार गूँगों की विराट बस्ती बनने से बच गया।

सुकुमार सेन

"अर्थवान कण्ठोदगीर्ण ध्वनि-समष्टि ही भाषा हैं।"

पी.डी. गुणे

''शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।''

देवेंद्रनाथ शर्मा

"उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है। जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते हैं, उस या दृच्छिक, रूढ़ ध्वनि-संकेत की प्रणाली को भाषा कहते हैं।

डॉ.सरयू प्रसाद अग्रवाल

"भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छंद प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है जिससे मानव समाज में अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक-दूसरे को सहयोग देता है।"

श्री नलिनि मोहन सन्याल

"अपने स्वर को विविध प्रकार से संयुक्त तथा विन्यस्त करने से उसके जो-जो आकार होते हैं उनका संकेतों के सदृश व्यवहार कर अपनी चिन्ताओं को तथा मनोभावों को जिस साधन से हम प्रकाशित करते हैं, उस साधन को भाषा कहते हैं।"

आ) पाश्चात्य परिभाषाकार

ब्लॉक एवं ट्रेगर - A Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co-operates".(भाषा स्वैच्छिक ध्वनि संकेतों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से कोई सामाजिक समूह सहयोग एवं अन्तःक्रिया करता है।)

ए.एच.गार्डिनर -"The common definition of speech is the use of articulate sound symbols for the expression of thought." (Speech Language) (विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि-संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उन्हें भाषा कहते है।)

हेनरी स्वीट - "Language may be defined as expression of human thought, by means of speech, sounds or articulate sounds."(The History of Language) (जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उसे भाषा कहते हैं।)

सट्रूटेवेंट - Language is a system of arbitrary vocal symbols by mceans of which member of a social group cooperate and interact" (भाषा यादृच्छिक भाष् प्रतीकों का तन्त्र है जिसके द्वारा एक सामाजिक समूह के सदस्य सहयोग एवं समृपर्क करते हैं।)

क्रोचे - "Language is articulate, limited organised sound, employed in expression".(भाषा उस स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को कहते हैं, जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है।)

हैलिडे- "Language can be thought of as organised noise used in situations, actual social situations, or in other words contextualised systematic sound." (भाषा को स्थितियों, वास्तविक सामाजिक स्थितियों, या दूसरे शब्दों में संदर्भित व्यवस्थित ध्वनि में उपयोग किए जाने वाले संगठित शोर के रूप में माना जा सकता है।)

भाषा के द्वारा मानव वास्तविकता व अवास्तविकता, तथ्य एवं कल्पना, वर्तमान, भूत, भविष्य सभी के विषयों पर विचार प्रस्तुत एवं ग्रहण कर सकता है। भाषा के विषय में भी विचार विमर्श भाषा के माध्यम से ही किया जा सकता है। विचार की अभिव्यक्ति या उन्हें ग्रहण करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का व्यवहार जिस माध्यम से किया जाता है उसे ही 'भाषा' कहा जाता है। भाषाविज्ञान के अध्ययन में सदैव इस बात का ध्यान रखता है कि भाषा एक सामाजिक सुजन, अनुसृजन का वह क्रिया व्यापार है, जो कि वह किसी व्यक्ति विशेष की व्यक्तिगत न होकर सामूहिक सम्पत्ति जैसी है जिसका उपयोग या प्रयोग सभी कर सकते हैं परंतु एकाधिकारी नहीं दिखा सकते हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि भाषा सामूहिक विचार विनिमय हेतु मानव समाज द्वारा निर्धारित एक सर्वउपयोगी सम्पत्ति है जिसके अभाव में मानव समाज के कार्यव्यापारों का संचालन असंभव है। भाषा के मुख्यतः चार मूल स्तंभ होते हैं यथा- वक्ता, श्रोता, शब्द और अर्थ। इन चारों का समेकित स्वरूप भाषा की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भाषाविज्ञान का अध्ययन संभव है और उसके आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य और मनुष्य के बीच, वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का सामूहिक व्यवहार 'भाषा' कहलाता है।

बोध प्रश्न

- किसी एक पाश्चात्य परिभाषाकार की परिभाषा लिखिए ?
- किसी एक भारतीय परिभाषाकार की परिभाषा लिखिए ?

1.3.2 भाषा का स्वरूप

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में भाषा के स्वरूप को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

1. भाषा उच्चरित ध्वनि संकेतों की व्यवस्था है।
2. ध्वनि संकेत यादृच्छिक होते हैं।
3. भाषा व्याकरणिक व्यवस्था है।
4. भाषा संप्रेषण का सहज माध्यम है।

(1) भाषा उच्चरित ध्वनि संकेतों की व्यवस्था है।

सर्वविदित है कि 'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति भाष् धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'स्पष्ट वाणी'। भाषाविज्ञान में वागवयवों से उच्चरित ध्वनिसमूह को ही भाषा कहा या माना जाता है। तालियों की आवाज या पैर पटकने की आवाज, मुख से विशेष प्रकार की ध्वनि निकालना, अन्य प्रकार की ध्वनियां इत्यादि संप्रेषण का आंशिक साधन माने जा सकते हैं परंतु ये 'भाषा' की परिधि में नहीं आते हैं, क्योंकि इनकी ध्वनि न तो सर्वमान्य, सर्वग्राह्य या मानक नहीं होती है। एक व्यक्ति इन ध्वनियों को भिन्न मानसिक स्थितियों में अलग-अलग तरह से निकाल सकता है और अलग-अलग मानसिक अवस्थाओं के अनुसार ग्रहण कर सकता है।

प्राय: प्रश्न के रूप एक तथ्य उपस्थित होता है कि लिपिबद्ध भाषा, ब्रेल लिपि की 'स्पर्श भाषा' या 'मूक-बधिरों की 'संकेत भाषा' को 'भाषा' कहा जा सकता है अथवा नहीं? इसका उत्तर यह है कि निःसन्देह! ये भी भाषा रूप हैं परंतु ये सब उच्चरित भाषा के ही रूपांतरण हैं। मूल रूप से भाषा उच्चरित ही होती है। लिपि उसे दृश्य रूप प्रदान करती है। ब्रेल लिपि स्पर्श रूप में तथा संकेत भाषा दृश्य संकेत रूप में प्रयोग में लाई जाती है। इन माध्यमों से जिस 'अभिप्राय' को श्रोता तक पहुंचाया जाता है, वह वस्तुतः 'शब्द' रूप होता है और माध्यम बहुत व्यापक होते हैं। रेडियो, टेपरेकॉर्डर, टेलीविजन, कंप्यूटर, मोबाइल फोन जैसे संप्रेषण के आधुनिकतम साधन भी इस सत्य को झुठला नहीं सकते कि भाषा आखिरकार शब्द रूप है- उच्चरित ध्वनियों की व्यवस्था ही भाषा है।

भाषा विज्ञान के अंतर्गत जिस भाषा का अध्ययन किया जाता है उसका उच्चारण मनुष्य के मुख के विभिन्न अंगों की सहायता से किया जाता है। इस प्रकार भाव अभिव्यंजना की स्पर्श तथा संकेत-आधारित भाषा इससे स्पष्टत: अलग हो जाती है। इसके अंतर्गत वाचिक तथा लिखित भाषाएँ ही आती हैं। इस प्रकार ध्वनि-संकेत एक भेदक तत्त्व है, जिसका निर्धारण आवश्यक होता है।

2.सार्थक एवं विश्लेषणीय ध्वनि

उन्हीं ध्वनियों को भाषा अध्ययन के अंतर्गत रखा जाता है जो सार्थक होती हैं तथा उनसे सार्थक शब्दों का निर्माण हो सकता है ताकि उनका समुचित विवेचन एवं विश्लेषण किया जा सके।

अ. निश्चित ध्वनि-रूप

क्योंकि किसी न किसी रूप में भाषिक तत्वों की आवृत्ति होती है, इसलिए ध्वनि-रूप का निश्चित होना अनिवार्य होता है। ऐसा न होने पर ध्वनियों के अर्थ बदलते रहेंगे और उनसे किसी

मानक रूप निर्धारित नहीं हो पाएगा और उसके अभाव में ध्वनियों से किसी एक निश्चित प्रयोजन की अभिव्यक्ति न हो सकने के कारण उसे भाषा नहीं कहा जा सकेगा।

ब. पूर्व निर्धारित अर्थ

भाषा के अंतर्गत आने वाली 'ध्वनि' का अर्थ परंपरागत होता है। उदाहरण के लिए 'काम' शब्द को ही लेते हैं। संस्कृत और हिंदी में इस शब्द का अर्थ 'कार्य या इच्छा' निश्चित रूप से स्वीकृत है। 'काम' का एक और निर्धारित अर्थ है जो विशेष संदर्भों में 'यौनइच्छा' के लिए प्रयोग में लाया जाता है और यह भी निश्चित एवं विशिष्ट संदर्भ में प्रयुक्त होता है। परंतु अंग्रेजी में यही ध्वनि 'काम'('Calm) 'शांत' के अर्थ में प्रयुक्त होती है। जो वहां की परंपरा का बोध कराती है। इससे स्पष्ट होता है कि 'काम' शब्द का अर्थ व्यवहृत परंपरा के अनुसार ही दोनों भाषाओं में गृहीत एवं प्रयुक्त होता है।

(2) ध्वनि संकेत यादृच्छिक होते हैं।

हिंदी का यादृच्छिक शब्द अंगे्रजी 'ऑबिटेरी' शब्द का अनुवाद है, जिसका अर्थ है 'उन्मुक्त' या 'स्वच्छंद'। भाषिक ध्वनि संकेतों के यादृच्छिक होने का तात्पर्य यह है कि शब्द और अर्थ के बीच जो संबंध होता है, उसके पीछे कोई तर्कसंगत आधार नहीं होता। उदाहरण के लिए 'पुस्तक'तथा कॉपी शब्द को लिया जा सकता है। पुस्तक से पढ़ने की सामग्री का अर्थबोध होता है और कॉपी से लेखन का बोध होता है परंतु कॉपी में भी जब लिख दिया जाता है तो वह सामग्री भी पढ़ने की हो जाती है पंरतु उसे पुस्तक नहीं कहा जाता है। पुस्तक को अर्थ क्यों है और कॉपी का क्यों निर्धारित हुआ इसका कोई तर्कसंगत उत्तर दे पाना कठिन है क्योंकि पुस्तक में सामग्री टंकित या मुद्रित हो सकती है परंतु कॉपी में हस्तलिखित सामग्री को पढ़ा जाता है। शब्द और अर्थ का संबंध उन्मुक्त जो किसी 'सह-सम्बन्ध' पर आधारित नहीं है।

भारतीय व्याकरण में भी इस प्रश्न पर विचार किया गया है, जिसके अंतर्गत शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंधों का इतिहास ढूँढने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ 'पततीति पत्रम्' या 'गच्छतीति गौः जैसी व्युत्पत्तियाँ 'पत्र' और 'गौ' शब्दों का उनके अर्थों से संबंध जोड़ती है। जो गिरता है वह 'पत्र' (पत्ता) तथा जो चलती है वह गौः (गाय)। ऊपर से देखने पर यह प्रयास शब्द और अर्थ के संबंध का आधार तलाश करता हुआ प्रतीत होता है, परंतु यादृच्छिकता की बात फिर भी वहीं की वहीं रह जाती है। प्रश्न उठता है कि गिरने की क्रिया को 'पत्' और जाने को गम् (गच्छ) क्यों कहते हैं? और फिर गिरना पत्ते के मामले में तथा गौ सिर्फ गाय के लिए ही लागू नहीं होता है। यह किसी अन्य गिरने वाली वस्तु एवं चलने वाली वस्तु पर भी तो समान रूप से लागू हो सकता है। यही बात यह है कि शब्द और अर्थ का संबंध यादृच्छिक ही

होता है। इसीलिए तो भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही अर्थ के वाचक भिन्न-भिन्न शब्द पाए जाते हैं। यदि शब्द विशेष में अर्थ का संबंध तर्क संगत होता तो प्रत्येक वस्तु के लिए सभी भाषाओं में एक ही वस्तु के लिए अलग-अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं, यथा

हिंदी	**संस्कृत**	**अंग्रेजी**	**बंगला**	**ओ़डिया**	**मराठी**
लड़की	बालिका	गर्ल	मेय	टोकी	मुल्गी
लड़का	बालक	बॉय	झेले	टोका	मुल्गा
कुत्ता	कुक्कुरः	डॉग	कुकुर	कुकुर	कुकुर
बेटा	सुत	सन	बेटा	पुअ	पोरगा
बेटी	सुता	डॉटर	मेय	झिअ	पोरगी

सभी शब्दों के विषय में भी यह स्पष्ट नहीं किया जा सकता है कि विशेष जीव या वस्तु को प्रारंभ से गाय, कुत्ता, कुर्सी, लड़का, लड़की, बेटा, बेटी आदि ही क्यों कहा गया है। ये ध्वनियाँ इच्छानुसार निर्धारित कर समाज द्वारा स्वीकार कर ली जाती है। इस प्रकार निश्चित ध्वनियों से निश्चित जीव या वस्तु का बोध होता है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा यादृच्छिक है।

(3) भाषा व्याकरणिक व्यवस्था है।

प्रत्येक मौखिक या लिखित भाषा का अपना व्याकरण होता है, जो उसके नियमों का निर्धारण करता है। मौखिक रूप से सामान्य वक्ता भाषा के नियमों का बहुत सतर्कता से पालन नहीं करता, परंतु बहुत हद तक उस पर भी व्याकरण का नियंत्रण होता ही है। जैसे 'जाना' खाना' सोना, रोना आदि क्रिया रूपों को स्त्री एवं पुरूष द्वारा अलग अलग तरह से वाक्य में प्रयोग में लाया जाता है यथा-

क्रिया रूप	**पुरुष**	**स्त्री**
जाना	जाता हूं।	जाती हूं।
खाना	खाता हूं।	खाती हूं।
सोना	सोता हूं।	सोती हूं।
रोना	रोता हूं।	रोती हूं।

यदि कोई पुरुष 'मैं जाती, खाती, सोती, रोती हूँ' कहता है, तो श्रोता उसके आशय को भले ही समझ लें, यह प्रयोग हास्यास्पद माना जाएगा। इसी प्रकार यदि कोई स्त्री जाता, खाता, सोता, रोता आदि का प्रयोग करती है तो भी अटपटा लगता है, क्योंकि व्याकरण में लिंग के अनुसार प्रयोग निर्धारित हैं और हम सभी उन्हीं के प्रयोग के अभ्यस्त हैं। ऊपर कहा गया है कि भाषा नित्य परिवर्तनील है। प्रयत्नलाघव, अज्ञान और अपूर्ण अनुकरण के कारण उसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। परंतु इन सब परिवर्तनों का नियंत्रण जिस माध्यम से किया जाता है उसे व्याकरण कहा जाता है। 'अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण भाषा में परिवर्तन होते रहते

हैं और व्याकरण से उसे स्थिर रखा जाता है। विद्वानों ने व्याकरण भाषा को पुलिसमैन संज्ञा दी है। जैसे पुलिसमैन मनुष्यों को आपराधिक गतिविधियां करने से रोकते हुए उन्हें नियंत्रण में रखती है उसी प्रकार भाषा में आने वाले परिवर्तनों को बेतरीब होने से बचाती है। यदि व्याकरण की व्यवस्था न हो तो भाषिक अराजकता छा जायेगी और परिवर्तन की गति इतनी तेज हो जायेगी कि एक पीढ़ी की भाषा दूसरी पीढ़ी के लिए समझना कठिन हो जाएगा। इसलिए भाषा के मानकीकरण और स्थिरीकरण के लिए व्याकरण की आवश्यकता होती है। ऊपर से देखने पर परिवर्तन और स्थिरीकरण परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, परंतु भाषा के संदर्भ में ये दोनों साथ-साथ काम करते हैं। परिवर्तन भाषा की केंद्रापगामी तथा स्थिरीकरण केंद्राभिगामी प्रवृत्ति है। इन दोनों में निरंतर संघर्ष चलता रहता है और अंतिम विजय परिवर्तन की ही होती हैं किंतु स्थिरीकरण उसकी गति का नियमन करता है और फलस्वरूप परिवर्तन धीरे-धीरे होता है।

(4) भाषा संप्रेषण का सहज माध्यम है।

मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति होती है दैनिक व्यवहार में अपने भाव या विचार दूसरों तक पहुँचाना। खाने, पीने की या अन्य प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होने पर हम किसी से इनका नाम लेकर मांग सकते हैं और वो उपलब्ध हो जाती हैं। इशारों से इन वस्तुओं की ओर इशारा करते हुए भी इन्हें मांगा जा सकता है परंतु संकेतों की अपनी सीमाएं हैं। संश्लिष्ट भावों और विचारों को उनके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। भाषा के माध्यम से बहुत ही सरलता से वांछित चीजों को मांगा जा सकता है या मन की बात को दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाया जा सकता है। समझा या समझाया जा सकता है।

बोध प्रश्न

- भाषा के किसी एक स्वरूप के आधार बताइए ?
- भाषा कैसी संपत्ति है ?
- संप्रेषण का कैसा माध्यम है ?
- भाषा का नियमन किसके माध्यम से किया जाता है ?

1.3.3 भाषा की प्रकृति

1. भाषा की सामाजिकता

मानव-मुख सार्थक ध्वनियों के माध्यम से भाषिक संदेश संप्रेषित करता है। भाषा का उद्भव और विकास मनुष्य की सामाजिकता के फलस्वरूप हुआ है। पारस्परिक सहयोग, संपर्क और विचारों के एक से दूसरे तक पहुंचाने के उद्देश्य से ही भाषा का विकास किया गया होगा या यों कहा जाए तो गलत न होगा कि संदेश के एक से दूसरे तक संप्रेषण की प्रक्रिया में भाषा विकसित होती गई होगी। बाद में उसका परिमार्जन किया गया। भाषा ही वह कड़ी है जो व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ते हुए समाज का निर्माण करती है। मनुष्य समाज में रहकर ही भाषा का

अर्जन, संवर्द्धन एवं विकास करता है। भाषा भी मनुष्य के व्यवहार का परिमार्जन करते हुए उसे विकास के विभिन्न सोपानों तक पहुंचने में सहायता करती है। समाज में भाषा के विविध रूप विभिन्न समुदायों के अनुरूप ही पाए जाते हैं। इसके साथ ही भाषा समुदायों को पहचान प्रदान करती है। 'भाषा मनुष्य को बोलती है।' यह उक्ति समाज और व्यक्ति के परस्पर संबंध को दर्शाती है। भाषा से ही मनुष्य के उन्नत या सामान्य होने का बोध होता है। ग्रामीण परिवेश में रहने वाले लोगों की तुलना में शहरी क्षेत्र के लोगों की भाषा में अंतर पाया जाता है। समाज में प्रचलित विभिन्न व्यवसायों के अनुसार भी भाषा के रूप पाए जाते हैं।

2. भाषा पैतृक संपत्ति न होकर अर्जित संपत्ति होती है

कोई भी व्यक्ति जन्म से ही किसी भी भाषा में पारंगत नहीं होता है। इसलिए भाषा मनुष्य को पैतृक संपत्ति के रूप में प्राप्त नहीं होती है। मनुष्य उम्र के अलग अलग पड़ावों पर धीरे धीरे और अभ्यास से अर्जन करता है। व्यक्ति कौन-सी भाषा सीखेगा यह उसकी पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। भाषा एक सनातन वस्तु है,जो व्यक्त्िा को परंपरा से प्राप्त होती है। हम अपने परिवार में जो भाषा बोलते हैं, वह बच्चे को अपने माता-पिता से मिलती है, माता-पिता को दादा-दादी, नाना-नानी से और उन्हें उनकी पूर्ववर्ती पीढ़ी से। यह प्रवाह अनादिकाल से इसी प्रकार चला आ रहा है। बचपन से उम्रभर व्यक्ति अनुकरण करके सीखता है। यदि किसी अंग्रेज बच्चे का लालन-पालन हिंदी भाषी माता-पिता करें तो वह बच्चा हिंदी-भाषी के रूप में पहचाना जाता है, क्योंकि वह जन्म से उसके अतिरिक्त कोई अन्य भाषा नहीं जानता है। धीरे धीरे व्यक्ति स्कूल, कॉलेज, रोजगार स्थल, बाजार आदि के अनुरूप भाषा के नवीन रूपों को सीखता है। वस्तुतः भाषा सीखने का कार्य जीवनपर्यंत निरंतर चलता रहता है।

प्राकृतिक रूप से मनुष्य में अनुकरण के माध्यम से क्रियाकलापों को देखते हुए सीखने की प्रवृत्ति होती है और इसी के अनुसार भाषा सीखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति भी एक है। जिस प्रकार मनुष्य अपने से बड़े या समकक्ष लोगों से विभिन्न कार्यों को करना सीखता है उसी प्रकार अन्य सदस्यों का अनुकरण कर भाषा सीख जाता है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में पैदा होने वाला बच्चा अपने सामाजिक पर्यावरण में हिंदी भाषा सीखता है लेकिन यदि उसे जन्म के बाद उड़ीसा, बंगाल, असम या दक्षिण भारत के चेन्नई, बैंगलूर, हैदराबाद में भेज दिया जाए तो वह ओ़डिया, बंगला, असमिया या तमिल, कन्नड़, तेलेगु को अनुकरण करते हुए सीख जएगा। यदि किसी मानव शिशु को जंगल में या किसी ऐसे स्थान पर रख जाए जाहं किसी भी भाषा-भाषी से उसका संपर्क न हो तो वह भाषा सीखने से वंचित रह जाएगा। भाषा का संबंध परंपरा से होता है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अपने आप तथा अभ्यास से पहुंचती है। विभिन्न स्तरों,

इसके मूल रूप में थोड़ा-बहुत परिवर्तन तो कर सकते हैं लेकिन इसमें आमूल-चूल परिवर्तन या बिल्कुल नई भाषा का सृजन एक साथ नहीं कर सकते हैं।

3. भाषा भाव-संप्रेषण का साधन होती है

भाषा के अभाव में मनुष्य को अपने विचारों को एक से दूसरे तक पहुंचाने के लिए संकेतों का सहारा लेना पड़ेगा। मूक लोग सामान्यत: संकेतों के माध्यम से ही अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। परंतु संकेतों की भाषा भावों को पूरी तरह से प्रकाशित नहीं कर पाती है। पूर्ण संदेश संप्रेषण के लिए भाषा का होना आवश्यक है।

4. प्रत्येक भाषा की भौगोलिक और ऐतिहासिक सीमा होती है

प्रत्येक भाषा की स्थान और काल की दृष्टि से सुनिश्चित सीमाऐं होती हैं। जैसे पंजाबी की सीमाएँ, पंजाब, बंगला की बंगाल, ओ़डिया की उड़ीसा, मराठी की महाराष्ट्र, कन्नड़ का कर्नाटक तथा गुजराती की गुजरात प्रदेश तथा अन्य भारतीय भाषाओं की राजनैतिक दृष्टि से सीमाएं बंटी हुई हैं। हमारे देश में भाषाओं के अनुसार प्रांतों की रचना की गई है। अतः भाषाओं की सीमाओं को लेकर कोई अनिश्चितिता की स्थिति नहीं है। परंतु यदि ऐसा न होता तो भी भाषाओं की सीमाएँ स्वतः निर्धारित होती। काल की दृष्टि से भी भाषाओं की व्यापकता निर्धारित की जाती है। उदाहरण स्वरूप आर्य भाषाओं के विकास क्रम को देखने पर पाया जाता है कि मध्यकालीन भाषाओं का समय 500 ई.पू. से लेकर 1000 ई. तक माना गया है। इस 1500 वर्ष के कालखंड में भी 500 ई. पू. से 0 ई. तक का काल पालि भाषा का है। 0 ई. से 500 ई. तक का प्राकृतों का तथा 500 ई. से 1000 ई. तक का समय अपभ्रंश भाषाओं का माना जाता है। यहाँ यह बात स्पष्ट करना भी जरूरी है कि भाषा की सीमाएँ राजनैतिक सीमाओं की तरह सुस्पष्ट नहीं होती। दो भाषाओं के बीच सैकड़ों वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र संधि क्षेत्र होता है, जहाँ दोनों भाषाएँ बोली जाती हैं। जैसे-जैसे हम एक भाषा के केंद्र की ओर बढ़ते हैं, पहली भाषा का प्रभाव कम होता जाता है।

5. प्रत्येक भाषा का अपना स्वतंत्र ढाँचा होता है

ध्वनि, रूपरचना, वाक्यविन्यास और अर्थ की दृष्टि से प्रत्येक भाषा की अपनी स्वतंत्र संरचना होती है। उदाहरणार्थ हमारा परंपरागत मूर्द्धन्य स्वर 'ऋ' मराठी में 'रु' के रूप में उच्चरित होता है और इसी का उच्चारण हिंदी में 'रि' के रूप में होता है। वैदिक भाषा की ध्वनि 'रु' मराठी में अब तक प्रचलन में है। रूप रचना की दृष्टि से भी उपर्युक्त हिंदी तथा मराठी दोनों भाषाओं में स्पष्ट अंतर देखने में मिलता है जहां हिंदी में 'स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग' दो प्रकार की लिंग होते हैं परंतु मराठी में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के अतिरिक्त नपुंसक लिंग का भी वर्तमान तक प्रचलन है। अंग्रेजी में उपसर्ग का प्रयोग होता है, भारतीय भाषाओं में परसर्गों का। हिंदी में

वाक्य-विन्यास कर्ता-कर्म-क्रिया के पदक्रम पर आधारित है। जबकि अंग्रेजी का वाक्य विन्यास कर्ता-क्रिया-कर्म है। उपर्युक्त् से सीधा साधा तात्पर्य यह है कि प्रत्येक भाषा के अपने व्याकरणिक नियम होती है, अपनी संरचना पद्धति होती है।

6. भाषा सर्वव्यापक होती है

यह सर्वमान्य तथ्य है कि विश्व के समस्त कार्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी न किसी भाषा के ही माध्यम से संभव होता है। समस्त ज्ञान भाषा पर आधारित है। व्यक्ति-व्यक्ति का संबंध या व्यक्ति-समाज का संबंध भाषा के अभाव में नहीं हो सकता है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है-

”न सोऽस्ति प्रत्ययों लोके यः शब्दानुगमादृते।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सवं शब्देन भासते।“ (वाक्यपदीय 123.24)

7. भाषा सतत प्रवाहमयी होती है

मनुष्य के साथ भाषा सतत गतिशीली अवस्था में विद्यमान रहती है। भाषा की उपमा प्रवाहमान जलस्रोत-नदी से दी जा सकती है, जो पर्व से निकल कर समुद्र तक लगातार बढ़ती रहती है, अपने मार्ग में वह कहीं सूखती नहीं है। समाज के साथ भाषा का आरम्भ हुआ और आज तक गतिशील है। मानव समाज जब तक रहेगा तब तक भाषा का स्थायित्व पूर्ण निश्चित है किसी व्यक्ति या समाज के द्वारा उसमें परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु उसे समाप्त करने की किसी में शक्ति नहीं होती है।

8. भाषा का पारंपरिक उच्चरित रूप होता है।

भाव संप्रेषण सांकेतिक, आंगिक, लिखित और यांत्रिक आदि अनेक रूपों में होता है, किंतु इनकी भी कुछ न कुछ सीमाएँ हैं अर्थात् इन माध्यमों के द्वारा पूर्ण रूप से भावों की अभिव्यक्ति संभव नहीं है। स्पर्श तथा संकेत भाषा तो स्पष्ट रूप में अपूर्ण होती ही है, साथ ही लिखित भाषा भी पूर्ण रूप से भावों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम नहीं होती है। वाचिक भाषा में आरोह-अवरोह तथा विभिन्न भाव-भंगिमाओं के कारण पूर्ण रूप से प्रभावी अभिव्यक्ति संभव होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण वाचिक भाषा को सजीव तथा लिखित तथा अन्य भाषाओं को निर्जीव भाषा कहा जाता है। वाचिक भाषा का प्रयोग भी सर्वाधिक रूप में होता है।

9. भाषा चिरपरिवर्तनशील होती है

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। संसार की सभी वस्तुओं के समान भाषा भी परिवर्तनशील है। किसी भी देश के एक काल की भाषा परवर्ती काल में पूर्वत् नहीं रह सकती, उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता है। यह परिवर्तन अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण होता है। जिस प्रकार मानव जीवन में कोई भी अंतिम सत्य नहीं होता है वैसे ही भाषा का भी

कोई रूप स्थिर या अंतिम रूप नहीं होता है। भाषा में यह परिवर्तन ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ आदि सभी स्तरों पर होता रहता है। उदाहरण के लिए संस्कृत का 'हस्त' शब्द प्राकृत में 'हत्थ' होकर हिंदी में 'हाथ' के रूप में प्रचलित है। संस्कृत में 'साहस' शब्द हत्या, व्यभिचार आदि के अर्थ में प्रयोग में लाया जाता था जबकि हिंदी भाषा में इसका अर्थ अब 'हिम्मत' हो गया है। भाषा का निर्माण मुख्य रूप से ध्वनियों से होता है, जिन्हें सामान्य रूप से 'वर्ण' कहा जाता है। ये 'वर्ण' स्वर और व्यंजन कहलाते हैं। सर्वविदित है कि भाषा अनुकरण के माध्यम में सीखी जाती है। मूल-भाषा (वाचक-भाषा) का पूर्ण अनुकरण संभव नहीं है। इसके कारण हैं-अनुकरण की अपूर्णता, शारीरिक तथा मानसिक रचना की भिन्नता एवं भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की भिन्नता। इस प्रकार भाषा प्रतिपल परिवर्तित होती रहती है।

10. भाषा मानकीकरण पर आधारित होती है।

भाषा परिवर्तनशील है, यही कारण है कि एक ही भाषा एक युग के पश्चात् दूसरे युग तक पहुँचते-पहुँचते उसमें शब्द से लेकर स्वरूप तक में बहुत सी भिन्नताएं आ जाती हैं। विभिन्न कारण से घटित परिवर्तन के कारण भाषा में विविधता आ जाती है। यदि भाषा-परिवर्तन पर बिल्कुल ही नियंत्रण न रखा जाए तो तीव्रगति के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुछ ही दिनों में भाषा समझने योग्य नहीं रह जाएगी। भाषा में होने वाले परिवर्तनों को पूर्णरूप से रोका तो नहीं जा सकता, किंतु भाषा में बोधगम्यता बनाए रखने के लिए उसके परिवर्तन-क्रम का स्थिरीकरण आवश्यक होता है। इस प्रकार की स्थिरता से भाषा का मानकीकरण हो जाता है। मानक भाषा ही स्थरीकृत रूप से व्यापकता को प्राप्त करती है।

11. भाषा कठिनता से सरलता की ओर जाती है

प्रयत्नलाघव मानव की सबसे सहज प्रवृत्ति है और यही प्रवृत्ति भाषा के विकास पर भी लागू होती है। ध्वनि, रूप, वाक्यरचना आदि सभी क्षेत्रों में भाषा सरलता की ओर बढ़ती रहती है। संस्कृत के संयुक्ताक्षर पालि और प्राकृत में द्वित्ताक्षरों के रूप में परिवर्तित हो गए और बाद में द्वित्व भी समाप्त हो गया। कर्म-कम्म-काम, अक्षि- अक्खि-आंख आदि शब्दों का विकास क्रम कठिन से सरल की ओर परिवर्तन का प्रमाण है। द्विवचन का धीरे-धीरे समाप्त हो जाना, विभक्तियों का घिसना और उनके स्थान पर परसर्गों का प्रयोग में आना, क्रिया के तिड़त रूपों की जगह कृदंतों का प्रचलन भी भाषा की इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। अंग्रेजी में भी Thou, thee, thy आदि सर्वनामों का लुप्त हो जाना, 'स्ट्रांग' क्रियाओं के स्थान पर 'वीक' क्रियाओं के प्रयोग का बढ़ जाना भी भाषा के सरलता की ओर बढ़ने के उदाहरण हैं।

12. भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता और अप्रौढ़ता स प्रौढ़ता की ओर जाती है

भाषा प्रारंभ में स्थूल होती है। धीरे-धीरे सूक्ष्म मनोभावों और विचारों को व्यक्त करने के लिए उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता भी सूक्ष्म होती जाती है। मानव के मस्तिष्क से सीधे जुड़े होने के कारण उसके विकास का प्रभाव भाषा पर पड़ता है। बालक पहले वस्तुओं का ज्ञान उनके स्थूल रूप में ग्रहण करता है। बाद में धीरे-धीरे वह अन्य सूक्ष्म भावों का परिचय प्राप्त करता है। इसी प्रकार भाषा का विकास भी स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता है।

बोध प्रश्न

- भाषा के किसी एक स्वरूप के आधार बताइए ?
- भाषा कैसी संपत्ति है ?

1.4 : पाठ सार

भाषा के संदर्भ में उपरोक्त तथ्य जान लेने के बाद हम उसकी प्रकृति को सरलता से समझ सकते हैं। पहली बात तो यह है कि जब हम भाषा की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य केवल मनुष्यों की भाषाओं से होता है और वह भी ध्वनि संकेतों की उस भाषा से जो लिपि के माध्यम से लिखित रूप में प्रस्तुत होती है। मनुष्य की इस भाषा का मूल आधार विचार होते हैं। इस भाषा को मनुष्य समाज के बीच रहकर सामाजिक अन्तः क्रिया द्वारा सीखता-सिखाता है। और इस भाषा की एक विशेषता यह भी है कि इसमें सदैव परिवर्तन एवं विकास होता रहता है। मनुष्य की भाषा की यही प्रकृति है। विभिन्न प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति तथा संसार के सभी प्राणियों द्वारा अपने-अपने तरीकों से भाषा के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं। सामान्यतः इन्हीं तरीकों को उनकी भाषा कहते हैं।

विचार प्रधान एवं विकासशील भाषा मनुष्य की विशेषता होती है। भाषा और विचार में अटूट संबंध होता है– यूँ भाव और विचारों को अभिव्यक्त करने के प्रयत्न में मनुष्य ने भिन्न-भिन्न ध्वनि संकेतों (भाषा) का विकास किया है परंतु यह भी बात सत्य है कि जैसे-जैसे मनुष्य भाषा सीखता जाता है और उसकी भाषा में विकास होता जाता है तैसे-तैसे वह विचार करने और विचार-विनिमय करने में भी सक्षम होता जाता है। इस प्रकार भाषा एवं विचारों का विकास एक-दूसरे पर निर्भर करता है। सच बात तो यह है कि विचारों के अभाव में भाषा की उत्पत्ति एवं विकास नहीं हो सकता। और भाषा के अभाव में विचारों की उत्पत्ति एवं विकास नहीं हो सकता। इन दोनों में अटूट सम्बन्ध होता है।

भाषा भावाभिव्यक्ति एवं विचार-विनिमय हेतु किसी समाज द्वारा स्वीकृत ध्वनि संकेतों का समूह है-भाषा की उत्पत्ति मनुष्य के मनोभावों को अभिव्यक्त करने के प्रयास से हुई होगी और उसका विकास विचार-विनिमय के द्वारा निरंतर होता रहता है। भाषा ही मनोभावों की अभिव्यक्ति एवं विचार-विनिमय का साधन होती है जो कि निर्धारित ध्वनि संकेतों के माध्यम से होती है। ये ध्वनि संकेत समाज द्वारा विकसित एवं स्वीकृत होते हैं।

भाषा वाचिक प्रतीकों की एक व्यवस्था है– मनुष्यों की सभी भाषाओं में वाचिक प्रतीकों की अपनी-अपनी व्यवस्था है। प्रत्येक भाषा की अपनी मूल ध्वनियाँ (अक्षर या वर्ण) हैं, अपने शब्द हैं और अपनी-अपनी वाक्य रचना है। भाषा सम्बन्धी ये नियम निश्चित होते हुए भी लचीले होते हैं और भाषा के विकास के साथ-साथ इनमें भी परिवर्तन होता रहता है।

भाषा लिपि संकेतों के द्वारा लिखित रूप धारण करती है- भाषा का प्रारंभिक रूप मौखिक होता है और धीरे धीरे स्थरीकरण के प्रयास में उसे लिखित रूप में प्रयोग में लाया जाना लगा ताकि एक काल में व्यक्त विचार एवं भावों को दीर्घकाल तक संरक्षित रखते हुए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संप्रेषित किया जा सके। धीरे-धीरे सभी समाजों ने अपनी-अपनी भाषाओं की मूल ध्वनियाँ निश्चित कीं, उन निश्चित मूल ध्वनियों के लिए भिन्न-भिन्न चिह्न निश्चित किए और इस प्रकार अपनी-अपनी भाषाओं के लिए लिपियों का विकास किया। आज मानव समाज की प्रत्येक भाषा किसी-न-किसी लिपि में लिखी जा सकती है। कुछ लिपियाँ तो ऐसी हैं जिनमें संसार की किसी भी भाषा को लिखा जा सकता है। देवनागरी उनमें से एक है।

1.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित विषय स्पष्ट हो गए हैं –

1. भाषा मानव समुदाय द्वारा विचारों एवं भाव विनिमय के लिए प्रयुक्त माध्यम है।
2. भारतीय परंपरा में माना गया है कि जो वाणी से व्यक्त हो, वह भाषा है।
3. पाश्चात्य विचारकों के अनुसार भाषा स्वैच्छिक ध्वनि संकेतों की व्यवस्था है।
4. भाषा परिवर्तनशील होती है तथा कठिनता से सरलता की ओर बढ़ती है।

1.6 शब्द संपदा

1. यादृच्छिक	–	स्वैच्छिक रूप से चयनित।
2. अंतःक्रिया	–	आपसी आदान प्रदान।
3. पैतृक संपत्ति	–	वह संपत्ति जो विरासत में मिलती है।
4. अर्जित संपत्ति	–	वह संपत्ति जिसे अपने प्रयास से प्राप्त करना पड़ता है।

1.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(1) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

1. भाषा की उपयुक्त परिभाषा देते हुए उसकी विवेचना कीजिए।

2. भाषा के अभिलक्षणों का वर्णन कीजिए।

3. भाषा के स्वरूप पर विस्तार से विचार कीजिए।

4. भाषा की प्रकृति के विभिन्न घटकों पर विस्तार से विचार कीजिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर शब्दों में दीजिए

1. भारत में सबसे कम बोला जाने वाला भाषायी समूह है? →चीनी-तिब्बती
2. ऑस्ट्रिक भाषा समूह की भाषाओं को बोलने वालों को कहा जाता है?→ किरात
3. चीनी-तिब्बती भाषा समूह की भाषाओं के बोलने वालों को कहा जाता है?→ निषाद

खंड - (स)

I. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारत में सबसे अधिक बोले जाने वाली भाषा कौन सी है?

[A] हिंदी [B] संस्कृत [C] तमिल [D] उर्दू

2. निम्न में से कौन सी बोली अथवा भाषा हिंदी के अंतगर्त नहीं आती है?

[A] कन्नौजी [B] बांगरू [C] अवधी [D] तेलुगु

3. भारतवर्ष में हिंदी को आप किस वर्ग में रखेंगे?

[A] राजभाषा [B] राष्ट्र भाषा [C] विभाषा [D] तकनीकी भाषा

4. अधिकतर भारतीय भाषाओँ का विकास किस लिपि से हुआ?

[A] शारदा लिपि [B] खरोष्ठी लिपि

[C] कुटिल लिपि [D] ब्राह्मी लिपि

5. हिंदी भाषा किस लिपि में लिखी जाती है?

[A] गुरुमुखी [B] ब्राम्ही [C] देवनागरी [D] सौराष्ट्री

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. हिंदी अपनी ....बोली का मानक रूप है।
2. भारत में भाषाओं का साहित्यिक विकास ....क्रम है।
3. व्याकरण से ....के अस्तित्व की जानकारी नहीं मिलती है।
4. हिंदी का मानक रूप प्रदान करने का सर्वप्रथम प्रयास ....ने किया।
5. भाषा का आरंभ ....से होता है।

III. सुमेल कीजिए।

ओ़डिया	**मराठी**
1. टोकी	(अ) कुकुर
2. टोका	(आ) पोरगा
3. कुकुर	(इ) मुल्गी
4. पुअ	(ई) मुल्गा
5. झिअ	(उ) पोरगी

1.8 : पठनीय पुस्तकें

1. दिवंगत हिंदी सेवी, संदर्भ ग्रंथ, क्षेमचंद्र सुमन
2. हिंदी भाषा एवं साहित्य को आर्यसमाज की देन, लक्ष्मीनारायण गुप्त
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ.नगेंद्र
4. हिंदी भाषा का इतिहा, धीरेंद्र वर्मा
5. सामान्य भाषाविज्ञान, बाबूराम सक्सेना
6. भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेन्द्रनाथ शर्मा
7. भाषा एवं ध्वनि, पद्मनारायण आचार्य
8. हिंदी भाषा का उदभव एवं विकास, डॉ. उदायनारायण तिवारी
9. हिंदी भाषा का विकासात्मक इतिहास, द्वारिका प्रसाद सक्सेना
10. भाषा विज्ञान, भोलनाथ तिवारी

इकाई 2 : भाषा के विविध रूप

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मूल पाठ : भाषा के विविध रूप

2.3.1 भाषा रूपों के आधार

2.3.2 ऐतिहासिक आधार

2.3.3 भौगोलिक आधार

2.3.4 बोली

2.3.5 उपभाषा

2.3.6 निर्माण के आधार पर

2.3.7 मानक या परिनिष्ठित आधार पर

2.3.8 मानक भाषा

2.3.9 प्रकार्य के आधार

2.3.10 प्रयोग के आधार पर

2.3.11 सम्मिश्रण के आधार पर

2.4 पाठ सार

2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

2.6 शब्द संपदा

2.7 परीक्षार्थ प्रश्न

2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 : प्रस्तावना

सर्वविदित है कि मनुष्य ने समाज का निर्माण किया है और समाज में ही वह नाना नाना प्रकार की व्यवस्थाओं, नियमों का निर्धारण करते हुए विभिन्न विचारधाराओं, प्रकृति के बहुत सारे लोग एक साथ जीवन यापन करते हैं। समाज में एक दूसरे के साथ रहने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है अभिव्यक्ति करने का माध्यम का सुलभ होना। विचारों के आदान-प्रदान के लिए भाषा ही सर्वोत्तम साधन है। मौखिक या लिखित दोनों रूपों में भाषा ही विचारों के

आदान प्रदान का कार्य सुलभ कराती है। प्रस्तुत इकाई में आप ‘भाषा; के विविध रूपों का अध्ययन करेंगे।

2.2 : उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

1. भाषा के विभिन्न रूपों के आधार की जानकारी पा सकेंगे।
2. बोली और उपभाषा से परिचित हो सकेंगे।
3. मानक भाषा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.3: मूल पाठ : भाषा के विविध रूप

2.2.1 भाषा के रूपों के आधार

भाषा शब्द का सामान्य अर्थ होता है– ‘व्यक्त वाक्’ यानी कि ऐसी ध्वनियाँ जिसका मतलब इंसान आसानी से समझता हो और दूसरों को समझा भी सकता हो। जिन ध्वनियों को मनुष्य समझ नहीं पाता है सिर्फ कुछ ध्वनियों का अंदाज लगाकार कुछ समझकर उसका अर्थ लगा लेता है उन्हें अव्यक्त वाक् कहा जाता है जैसे पशु-पक्षी आदि की ध्वनियाँ। भाषा भावों एवं विचारों के आदान-प्रदान का एक माध्यम है। भाषा के कई रूप होते हैं। अध्ययन की सुविधा हेतु इसके रूपों का निर्धारण इतिहास, भूगोल, प्रयोग, निर्माण, मानकता और मिश्रण आदि के आधार पर किया गया है। भाषा के रूपों का निर्धारण अग्रलिखित आधारों पर किया जाता है-

1. ऐतिहासिक आधार

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत के परिप्रेक्ष्य में ही देखें तो पहले यहां संस्कृत भाषा का प्रचलन था। इसी में भारतीय मानस के समस्त कार्य व्यापारों का संचालन किया जाता था। भाषा कठिनता से सरलता की ओर बढ़ती है। संस्कृत से ही लौकिक संस्कृत का विकास हुआ, फिर ‘पालि’ प्रचलन में आई, उसके बाद प्राकृत, अपभ्रंश का दौर आया। अप्रभंश के विभिन्न रूपों से आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ। परंपरागत रूप से भारतीय भाषाओं वर्तमान स्वरूप विकसित हुआ है उसमें द्रविड़ भाषाएं तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं प्रमुख हैं। पालि, प्राकृत, मारवाड़ी/मेवाड़ी, अपभ्रंश, हिंदी, उर्दू, पंजाबी, राजस्थानी, सिंधी, कश्मीरी, मैथिली, भोजपुरी, नेपाली, मराठी, डोगरी, कुरमाली, नागपुरी, कोंकणी, गुजराती, बंगाली, ओड़िआ, असमिया,मणिपुरी आदि प्रमुख भाषाएं हैं।

2. भौगोलिक आधार

भौगोलिक आधार पर विश्व की भाषाओं को चार खंडों(भागों) में बांटा गया है - 1.यूरेशिया खंड 2.अफ्रीका खंड 3.प्रशांत महासागरीय खंड 4.अमरीका खंड। यूरेशिया खंड में यूरोप और एशिया महाद्वीपों में प्रचलित भाषाएं रखी गई हैं। भारोपीय परिवार, द्रविड़

परिवार, चीनी – तिब्बती परिवार, जापानी – कोरियाई परिवार, सामी परिवार, हामी परिवार, यूराल-अल्ताई परिवार,बास्क परिवार,अंडमानी परिवार,इसी खंड के अंतर्गत रखे गए हैं। भौगोलिक स्थिति के अनुसार भाषाओं को भारत में कश्मीरी, पंजाबी, हरियाणी, हिंदी, गुजराती, मराठी, छत्तीसगढ़ी,बंगला, ओ़डिया, असमिया, तेलेगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम, कोंकणी इत्यादि नामों से जाना जाता है। जहां तक प्रश्न है हिंदी भाषा के भौगोलिक विस्तार का तो हिंदी भारत के हिमाचल प्रदेश, पंजाब के कुछ भाग, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार तथा झारखंड में प्रमुखता से प्रयोग में लाई जाती है। प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र भाषाएं एवं बोलियां अपनी भौगोलिक विशिष्टिताओं के साथ प्रयोग में लाई जाती हैं। भौगोलिक दृष्टि से अधिक व्यापक रूप भाषा है, फिर बोली, फिर स्थानीय बोली। इसका संकीर्णतम रूप है- 'व्यक्ति बोली'। हिंदी के अंतर्गत पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, वर्ग हैं। एक उपभाषा में भी एकाधिक बोलियां हो सकती हैं जैसे- पूर्वी हिंदी में अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी इत्यादि। एक बोली में कई उपबोलियां हो सकती हैं, जैसे- अवधी में पश्चिमी जौनपुर की 'बनौधी' तथा रायबरेली में 'बछरावां' आदि। एक उपबोली में कई स्थानीय बोलियां हो सकती है जैसे 'कुमायूनी की बोली 'रौ-चौभैसी' के स्थानीय रूप हैं 'राममढ़िया, छखातिया।

3. प्रयोग का आधार

भाषा का रूपों का निर्धारण या विभाजन का तीसरा आधार है- प्रयोग। प्रयोग साधु है या असाधु? कौन प्रयोग करता है? कहाँ करता है? कैसे करता है? किस विषय के लिए प्रयोग होता है ? प्रयोग किया जा रहा है या समाप्त हो गया है? आदि प्रश्नों का उत्तर ढूंढा जाता है और उसके आधार पर रूपों का विभाजन किया जाता है। जैसे - साहित्यिक भाषा, जातीय भाषा, व्यावसायिक भाषा, कार्यालयीन भाषा, बैंक की भाषा, शेयर बाजार की भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, गुप्त भाषा, कूट भाषा, जीवित भाषा, मृत भाषा इत्यादि।

4. निर्माण का आधार

'निर्माण' भाषा के रूपों के निर्धारण का चौथा आधार है। यदि किसी भाषा का निर्माता समाज है, वह परंपरागत रूप से प्रचलन में लाई जा रही है, तो उसे भाषा कहते हैं। जैसे सहज भाषा (सामान्य रूप से बोलचाल की भाषा जैसे हिंदी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच इत्यादि) यदि एक-दो व्यक्तियों या कुछ निर्धारित मात्रा में प्रयोग के लिए उसका निर्माण किया है तो उसे 'कृत्रिम भाषा' कहते हैं। जैसे- एस्पेरेंतो एवं इडो इत्यादि। कृत्रिम भाषा के भी दो भेद माने जाते हैं जैसे-

सामान्य (एस्पेरेंतो) तथा गुप्त भाषा जैसे- सेना, दलालों, डाकुओं, किन्नरों आदि की भाषा। इस श्रेणी की भाषा की शब्दावली एवं प्रयोग निर्धारित या पारिभाषित होते हैं।

5. मानकता का आधार

जब कोई भाषा आदर्श मान ली जाती है और पूरे क्षेत्र से ससंबंधित कार्यों के लिए उसका प्रयोग हो तो वह मानक भाषा कहलाती है। मानकता का मुख्य आधार भाषा का शुद्ध और व्याकरण सम्मत होना होता है। अशुद्ध या अमानक प्रयोग इससे पूरी तरह अलग रखे जाते हैं। जैसे हिंदी भाषा में शुद्ध वाक्य है, मुझे जाना है। इसके लिए मैंने जाना है, मेरे को जाना है इत्यादि रूप अमान्य हैं। अमानकता ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ किसी भी में भी हो सकती है परंतु प्रत्येक मानक भाषा में सर्वस्वीकृत रूपों का प्रयोग अपेक्षित होता है।

6. सम्मिश्रण का आधार

दो भाषाओं के मिश्रण से नई भाषा बन जाती है या बना ली जाती है जैसे पिजन, क्रियोल

बोध प्रश्न

- भाषा के रूपों का निर्धारण के प्रमुख आधार कौन कौन से हैं?
- ऐतिहासिक आधार पर भाषा के भेद कैसे किए जाते हैं?
- मानक भाषा का आधार समझाइए?

2.3 भाषा के रूप

विभिन्न आधारों पर भाषा के रूपों पर अग्रलिखित रूप में दृष्टिपात किया जा सकता है-

2.3.1 ऐतिहासिकता के आधार पर

(1) मूल भाषा

`इसे उद्गम भाषा के रूप में भी जाना जाता है। विभिन्न आधारों पर भाषा के कई रूप हो सकते हैं परंतु सभी भाषाओं का कोई न कोई मूल रूप अर्थात मूल भाषा अवश्य रही होगी। इस जगत में प्रत्येक वस्तु, प्राणी जो कि परिवर्तनशील है उसका कोई न कोई मूल रूप अवश्य रहा होगा जो कि कालक्रम के साथ विकास को प्राप्त करते करते अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुंची है। मानव समुदाय आज अपने उन्नततम रूप में माना जाता है इसकी सृष्टि का मूल आदि पुरुष 'मनु' को माना जाता है। भाषाएं भी अपने प्रारंभिक या मूल रूप से विकसित होती हुई अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुंची हैं। प्रत्येक भाषा की की भी कोई न कोई एक मूल भाषा रही होगी। उदाहरण के लिए 'मूल भारोपीय भाषा' आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की मूल भाषा मानी जाती है।

(2) प्राचीन भाषा

जिस भाषा का प्रयोग प्राचीन काल में किया जाता रहा हो वे प्राचीन भाषाएं कहलाती हैं जैसे- संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, हिब्रू, इत्यादि।

(3) मध्य कालीन भाषा

प्रदेश देश के इतिहास में आदि, मध्य और आधुनिक या वर्तमान काल का विभाजन होता है। भाषा का इतिहास भी इससे अछूता नहीं होता है इसलिए मध्य काल में जिस या जिन भाषा या भाषाओं का प्रयोग किया जाता रहा हो वे मध्यकालीन भाषाएं कहलाती हैं। जैसे भारतीय संदर्भ में पालि, प्राकृत, अपभ्रंश इत्यादि।

(4) आधुनिक भाषा

जिन भाषाओं का प्रयोग आधुनिक या वर्तमान काल में किया जा रहा हो वे आधुनिक भाषाएं कहलाती हैं, जैसे हिंदी, अंग्रेजी, ओड़िया, मराठी, बांग्ला, असमिया इत्यादि।

बोध प्रश्न

- प्राचीन भाषा से तात्पर्य क्या है।
- मध्यकालीन भाषा से हम क्या समझते हैं।
- आधुनिक भाषा से हम क्या समझते हैं।

2.3.2 भौगोलिकता या क्षेत्रीयता के आधार पर भाषा के रूप

बोलियों के विकसित होने का प्रमुख कारण भौगोलिक परिस्थिति या प्राकृतिक परिवर्तनों को माना जाता है। ऐसा मत है कि एक ही भाषा के बोलने वाले लोगों के समूह से जब कुछ लोग प्राकृतिक घटनाओं या फिर किसी अन्य कारणों से अलग हो जाते होगें परिणामस्वरूप उनका अपनी मूल भाषा से उसका संबंध टूट जाता होगा। उनमें मूल भाषा के सीखे गए अंश तो रहते होंगे परंतु मूल रूप के आगे उसका विकास अवरुद्ध हो जाता होगा और देश काल और वातावरण के अनुसार उनका भाषा रूप एक अलग दिशा को अपना लेता होगा। धीरे धीरे इसी से एक अलग तरह की बोली विकास होता होगा। यह तो रही बात प्राकृतिक रूप विलगाव की परंतु कई बार ऐसा भी होता होगा कि लोग राजनीतिक या आर्थिक कारणों से कुछ लोग अपना क्षेत्र छोड़कर दूर किसी अन्य क्षेत्र में चले जाते होंगे और इस तरह से वहां पहले से प्रचलित भाषा रूप के साथ मिश्रण के फलस्वरूप नई बोली विकसित हो जाती होगी। यही बोली विकसित होते होते एक सम्पूर्ण भाषा के रूप परिवर्तित हो जाती होगी।

(1) व्यक्ति बोली

प्रत्येक सवाक् व्यक्ति जिस भाषा रूप के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है उसे ही सामान्यत: व्यक्ति बोली कहा जाता है क्योंकि विचारों को अभिव्यक्त करने का तरीका प्रत्येक मनुष्य का अलग-अलग होता है, जिसमें ध्वनि प्रयोग, शब्द, वाक्य चयन एवं शैली की प्रमुख भूमिका होती है। इसी के आधार पर अक्सर श्रोताओं द्वारा सुनकर ही समझ लिया जाता

है कि 'अमुक वक्तव्य अमुक व्यक्ति का है।' मनुष्य का स्वभाव चंचल एवं परिवर्तनशील माना जाता है क्योंकि वातावरण, परिस्थिति एवं व्यापार के अनुसार व्यक्ति की बोली में भी निरंतर देखा जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति-भाषा (बोली) हमेशा एक जैसी नहीं रहती है परंतु उसका मूलरूप उसके प्रत्येक वक्तव्य से झलकता ही है। इसलिए कहा जाता है कि 'व्यक्ति भाषा नहीं बोलता है। भाषा व्यक्ति को बोलती है।'

बहुत से व्यक्तियों की बोलियों से मिलकर एक स्थानीय बोली बनती हैं जो ध्वनि, वाक्य एवं अर्थ के स्तर पर उस स्थान विशेष पर बोली एवं समझी जाती है। किसी छोटे स्तर पर बोली जाती है जिनमें व्यक्ति बोलियों का समाविष्ट रूप होता है। एकाधिक स्थानीय बोलियों के समेकित रूप में प्रयोग में लाए जाने पर उप बोली का निर्माण होता है, जैसे भोजपुरी की छपरिया, खकार, सहावारी, गोरखपुरी, नागपुरिया आदि अनेक उप बोलियां हैं।

(2) उपबोली या स्थानीय बोली

किसी छोटे क्षेत्र की ऐसी व्यक्ति-भाषाओं का सामूहिक रूप, जिनमें आपस में कोई स्पष्ट अन्तर न हो, स्थानीय बोली या उपबोली कहलाती है। एक बोली के अन्तर्गत कई उपबोलियाँ होती हैं। आदर्श, परिनिष्ठित, टकसाली या मानक भाषा। किसी विस्तृत क्षेत्र में जब कोई विभाषा उसी क्षेत्र की हो, अथवा शहर की शिष्ट समुदाय के व्यवहार की बन जाती है तो वह 'टकसाली भाषा' कहलाने लगती है। यह भाषा आदर्श रूप धारण कर लेती है और उस क्षेत्र के सभी कार्यों का साधन बन जाती है। साहित्य का माध्यम भी यही होती है। इसकी प्रभुता के कारण सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक आदि होते हैं।

(3) बोली

किसी सीमित क्षेत्रों में विचारों, भावों के आदान-प्रदान के लिए प्रयोग में लाया जाना वाला भाषा रूप 'बोली' कहलाता है। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि स्थानीय व्यवहार में अल्पविकसित रूप में प्रयुक्त होने वाला भाषा रूप 'बोली' होता है, जिसका लिखित रूप न होकर मौखिक रूप ही प्रधान होता है। जब किसी बोली के बोलने वालों की संख्या बढ़ते बढ़ते बहुत अधिक हो जाती है तो वही भाषा के रूप जानी जाने लगती है। इसलिए कहा जा सकता है कि भाषा का अल्प-विकसित रूप 'बोली' कहलाता है। इसमें साहित्य रचना नहीं होती। बोली में ही मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोकगीत, लोककथाओं आदि का सौंदर्य देखा जा सकता है। इससे एक अंचल विशेष प्रभावित होता है। केवल प्रचलित मौखिक रूप होने के कारण यह स्थान-स्थान पर बदलती रहती है। इसकी तुलना में भाषा का क्षेत्र व्यापक होता है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में 650 से अधिक बोलियां बोली जाती है, जैसे हिंदी की ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेली, कन्नौजी, बघेली, हरियाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, कुमाऊनी, मैथिली, नागपुरी, मालवी, खोरठा, भोजपुरी, हड़ौती, पंचपरगनिया, मगही आदि। इसी प्रकार भारत में प्रचलित प्रत्येक भाषा की कई बोलियां पाई जाती है जैसे- कटकी, गंजामी, संबंलपुरी आदि ओ़डिया भाषा की बोलियां हैं। राढ़ी, वरेंद्री, रंगपुरी, मानभूमि, सुंदरबनी आदि बंगला की बोलियां हैं। बेराड, दोमारा, कोमाटी, गोलारी, दसारी, कमाठी, वडगा, गोदावरी, तोरपू, सालेवारी, तेलंगाना, वडारी, पश्चिम, श्रीकाकुला, गुंटूरू, नेल्लूरु, रायलसीमा, प्रकाशम, यानादी तेलुगु भाषा की कुछ प्रमुख बोलियाँ हैं। क्षेत्र के आधार पर हिंदी की बोलियों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है-

पूर्वी हिंदी	-	अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि।
पश्चिमी हिंदी	-	खड़ी बोली, हरियाणवी, ब्रजभाषा, बुंदेली, कन्नौजी आदि।
राजस्थानी हिंदी	-	जयपुरी, जोधपुरी, मेवाड़ी, हाड़ौती, मेवाती आदि।
पहाड़ी हिंदी	-	गढ़वाली, हिमाचली, कुमाऊँनी, मॅडियाली आदि।
बिहारी हिंदी	-	मैथिली, मगही, भोजपुरी, अँगिका, वज्जिका आदि।

(4) उप भाषा

एकाधिक उप बोलियों के मिलने पर जो रूप विकसित होता है उसे 'बोली' या विभाषा कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने कुछ बोलियों के उप वर्ग को उपभाषा भी कहा है जैसे-बिहारी उपभाषा में भोजपुरी मैथिली और मगही बोलियों का वर्ग है। जब बोली का क्षेत्र बढ़ जाता है और उसमें साहित्य-रचना भी की जाती है, तो बोली उपभाषा बन जाती है। जैसे-खड़ी बोली, मैथिली, अवधी और ब्रजभाषा ये चारों ही बोलियाँ हैं, किंतु इनमें साहित्य की रचना की गई है। इस कारण ये चारों उपभाषाएं कहलाती हैं। इन चारों में ही विपुल एवं उत्तम साहित्य उपलब्ध हैं। किसी साहित्यकार विशेष के कारण भी 'बोली' विशेष को 'विभाषा' का रूप प्राप्त होता है जैसे - सूर और जायसी द्वारा रचित उल्लेखनीय साहित्य के कारण क्रमशः ब्रजभाषा और अवधी को विभाषा का स्तर प्राप्त हुआ।

(5) भाषा

भाषा का क्षेत्र व्यापक होता है जिसमें एक से अधिक बोलियों अथवा उपभाषाएं मिलकर एक भाषा का निर्माण करती हैं। एक भाषा के अंतर्गत एकाधिक बोली हो सकती हैं, जैसे हिंदी भाषा के अंतर्गत खड़ी बोली ब्रजभाषा अवधी भोजपुरी हरियाणवी मारवाड़ी आदि 18 बोलियां

शामिल हैं। भाषा में ऐतिहासिकता, जीवंतता, स्वायत्तता तथा मानवता चार गुण अनिवार्य माने गए हैं। ऐतिहासिकता से अभिप्राय भाषा की परंपरा और विकास से है। जीवंतता से अभिप्राय उसके प्रयोग और प्रचलन से, स्वायत्तता से तात्पर्य आज से सभी कार्य क्षेत्र में इसका प्रयोग होने से है तथा मानकता से तात्पर्य उसकी प्रयोगत एकरूपता से है।

विकासक्रम की दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि जो पहले बोली हुआ करती थी वह पूर्णत: विकसित भाषा का रूप धारण कर लेती है। 'खड़ी बोली' इसका स्पष्ट उदाहरण है। 'खड़ी बोली' दिल्ली के आसपास की बोली थी। शासन का आश्रय प्राप्त करके वह विस्तृत क्षेत्र में फैलती गयी और क्रमशः परिमार्जित एवं विकसित होकर आज एक पूर्ण भाषा के रूप में गृहीत हो चुकी है। इसके विपरीत भाषा के रूप में प्रचलित 'ब्रज भाषा', जिसमें हिंदी साहित्य का अधिकांश साहित्य रचा गया, वह वर्तमान में सिमट कर 'ब्रज बोली' हो गई है।

(6) भाषा और बोली में अंतर

भाषा और बोली के मध्य तीन उल्लेखनीय अंतर हैं-

- बोली का कोई परिनिष्ठित रूप नहीं होता है, भाषा का एक परिनिष्ठित रूप होता है।
- बोली में विविधरूपता कम होती है, विविधरूपता भाषा का प्राण है।
- अनेक बोलियों के सामूहिक रूप का नाम ही वस्तुतः भाषा है। "चार कोस पै पानी बदले, आठ कोस पै बानी" वाली लोकोक्ति के अनुसार बोली का क्षेत्र बहुत ही सीमित होता है।
- भाषा का क्षेत्र अपेक्षाकृत बड़ा होता है जबकि बोली का क्षेत्र सीमित।
- एक भाषा में कई बोलियाँ समाहित हो सकती है जबकि एक बोली में एक से अधिक भाषा नहीं हो सकता है।
- भाषा मानक रूप में उपलब्ध होता है जबकि बोली आमतौर पर बस बोल-चाल की भाषा में ही अभिव्यक्ति का माध्यम होती है।
- बोली में विविधता का अभाव होता है जबकि भाषा में विविधता प्रमुख तत्व होता है।
- ऐसा भी हो सकता है कि बोली कुछ समय पश्चात समाप्त हो जाए पर भाषा इतनी जल्दी समाप्त नहीं होती है।
- बोली में शिष्टता का अभाव होता है इसीलिए इसे असाधु भाषा भी कहा जाता है जबकि भाषा चूंकि व्याकरणीय नियमों से बंधी होती है इसीलिए इसे शिष्ट भाषा साधू भाषा कहा जाता है।

(7) विभाषा

जब किसी बोली के प्रयोग क्षेत्र में विस्तार होते होते वह एक बड़े क्षेत्र में बोली जाने लगती है। इसके फलस्वरूप वह परिमार्जित होते हुए परिनिष्ठित रूप में प्रयोग में लाई जाने लगती है, है, तब वह विभाषा कहलाती है, जैसे अवधी और ब्रजभाषा। अवधी और ब्रजभाषा ने जायसी, तुलसी और सूर के कारण बोली से विभाषा का पद प्राप्त किया। बोली का यह विकसित रूप, बोली और भाषा के बीच की कड़ी कहलाता है। विभाषा की अपनी कोई निर्धारित लिपि नहीं होती है वह किसी न किसी भाषा की लिपि का आश्रय लेती है। एक विभाषा बोलने वाला व्यक्ति दूसरी विभाषा को समझ सकता है, किंतु एक भाषा-भाषी दूसरी भाषा तब तक नहीं समझ सकता जब तक वह उस भाषा की लिपि सीख नहीं लेता है। एक भाषा के भौगोलिक क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक विभाषाएँ बोली जा सकती हैं। इसी कारण एडवर्ड सपीर ने भाषा और विभाषा में कोई अंतर नहीं माना है। लेकिन जॉर्ज ग्रियर्सन के कथनानुसार, "भाषा और विभाषा में वही अंतर है जो पहाड़ और पहाड़ी में है।" यद्यपि भाषा, विभाषा से भिन्न है, किंतु शुद्ध भाषावैज्ञानिक दृष्टि से दोनों में मौलिक भेद नहीं है। विभाषा का ही एक नाम उपभाषा है। उपभाषा और विभाषा के विकास की कहानी समान ही है। इन्हीं दोनों को कभी-कभी प्रांतीय भाषा भी कह दिया जाता है। इस संबंध में डॉ. श्यामसुंदर दास का यह कथन है कि- एक प्रांत या उपप्रांत की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा 'विभाषा' कहलाती है। हिंदी के कई लेखकों ने विभाषा को उपभाषा अथवा प्रांतीय भाषा भी माना है।

बोध प्रश्न

- भौगोलिक या क्षेत्र के आधार पर भाषा रूप कितने होते हैं?
- भाषा और बोली में क्या अंतर है?
- विभाषा क्या है?

2.3.3 प्रयोग के आधार पर भाषा के रूप

(1) सामान्य बोलचाल की भाषा

किसी भी समाज में दैनिक क्रिया कलापों के लिए प्रयोग में लाए जाने वाला भाषा रूप ही 'सामान्य भाषा' भाषा कहलाता है। यह साधारतणत: संपर्क भाषा का काम करती है यह अपनी विभिन्न भाषिक इकाइयों शब्दावली और व्याकरणता के आधार पर अपनी पहचान बनाती है।

(2) साहित्यिक भाषा

यह भाषा का वह आदर्श एवं परिनिष्ठित रूप होता है जिसका प्रयोग साहित्य रचना तथा शिक्षा आदि में किया जाता है। साहित्यिक भाषा निश्चित सी होती है परंतु कभी-कभी सामान्य भाषा के नियमों को तोड़ती है। विशिष्ट चयन संयोजन से यह विशिष्ट भाषा बन जाती

है। हिंदी के अतिरिक्त भारत की संविधान सवीकृत 22 भाषाएं, अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, जर्मन, चीनी आदि भाषाएं साहित्यिक भाषा के रूप में भी प्रयुक्त होती हैं।

(3) व्यावसायिक भाषा

विभिन्न व्यवसायों के अपने उत्पाद होते हैं और उनकी अभिव्यक्ति के लिए अलग-अलग भाषा रूप भी होते हैं। व्यवसायों में प्रयोग में लाए जाने के कारण यह विशेष रूप धारण करती है। यह प्राय: औपचारिक एवं अनौपचारिक और तकनीकी या अर्ध तकनीकी हो सकती है। इसका प्रयोग लिखित और मौखिक दोनों रूपों में किया जाता है। इसकी व्यवसाय या व्यापार संबंधी अपनी विशिष्ट शब्दावली और संरचना होती है। जैसे– अंग्रेजी वैश्विक स्तर पर व्यापार और शिक्षा की भाषा है। इसलिए अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य पर विकसित होने की इच्छा रखने वाली किसी भी कंपनी के लिए अंग्रेजी आवश्यक है। चीनी(मंदारिन) चीन-तिब्बती भाषाओं का एक समूह है, इसे प्रायः दुनियां में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा कहा जाता है। जिसमें कुल 1 बिलियन स्पीकर हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था में इसकी प्रमुख स्थिति इसे व्यापार के अवसरों का एक उल्लेखनीय स्रोत बनाती है। अंतरराष्ट्रीय स्तर की व्यावसायिक भाषाओं में अंग्रेजी और चीनी के बाद स्पेनिश, अरबी, जर्मन, रूसी, फ्रेंच और जापानी प्रमुख है। अपने निरंतर विस्तार के साथ हिंदी भी इस सूची में जुड़ गई है।

(4) कार्यालयी भाषा

कार्यालय भाषा का प्रयोग सरकारी कार्यालयों, निकायों, कंपनियों, प्रशासन आदि में किया जाता है। इसकी शब्दावली विभिन्न प्रयोजनों के अनुसार निर्धारित एवं पारिभाषित होती है। यह तकनीकी भाषा भी कही जाती है इसलिए यह प्राय: औपचारिक शैली में लिखी जाती है इसके मौखिक रूप के स्थान पर लिखित रूप का अधिक प्रयोग होता है।

(5) राजभाषा

यह सरकार और जनता के बीच प्रयोम में लाई जाने वाली भाषा होती है। यह प्राय: परिनिष्ठित और मानक होती है और यह किसी भी देश में अधिक बोले जाने वाली भाषा होती है। इसमें विषय अनुसार शब्दावली और संरचना का प्रयोग होता है। इसका प्रयोग प्राय सरकारी मंत्रालयों कार्यालयों कंपनियों नियमों निकायों संसद आदि में किया जाता है ताकि जनता के साथ संबंध बनाया जा सके। सर्वजन सर्व कार्य सुलभ बनाने के लिए इसकी शब्दावली में उपयुक्त चयन करने की भी सुविधा भी रहती है। देश में प्रयुक्त अन्य भाषाओं की अपेक्षा इसका स्थान प्रमुख माना जाता है। भारत की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी है। भारत में सह राजभाषाएं भी हैं। संविधान की आठवी में अनुसूची में शामिल 22 भाषाओं को सह राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।

(6) राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा को राष्ट्र की प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है। इसे राष्ट्रीय स्तर पर गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त होता है, जो राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का होता है। राष्ट्रीय चेतना सांस्कृतिक चेतना से जुड़ी होने के कारण राष्ट्रभाषा का सीधा संबंध राष्ट्रीय चेतना से होता है। राष्ट्रभाषा राजभाषा हो सकती है लेकिन राजभाषा राष्ट्रभाषा भी हो यह आवश्यक नहीं होता है। भारत में अधिकतर भाषाओं का गौरवशाली इतिहास रहा है।

(7) गुप्त भाषा

किसी विशेष वर्ग या समूह या संप्रदाय में विशिष्ट या निधार्रित प्रयोजन के लिए प्रयोलन में लाई जाने वाली भाषा गुप्त भाषा गहलाती है। इसे विशेष रूप से विशेष समूह या वर्ग के लोग ही समझ-बूझ सकते हैं। जासूसी समूह, सेना, डकैत, चोर आदि इसका प्रयोग करते हैं। इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती है। चूंकि यह विशेष ध्वनि समूहों, प्रतीकों की गुप्त भाषा होती है इसलिए इसे कूट भाषा भी कहा जाता है।

(8) संपर्क भाषा

अनेक भाषाओं के अस्तित्व के बावजूद जिस विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है, वह संपर्क भाषा कहलाती है। एक ही भाषा परिपूरक भाषा और संपर्क भाषा दोनों ही हो सकती है। आज भारत मे संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वहन हिंदी भाषा कर रही है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी संपर्क भाषा का दर्जा प्राप्त है। इसे 'लिगुआ फ्रेंका' के नम से भी जाना जाता है।

(9) मृतभाषा

जिस भाषा का प्रयोग भूतकाल में जीवंत भाषा के रूप में सामान्य, साहित्यिक, राजनायिक, व्यापार आदि में विपुलता से होता रहा हो किंतु वर्तमान काल में सभी दृष्टियों से उसका प्रयोग बहुत ही सीमित हो गया हो वह मृत भाषा कहलाती है। अन्य शब्दों में कहें तो कुछ भाषाएं तथा बोलियाँ समय के फेर के साथ मर भी जाती हैं। मृत भाषा या विलुप्त भाषा उसे कहा जाता है, जिसे बोलने वाला कोई भी जीवित नहीं हो। चाहे उस भाषा का किसी अन्य भाषा बोलने वालों द्वारा अन्य प्रकार से उपयोग भी क्यों न हो रहा हो। इस तरह के भाषाओं का कोई मातृभाषी नहीं होता है। किसी भाषा के मृत या विलुप्त होने का कारण, उनके बोलने वालों द्वारा किसी अन्य भाषा को स्वीकार करना या उन सभी की मृत्यु हो जाना ही होता है। विगत 50 वर्षों में भारत की क़रीब 20 फीसदी भाषाएं विलुप्त हो गई हैं। 1961 की जनगणना के बाद 1652 मातृभाषाओं का पता चला था। उसके बाद आधिकारिक रूप से ऐसी कोई लिस्ट

नहीं बनी है। उसके बाद 1971 में केवल 108 भाषाओं की सूची ही सामने आई थी। “सारे” नामक इस भाषा को बोलने वाली आखिरी महिला लीचो 4 अप्रैल 2020 को इस दुनिया से विदा हो गई। वह करीब 50 वर्ष की थी। लीचो अंडमान के दक्षिणी द्वीप में रहने वाली महान (ग्रेट) अंडमानी जनजाति समूह से ताल्लुक रखती थी। सारे की तरह 2010 में ग्रेट अंडमानी भाषा खोरा और बो भाषा बोलने वाले भी खत्म हो गए थे। इस तरह 2010-20 के बीच ग्रेट अंडमानी परिवार की तीन भाषाएं- खोरा, बो और सारे दम तोड़ चुकी हैं। जेरू भाषा को बोलने वाले भी केवल तीन लोग ही बचे हैं। इनमें दो पुरुष और एक महिला है। इन सभी लोगों की उम्र 50 साल से अधिक और ये विभिन्न बीमारियों से ग्रस्त हैं। इनकी मौत जेरू भाषा की ताबूत में आखिरी कील साबित होगी। युनेस्को की सूची में अहोम, आंद्रो, रांगकास, सेंगमई और तोल्चा भारतीय भाषाएं ऐसी हैं जो मर चुकी हैं। युनेस्को ने भारत की 197 भाषाएं चिन्हित की हैं जो विलुप्तप्राय हैं। दूसरे स्थान पर अमेरिका है जहां 191 भाषाएं खतरे में हैं। तीसरे स्थान पर मौजूद ब्राजील में कुल 190 भाषाओं का वजूद संकट में है। ये आंकड़े साफ तौर पर इशारा करते हैं कि हाल के वर्षों में यह खतरा तेजी से बढ़ रहा है। दुनियाभर में भाषाओं पर नजर रखने वाले गैर लाभकारी संगठन एथनोलॉग से भी इस संबंध में महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं। समय-समय पर भाषाओं को अपडेट करने वाले इस संगठन के अनुसार, इस समय दुनियाभर बोली जाने वाली 7,139 भाषाओं में 42 प्रतिशत (3,018) भाषाएं संकटग्रस्त हैं। यानी ये भाषाएं विलुप्ति के विभिन्न चरणों में हैं। एथनोलॉग ने भाषाओं के संकट के स्तर को मापने के लिए एक मापदंड बनाया है जिसे एक्सपेंडेट ग्रेडेड इंटरजनरेशनल डिसरप्शन स्केल (ईजीआईडीएस) नाम दिया गया है।

(10) राजनयिक भाषा

यह भाषा एक देश और दूसरे देश के मध्य राजनयिक पत्र व्यवहार या बातचीत में प्रयुक्त होती है। यह भाषा अत्यन्त शिष्ट तथा औपचारिक होती है।

(11) अंतरराष्ट्रीय भाषा

शासन या अन्य किसी प्रभाव से जब किसी भाषा का प्रयोग एक से अधिक राष्ट्रों में होने लगता है तो उसे अंतरराष्ट्रीय भाषा का पद प्राप्त हो जाता है; जैसे अंग्रेजी।

बोध प्रश्न

- राजभाषा और राष्ट्रभाषा में क्या अंतर है।
- कार्यालीय भाषा का प्रयोग क्षेत्र क्या होता है।
- संविधान की आठवीं अनुसूची में भारत की कितनी भाषा शामिल की गई हैं।

2.3.4 निर्माण के आधार पर

(1) सहज भाषा

सामान्य बोलचाल की भाषाएं जिन का उद्भव प्राकृतिक और सहज रूप में हुआ है जैसे हिंदी अंग्रेजी जर्मन आदि।

(2) कृत्रिम भाषा

विभिन्न भाषाओं के बीच सार्वभौमिक रूपों को लेकर अंतरराष्ट्रीय संप्रेषण की दृष्टि से कृत्रिम भाषा के निर्माण कार्य का प्रयास हुआ जैसे एस्पेरेटो इंडो। इसका उद्देश्य विभिन्न भाषा भाषी लोगों को परस्पर लाकर भाषिक आदान-प्रदान की सुविधा देना था कृत्रिम भाषा के दो उपभेद हैं

(अ) सामान्य कृत्रिम भाषा

सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त करने के लिए बनाई गई भाषा जैसे एस्पेरेटो भाषा।

(आ) गुप्त कृत्रिम भाषा

किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए बनाई गई भाषा जैसे सेना दलालों डाकुओं आदि की भाषा।

बोध प्रश्न

- निर्माण के आधार पर भाषा रूप कितने होते हैं।
- कृत्रिम भाषा के दो उदाहरण दीजिए।
- सामान्य कृत्रिम और गुप्त कृत्रिम भाषा में अंतर स्पष्ट कीजिए।

2.3.5 मानकता के आधार पर

(1) मानक या परिनिष्ठित भाषा

भाषा के स्थिर तथा सुनिश्चित रूप को मानक या परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। भाषाविज्ञान कोश के अनुसार 'किसी भाषा की उस विभाषा को परिनिष्ठित भाषा कहते हैं जो अन्य विभाषाओं पर अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता स्थापित कर लेती है तथा उन विभाषाओं को बोलने वाले भी उसे सर्वाधिक उपयुक्त समझने लगते हैं। मानक भाषा शिक्षित वर्ग की शिक्षा, पत्राचार एवं व्यवहार की भाषा होती है। इसके व्याकरण तथा उच्चारण की प्रक्रिया लगभग निश्चित होती है। मानक भाषा को टकसाली भाषा भी कहते हैं। इसी भाषा में पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन होता है। हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत तथा ग्रीक इत्यादि मानक भाषाएँ हैं। किसी भाषा के मानक रूप का अर्थ है, उस भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, उस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता

है। मानकता अनेकता में एकता की खोज है, अर्थात यदि किसी लेखन या भाषिक इकाई में विकल्प न हो तब तो वही मानक होगा, किन्तु यदि विकल्प हो तो अपवादों की बात छोड़ दें तो कोई एक मानक होता है। जिसका प्रयोग उस भाषा के अधिकांश शिष्ट लोग करते हैं। किसी भाषा का मानक रूप ही प्रतिष्ठित माना जाता है। उस भाषा के लगभग समूचे क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग होता है। मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। मानक भाषा को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि समाज में एक वर्ग मानक होता है जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा समाज में उसी का बोलना-लिखना, उसी का खाना-पीना, उसी के रीति-रिवाज़ अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलत: उसी वर्ग की भाषा होती है। जो व्याकरण सम्मत तथा प्रयोग सम्मत हो ध्वनि शब्द वाक्य आदि में व्याकरण सम्मत होने के साथ-साथ एकरूपता और लोक स्वीकृति हों जैसे मुझे घर जाना है

(2)मानकेतर भाषा

सामान्यत: लोग मानक भाषा का प्रयोग करते हैं जो कि व्याकरण सम्मत होती है परंतु मानक भाषा के साथ-साथ लोग ऐसे भाषा रूपों का भी प्रयोग करने लगते हैं जो प्रयोग सम्मत तो होते हैं और लोग उन्हें अच्छी तरह से समझते एवं बूझते भी हैं परंतु वह रूप व्याकरण सम्मत नहीं होते हैं वह अमानक भाषा रूप कहलाते हैं जैसे- मैंने घर जाना है, मैंने खाना खाना है इत्यादि।

(3) अमानक भाषा

ऐसे भी भाषा रूप समाज में प्रचलित होते हैं जो व्याकरण सम्मत और एक रूपी नहीं होते हैं तथा उसे लोग स्वीकृति भी प्राप्त नहीं होती है वे अमानक भाषा रूप होते हैं, जैसे मेरे को जाना है।मेरे को आना है इत्यादि।

बोध प्रश्न

- निर्माण के आधार पर भाषा रूप कितने होते हैं।
- मानक और अमानक भाषा में क्या अंतर है।

2.3.6 प्रकार्य के आधार पर

(1) संपूरक भाषा

किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत ज्ञान की वृद्धि या विशिष्ट प्रयोजन के लिए जिस दूसरी भाषा का प्रयोग किया जाता है उसे संपूरक भाषा कहा जाता है। यह भाषा सीमित उद्देश्य के लिए सीमित लोगों में प्रयोग में लाई जाती है। इसे पुस्ताकालयी भाषा भी कहते हैं जिसका कोई सक्रिय प्रयोग नहीं होता है। राजनायिकों, दूतावासों या जासूसी आदि विशेष कार्य के लिए यह भाषा सीखी जाती है और विशेष रूप से सीखे हुए व्यक्ति ही इसका प्रयोग करते हैं।

(2) परिपूरक भाषा

किसी समाज में प्रचलित प्रयोजनों के लिए समुदाय में प्रचलित भाषा के साथ-साथ अन्य भाषा का प्रयोग किया जाता है जैसे भारत में सामाजिक स्तर पर अपनी मातृभाषा के साथ-साथ अंग्रेजी का भी प्रयोग किया जाता है।

(3) सहायक भाषा

दैनिक कार्य व्यापारों के संचालन के लिए लोगों को अपनी भाषा के साथ-साथ अपनी बात रखने के लिए किए एक सहायक भाषा का प्रयोग करना पड़ता है जैसे भारत में हिंदी तथा संस्कृत, हिंदी तथा अंग्रेजी का प्रयोग आमतौर होता देखा जाता है।

(4) समतुल्य भाषा

सामान्यत: व्यक्ति अपनी मातृभाषा का प्रयोग विचारों की अभिव्यक्ति के लिए करता है जिसमें वह पूरी तरह से दक्ष भी होता है परंतु जब वह किसी अन्य भाषा का ज्ञानाजर्न करते हुए उसमें भी मातृभाषा के समान ही अभिव्यक्ति में सक्षम हो जाता है वह समतुल्य भाषा कहलाती है। जैसे हिंदी-अंग्रेजी, हिंदी-ओड़िया, हिंदी-तेलेगु या इसके विपरीत।

बोध प्रश्न

- प्रकार्य के आधार पर भाषा रूप कितने होते हैं।
- प्रतिपूरक भाषा से क्या तात्पर्य है।
- समतुल्य भाषा से क्या तात्पर्य है।

2.3.7 सम्मिश्रण के आधार पर

(1) पिजिन

जब किसी भाषा भाषी विशेष समुदाय द्वारा उपनिवेश निर्माण के फलस्वरूप दैनिक कार्य व्यापार के संचालन हेतु किसी नए भाषा रूप का विकास कर लिया जाता है तो वह मिश्रित या संकर भाषा कहलाती है। यह किसी भाषा का प्रारंभिक और सरलीकृत रूप होता है। जैसे औपनिवेशिक काल में अनुबंध पर भारत से सूरीनाम, मॉरिशस, गुयाना, ट्रिडिनाड आदि देशों में जो लोग ले जाए गए थे उनमें से अधिकांश लोग बिहार या पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोजपुरी बोलने वाले थे। जिन देशों में इन्हें बसाया गया वहां की स्थानीय भाषा के साथ इनकी भोजपुरी के मिश्रण से नई भाषा का जन्म जिसे सरनामी हिंदी, मॉरिशस की हिंदी आदि नामों से जाना है। इनमें वहां की स्थानीय भाषा के साथ भोजपुरी के शब्द मिलते हैं जैसे तू वरी काहे करता है।

(2) क्रियोल

यह पिजिन का विकसित रूप है। पिजिन बोलने वालीपीढ़ी की परिवर्ती पीढ़ी पिजिन को क्रियोल में बदल देती है। इस भाषा में मूल भाषा की ध्वनि एवं रूपात्मक संरचना में पूरा बदलाव आ जाता है और एक स्वतंत्र भाषा कहलाती है। मॉरिशस, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद, टोबेगो, फीजी आदि देशों में इसी क्रियोल का प्रयोग पाया जाता है। इनमें फ्रेंच, अंग्रेजी, डच, हिंदी का मिश्रण पाया जाता है। इसी भाषा रूप को संसृष्ट भाषा के नाम से भी जाना जाता है।

बोध प्रश्न

- सम्मिश्रण के आधार पर भाषा रूप कितने होते हैं।
- पिजिन भाषा से क्या तात्पर्य है।
- क्रियोल भाषा से क्या तात्पर्य है।

2.4 : पाठ सार

भाषा मानवीय वाणी का वह रूप है, जो भावों एवं विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम होती है। प्रारंभ में इसका स्वरूप एक बोली का होता है। बोली ही धीरे-धीरे विकसित होकर एक विभाषा या प्रान्तीय भाषा बन जाती है। प्रांतीय भाषा यदि समृद्ध एवं सशक्त होती है, तो वह भाषा का रूप धारण कर लेती है। अधिक लोकप्रियता एवं जनता का समर्थन प्राप्त करके वह राष्ट्रभाषा के रूप में देश का गौरव बनती है। जब किसी भाषा का प्रयोग राजकाज के लिए किया जाने लगता है तो वह राजभाषा कहलाती है। बहुभाषा भाषी देश में जो भाषा संपर्क साधने के काम आती है वह संपर्क भाषा कहलाती है। मिश्रण के फलस्वरूप भाषा का प्राथमिक रूप पिजिन कहलाता है और वह भाषा जब उन्नत होकर स्थाई रूप में आ जाती है तो क्रियोल कहलाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्थानीय भाषा के लिए बोली, प्रान्तीय भाषा के लिए विभाषा और राष्ट्रीय तथा टकसाली भाषा के लिए भाषा का प्रयोग किया जाता है। विभाषा की सीमा बहुत कुछ भूगोल स्थिर करता और भाषा की सीमा सभ्यता, संस्कृति और जातीय भावों के ऊपर निर्भर होती है।

2.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि –

1. भाषा एक रूपी नहीं होती, उसमें अनेक वैविध्य पाएं जाते हैं।
2. भाषा के विविध रूपों के कई आधार हो सकते हैं। जैसे – ऐतिहासिक, भौगोलिक, निर्माण, मानकता, प्रकार्य आदि।
3. ऐतिहासिकता के आधार पर भाषा मूल प्राचीन, मध्यकालीन अथवा आधुनिक हो सकती है।

4. क्षेत्रीयता के आधार पर व्यक्ति बोली, उप बोली, बोली, उपभाषा, भाषा और विभाषा जैसे रूप दिखाई देते हैं।
5. प्रयोग के आधार पर भाषा को सामान्य बोलचाल साहित्य, व्यवसाय, कार्यालय, राज, राष्ट्र की भाषा आदि वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।
6. निर्माण के आधार पर भाषा के सहज भाषा और कृतिम भाषा जैसे रूप पाए जाते हैं।
7. मानकता के आधार पर भाषा मानक, मानाकेत्तर और अमानक हो सकती है।
8. प्रकार्य के आधार पर भी भाषा के कई भेद हैं- जैसे संपूरक भाषा, परिपूरक भाषा, सहायक भाषा, समतुल्य भाषा।
9. मिश्रण के आधार पर भाषा के पिजिन और क्रियोल जैसे दो रूप पाए जाते हैं।

2.6 : शब्द संपदा

1. पिजिन - वह मिश्रित भाषा जो जिसका उपयोग दैनिककार्य व्यापार के लिए तो किया जाता है, लेकिन वह किसी की मातृक भाषा नहीं होती।
2. क्रियोल - जब पिजिन रूढ़ होकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मातृभाषा के रूप में मिलती है तो उसे क्रियोल के नाम से जाना जाता है।

2.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड - (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्नलिखित प्रशों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए।

1. भाषा के रूप के आधारों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
2. ऐतिहासिक आधार पर भाषा रूपों पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
3. भौगोलिक आधार पर भाषा रूपों पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
4. प्रयोग के आधार पर भाषा रूपों पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
5. प्रकार्य के आधार पर भाषा रूपों पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
6. भाषा के विविध रूपों का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।

खंड - (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रशों के उत्तर 250 शब्दों में लिखिए।

(1) बोली और भाषा

(2) उपभाषा और बोली

(3) मानक और अमानक भाषा

2. राजभाषा से आप क्या समझते हैं।

4. राष्ट्रभाषा और राजभाषा से क्या तात्पर्य है।

5. संपर्क भाषा के रूप हिंदी की भूमिका क्या है।

खंड - (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. ऐतिहासिक आधार पर किया गया भाषा रूप है।

(अ) मूल भाषा (आ) बोली (इ) भाषा (ई) इनमें से कोई नहीं सभी

2. भौगोलिक आधार पर किया गया भाषा रूप है।

(अ) बोली (आ) व्यावससायिक भाषा (इ) साहित्यिक भाषा (ई) सभी

3. प्रयोग के आधार पर किया गया भाषा रूप है।

(अ) मूल भाषा (आ) मानक भाषा (इ) साहित्यिक भाषा (ई)सभी

4. प्रकार्य के आधार पर किया गया भाषा रूप है।

(अ) संपूरक भाषा (आ) मानक भाषा (इ) साहित्यिक भाषा(ई)सभी

5. निर्माण के आधार पर किया गया भाषा रूप है।

(अ) मूल भाषा (आ) मानक भाषा (इ) सहज भाषा (ई)सभी

II. रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए

1. ....ऐतिहासिक आधार पर किया गया भाषा रूप है।

2. व्यावसायिक भाषा ....आधार पर किया गया भाषा रूप है।

3. क्रियोल भाषा ....आधार पर किया गया भाषा रूप है।

4. अमानक भाषा ....आधार पर किया गया भाषा रूप है।

III. सुमेल कीजिए।

1. क्रियोल भाषा	(अ) प्रयोग आधार
2. गुप्त भाषा	(आ) सम्मिश्रण आधार
3. मध्य कालीन भाषा	(इ) प्रकार्य आधार
4. प्रतिपूरक भाषा	(ई) ऐतिहासिक आधार

2.8 : पठनीय पुस्तकें

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी भाषा विज्ञान
2. डॉ.सत्यव्रत्त, हिंदी भाषा का संरचनात्मक अध्ययन
3. गरिमा, भाषा और भाषा विज्ञान
4. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री,भाषा शास्त्र तथा हिंदी भाषा की रूपरेखा
5. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी - भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र
6. डॉ. बदरीनाथ कपूर, परिष्कृत हिंदी व्याकरण
7. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, व्यतिरेकी भाषा विज्ञान

इकाई 3: भाषा विज्ञान : परिभाषा, क्षेत्र, प्रकार और अध्ययन की प्रणालियाँ

इकाई की रूप रेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मूल पाठ: भाषा विज्ञान: परिभाषा, क्षेत्र, प्रकार और अध्ययन की प्रणालियां

3.3.1 भाषा विज्ञान की परिभाषा

3.3.2 भाषा विज्ञान का क्षेत्र

3.3.3 भाषा विज्ञान के प्रकार एवं अध्ययन की प्रणालियां

3.4 पाठ सार

3.5 पाठ की उपलब्धियाँ

3.6 शब्द संपदा

3.7 परीक्षार्थ प्रश्न

3.8 पठनीय पुस्तकें

3.1: प्रस्तावना

संस्कृत-साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होने वाली भाषा-विचार-विषयक सामग्री को आधुनिक भाषा-विज्ञान की आधारशिला माना जा सकता है। आधुनिक संदर्भ एवं स्वरूप में भाषा विज्ञान पश्चिमी विद्वानों के मस्तिष्क की देन माना जाता है। विषय के रूप में भाषा-विज्ञान का प्रारंभ यूरोप से माना जाता है। सन 1786 ई. में सर विलियम जोन्स नामक विद्वान ने संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रसंग में सर्वप्रथम ग्रीक और लैटिन भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए संभावना व्यक्त की कि संभवतः इन तीनों भाषाओं के मूल में कोई एक भाषा रही होगी। अतः इन तीनों भाषाओं (संस्कृत, ग्रीक और लैटिन) के बीच एक सूक्ष्म संबंध सूत्र अवश्य विद्यमान है। भाषाओं का इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन ही आधुनकि भाषा-विज्ञान के क्षेत्र का पहला कदम बना।

प्रस्तुत इकाई में हम भाषा विज्ञान भाषा विज्ञान, परिभाषा, क्षेत्र, प्रकार और अध्ययन की प्रणालियांआदि का अध्ययन करेंगे।

3.2 : उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप –

1. भाषा- विज्ञानं की परिभाषा से परिचित हो सकेंगे।
2. भाषाविज्ञान के क्षेत्र के विस्तार को जान ।सकेंगे।

3. भाषा विज्ञानं के प्रकारों से अवगत हो सकेंगे।
4. भाषा विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 : मूल पाठ : भाषा विज्ञान: परिभाषा, क्षेत्र, प्रकार और अध्ययन की प्रणालियाँ

व्युत्पत्ति और रूप की दृष्टि से, 'भाषाविज्ञान' शब्द एक समासयुक्त संज्ञा है जो 'भाषा' और 'विज्ञान' दो शब्दों से निर्मित है। इसका सामान्य अभिधार्य है-भाषा का विज्ञान।

अर्थ की दृष्टि से अंग्रेजी में इसका सर्वोत्तम पर्याय पाश्चात्य शब्द 'फिलालॉजी' (Philology) है जो स्वयं दो ग्रीक शब्दों Phil + Logos से निर्मित शब्द है तथा जिसमें Phil 'शब्द', World का अर्थ द्योतक है तो Logos या इससे बना Logy शब्द विज्ञान (Science) अर्थ का बोध कराता है।

अँग्रेजी में इस विज्ञान के कई नाम-'फिलॉलोजी', 'सायंस आव लैंग्वेज''कम्पैरेटिव फिलॉलोजी'-प्रचलित हैं। फ्रांस में इसे लोग 'लिग्विस्तिक' तथा जर्मनी में 'स्प्राख विशेन शैट' नाम से अभिहित करते हैं। इस देश में अंँग्रेजी के प्रचार एवं प्रसार के कारण ज्ञान-विज्ञान संबंधी अनेक विषयों का नामकरण भी अंग्रेजी के आधार पर ही हुआ है। हिंदी में आज इस विज्ञान के लिए 'भाषाविज्ञान', 'भाषाशास्त्र', 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' नाम स्पष्ट रूप से 'सायंस ऑफ लैंग्वेज' का अनुवाद है।

3.3.1 भाषा विज्ञान की परिभाषा

समय-समय पर विभिन्न भाषाविदों, भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा विज्ञान को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाओं को अग्रलिखित रूप में देखा जा सकता है।

1. भारतीय भाषाविदों की परिभाषाएं

ऋग्वेद के वाक्य शब्द को ऋषिमुनियों ने अभिनव रूप प्रदान करते हुए लिखा है-

"यावद ब्रह्म विष्ठित वावती वाक्,
येना म: पूर्वे पितर: पदज्ञा।
अर्चन्तों अड्न्तो अड्गिरसो गा आविन्दन्।"

'महाभाष्य' के प्रणेता महाभाष्यकार ने इसी ग्रंथ में वाक्य, शब्द के आधार पर भाषा के विशिष्ट ज्ञान के शब्द संयोजन मानते हुए लिखा है कि –

"वाग्रूपता चेन्निष्कामदेवबोधस्य शाश्वती
न प्रकाश: प्रकाशेत साहि प्रत्यवर्मिशनी।।"

संस्कृत साहित्य के आचार्य भामह के अनुसार शब्द और अर्थ के सहचर्य को काव्य अर्थात् साहित्य कहते हैं। आचार्य विश्वानाथ के अनुसार रसात्मक वाक्य ही काव्य है। पंडित राज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य माना है।

डॉ. कपिलदेव शास्त्री ने लक्षणों के आधार पर भाषाविज्ञान के संबंध में कहा है कि ''भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है, -

''भाषाययत्तु विज्ञानं, सर्वांङ् व्याकृतात्मकम्।
विज्ञान दृष्टिमूल तद् भाषाविज्ञान मुच्चते।।''

डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार," भाषा-विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।"

डॉ. नगेन्द्र ने साहित्य की परिभाषा देते हुए लिखा है-''उदात्त भावों की निश्चल अभिव्यक्ति का नाम कविता है।''

डॉ. देवेंद्र शर्मा ने भाषा विज्ञान की भूमिका के पृष्ठ सं. 176 पर भाषा विज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है - ''भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा विज्ञान कहलाएगा।''

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषा विज्ञान के पृ. सं. 7 पर भाषा विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की है - ''भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा विशिष्ट, कई और सामान्य का समकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रयोगिक दृष्टि से अध्ययन और तद्विषयक सिद्धांतों का निर्धारण किया जाता है।''

डॉ. देवी शंकर द्विवेदी ने भाषा और भाषिकी के पृ. सं. 129 पर भाषिकी शब्द को महत्त्व देते हुए लिखा है - ''भाषा विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।''

डॉ.मंगल देव शास्त्री ने तुलनात्मक भाषा शास्त्र के पृ. सं. 3 पर लिखा है - ''भाषा विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अंतत: भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गो की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार,"भाषा विज्ञान से अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका निर्देशन कराना है।"

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने अपने ग्रंथ भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा में भाषा विज्ञान की परिभाषा देते हुए लिखा है-"भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा एवं भाषा तत्वों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक आधार पर अध्ययन किया जाता है।"

डॉ. कर्ण सिंह के अनुसार, "भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें मानवप्रयुक्त व्यक्त वाक् का पूर्णतः वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।"

डॉ. अंबा प्रसाद सुमन के अनुसार "भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषाओं का सामान्य रूप से या किसी एक भाषा का विशिष्ट रूप से प्रकृति, संरचना, इतिहास, तुलना, प्रयोग आदि की दृष्टि से सिद्धांत निश्चित करते हुए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।"

2. पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएं

लक्ष्मीकांत पांडेय की पुस्तक "भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा' में पाश्चात्य विद्वानों की निम्नलिखित परिभाषाओं का उल्लेख मिलता है -

ग्लीसन के अनुसार "Descriptive linguistics, the discipline which studies languages in terms of internal structure."(वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में भाषाओं की आंतरिक संरचना का अध्ययन होता है।")

ब्रिटेन विश्वकोष के अनुसार –"The word philology is here taken as menaing the science of languages i.e. the study of structure and development of languages, thus corresponding to linguistics." (भाषा विज्ञान में भाषाओं का अध्ययन उनकी रचना एवं विकास का अध्ययन किया जाता है। इस परिभाषा में 'फिलोलॉजी एवं लिग्विस्टिक्स' दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है। अर्थात दोनों शब्द समानार्थी हैं।)

एल. ब्लूमफील्ड भाषाविज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा है कि (Linguistics is a science which concerns with the scientific study of language in general as well as in particular." "भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें किसी भाषा का सामान्य या विशेष रूप से वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।"

ऑस्कर लुइस चावरिया के शब्दों में "The general term linguistics includes in addition to descriptive linguistics historical and comparative study of languages.अर्थात् वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अतिरिक्त भाषा का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन भाषा विज्ञान में समावेशित होता है।

मेरिआ पेई के अनुसार "भाषाविज्ञान भाषा औरर भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

उपरोक्त सभी परिभाषाओं पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है। "भाषा या भाषाओं की वैज्ञानिक शैली और विज्ञान-सम्मत दृष्टि से अध्ययन करने वाला शास्त्र या विषय ही भाषाविज्ञान है। निश्चयतः इसमें अध्येय होती है भाषा जिसके अंगों, प्रत्यंगों का अध्ययन एकदम वैज्ञानिक ढंग से वैज्ञानिक दृष्टि से, करते हुए वैज्ञानिक अर्थात् तर्कसम्मत निर्णय-निष्कर्ष स्थापित किये जाते हैं। सारांशत: कह सकते हैं कि भाषा अथवा भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाला विषय ही भाषाविज्ञान है।

बोध प्रश्न

- भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं में अंतर और समानताओं को स्पष्ट कीजिए।
- भाषा विज्ञान की परिभाषाएं देते हुए उसका स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

3.3.2 भाषाविज्ञान का क्षेत्र

भाषाविज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा की उत्पत्ति, स्वरूप, विकास आदि का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भाषा की उत्पत्ति, भाषा-विज्ञान का सबसे प्रथम, स्वाभाविक, महत्त्वपूर्ण किन्तु विचित्र प्रश्न भाषा की उत्पत्ति का है। भाषाविज्ञान, भाषा के स्वरूप, अर्थ और संदर्भ का विश्लेषण करता है। इस पर विचार करके विद्वानों ने अनेक सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है। यह एक अध्ययन का रोचक विषय है जो भाषा के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। भाषाओं का वर्गीकरणः भाषा के प्राचीन विभाग (वाक्य, रूप, शब्द, ध्वनि एवं अर्थ) के आधार पर हम संसार भर की सभी भाषाओं का अध्ययन करके उन्हें विभिन्न कुलों या वर्गों में विभाजित करते हैं।

भाषा विज्ञान का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। इसका क्षेत्र विश्व की समस्त भाषाएं हैं। इसमें भाषा के विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक अध्ययन के साथ उत्पत्ति तथा विकास का भी अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञान में वर्तमान तथा अतीत से संबंधित भाषाओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि इसमें एक तरफ उन भाषाओं का अध्ययन किया जाता है जो अब वाचिक रूप में प्रयुक्त नहीं होती हैं, उनका केवल साहित्य प्राप्त होता है। भाषा के विभिन्न कालों में भाषा विज्ञान का संबंध होता है।

भाषा की विभिन्न इकाइयाँ-ध्वनि, वर्ण, शब्द, पद, वाक्य तथा अर्थ भाषा विज्ञान क्षेत्र के विभिन्न आयाम हैं। भाषा भावों और विचारों की वाहक है, जिन्हें वह वाक्यों के माध्यम से वहन करती है। वाक्यों के खंड 'पद' कहलाते हैं और पदों के खंड 'ध्वनि'। अतः ध्वनि, पद तथा वाक्यभाषा के अवयव हैं, जिनसे उसके शरीर की रचना होती है। अर्थ भाषा की आत्मा है। उसके बिना इन अवयवों का कोई अस्तित्व नहीं। भाषाविज्ञान भाषा के इन्हीं घटकों का अध्ययन

करता है। अतः भाषाविज्ञान में ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थ विज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

1. ध्वनिविज्ञान

शब्द का आधार 'ध्वनि' होती है, इसीलिए ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत स्वर-तंत्री, ध्वनि यंत्र के साथ सुनने की प्रक्रिया एवं मुख विवर आदि का अध्ययन किया जाता है। यह भाषाविज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इसके अंतर्गत ध्वनि के स्वरूप, उसकी उच्चारण प्रक्रिया, उसके भेद-उपभेद, बलाघात, स्वराघात, अनुनासिकता आदि का अध्ययन किया जाता है। ध्वनिविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। मानस्वर और स्वनिम विज्ञान के अध्ययन ने उसे बहुत गहराई प्रदान की है। मानस्वरों के माध्यम से किसी की भाषा के स्वरों के सही-सही स्वरूप को जाना जा सकता है। उधर स्वनिम विज्ञान दो भाषाओं की ध्वनियों के साम्य-वैषम्य को जानने-समझने में सहायता मिलती है। ध्वनिविज्ञान में ध्वनिपरिवर्तन की विभिन्न स्थितियों का भी अध्ययन किया जाता है। संस्कृत के अग्रि, हस्त, कर्म आदि शब्द किन-किन ध्वनिपरिवर्तनों से होते हुए आग, हाथ और काम बन गये, इसका विश्लेषण करना ध्वनि का विषय है।

2.पद विज्ञान

वाक्य की रचना पदों या रूपों के आधार पर होती है, इसीलिए रूप-विज्ञान के अंतर्गत धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि पर विचार किया जाता है। पद के स्वरूप का विवेचन, शब्द, संबंध तत्व और पद के अंत:संबंध का अध्ययन, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय आदि भेदों का ज्ञान, लिंग, वचन, कारक, पुरुष काल और क्रियार्थ आदि व्याकरणिक कोटियों का परिचय पदविज्ञान के प्रमुख विषय हैं।

रूपिम की अवधारणा से पदविज्ञान के अध्ययन को बहुत सूक्ष्मता प्राप्त हुई है। इसमें उपसर्ग, प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति और परसर्ग जैसी लघुतम भाषिक इकाइयों का पृथक्करण किया जाता है। रूपिम के अध्ययन से किसी भाषा के व्याकरणिक स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है।

3. वाक्यविज्ञान

भाषा-विज्ञान के जिस विभाग में वाक्यों के आधार पर किए जाने वाले विचार-विनिमय का अध्ययन किया जाता है, वह वाक्य-विज्ञान कहलाता है। वाक्य के स्वरूप और भेदों का अध्ययन इसका प्रमुख विषय होता है। वाक्य का गठन कुछ पदों के संयोग से संभव होता है, इनका पदों का विशिष्ट क्रम से रखा जाना आवश्यक होता है यह क्रम 'पदक्रम' कहलाता है। अयोगात्मक भाषाओं में पदक्रम का व्याकरणिक महत्व होता है। वाक्यविज्ञान में प्रमुख रूप से पदक्रम का अध्ययन किया जाता है। वाक्यविज्ञान के अध्ययन में भी पिछले वर्षों में बहुत

गहराई आयी है। भाषाओं का आकृतिमूलक वर्गीकरण और वाक्य का विभाजन इस विज्ञान के अपेक्षाकृत नवीन अध्ययन विषय हैं। वाक्य परिवर्तन पर भी विगत वर्षों में काफी अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त वाक्यविज्ञान में रचना, अर्थ, व्याकरण आदि की दृष्टि से वाक्यों का वर्गीकरण भी किया जाता है।

4.अर्थविज्ञान

वाक्य या शब्द ध्वनि के साथ खत्म हो जाता है, और इसके आगे नया क्षेत्र शुरू होता है, जो कि 'अर्थ' कहलाता है। किसी वक्ता के मुख से ध्वनि निकल जाने के बाद दूसरों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, ये इस पर निर्भर करता है, कि बोली गई ध्वनि का अर्थ क्या है। ध्वनि यदि सार्थक है तभी उसका महत्व है। इसीलिए ध्वनि विज्ञान में शब्दों के अर्थ और उसके कारणों का अध्ययन किया जाता है। अर्थ ही भाषा का प्राणतत्व माना जाता है।

ध्वनि, पद और वाक्य की सार्थकता इनकी अर्थवत्ता में ही निहित होती है। अर्थ विज्ञान में शब्द और अर्थ के संबंध का अध्ययन किया जाता है, जिसके अंतर्गत संकेतग्रह के साधक और बाधक कारणों तथा शब्द शक्तियों का समावेश होता है। भाषा परिवर्तनशील होती है। परिवर्तशीलता उसकी प्रकृति को अर्थ की दृष्टि से सर्वाधिक प्रभावित करती है। शब्दों का अर्थ बड़ी तेजी से बदलता है। अर्थ विज्ञान में अर्थ परिवर्तन की विभिनन दिशाओं एवं अर्थ परिवर्तन के कारणों का भी अध्ययन किया जाता है। कभी शब्द संकुचित अर्थ को छोड़कर विस्तृत अर्थ ग्रहण कर लेता है तो कभी विस्तृत अर्थ को छोड़कर संकुचित हो जाता है। कभी शब्द का अर्थ पूरी तरह बदल जाता है और विश्वास भी नहीं होता कि इस अर्थ के मूल में इतना भिन्न अर्थ समाया हुआ है। उधर लक्षणा, प्रयत्न, लाघव, सादृश्य, अज्ञान, भावुकता, सौजन्य, परिवेश आदि कारण अर्थ को प्रभावित करते हैं, जिनके चलते 'बुद्ध' बुद्धू बन जाते हैं 'असुर' राक्षस।

उपरोक्त के अलावा आधुनिक भाषाविज्ञान में अनेक अध्ययन के क्षेत्र समाहित किए गए हैं, जो भाषाविज्ञान के महत्व को विस्तार देते हैं, जिनमें कोश विज्ञान, व्याकरण, व्युत्पत्तिविज्ञान, भाषाभूगोल, समाज भाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान आदि प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न

- भाषा विज्ञान के क्षेत्र कौन कौन से हैं।
- ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत भाषा के कौन से तत्वों का अध्ययन किया जाता है।
- अर्थविज्ञान के अंतर्गत भाषा के कौन से तत्वों का अध्ययन किया जाता है।

3.3.3 भाषा विज्ञान के प्रकार एवं अध्ययन की प्रणालियां

भाषाओं के अध्ययन की विषयवस्तु और पद्धति के अुनसार भाषाविज्ञान का अध्ययन तीन प्रकार किया जाता है- वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, तथा तुलनात्मक भाषाविज्ञान। इन्हें ही जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है- वर्णनात्मक भाषाविज्ञान किसी

एक ही काल बिंदु पर किसी भाषा के स्वरूप का अध्ययन विश्लेषण करता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत एक या एक से अधिक भाषाओं का के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान का उद्देश्य एक से अधिक भाषाओं की तुलना करते हुए उनके बीच प्राप्त समानताओं और असमानताओं को उद्घाटित करना है।

प्रत्येक विधा के अध्ययन की पद्धतियां होती हैं जिनसे संबंधित सभी पक्षों का अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञान में एक भाषा, दो भाषाओं अथवा विविध भाषाओं का विशिष्ट अध्ययन किया जाता है। भाषा के उच्चरित या लिखित अथवा दोनों स्वरूपों पर चिंतन एवं विश्लेषण किया जाता है। भाषाविज्ञान के अध्ययन के चार पद्धतियां मुख्य रूप से प्रचलित है। इन चार पद्धतियों के आधार पर भाषा विज्ञान के सभी चार प्रकार हैं, जिनका विवेचन अग्रलिखित रूप में जा सकता है-

1. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

हिंदी भाषा का शब्द 'वर्णनात्मक भाषा विज्ञान' अंग्रेजी के 'डिस्क्रिप्टिव लिंग्विस्टिक्स' शब्द का पर्याय है। इसे बहुत से विद्वान विवरणात्मक भाषा विज्ञान(नैरेटिव लिंग्विस्टिक्स') के नाम से भी संबोधित करते हैं। इसमें भाषा का विस्तृत विवरण दिया जाता है इसलिए कथन की शैली के रूप में इसे विवरणात्मक भाषा विज्ञान भी कहा जाता है जो कि समाजभाषावैज्ञानिक के कथा अथवा बातचीत के विश्लेषण के तरीके पर आधारित है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में किसी एक कालखंड में प्रयोग में लाई जाने वाली भाषाओं के भाषिक रूपों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में भाषा के सभी स्तरों पर अध्ययन-विश्लेषण का काम किया जाता है, जिन्हें हम स्वनिम, रूपिम, शब्द / पद, पदबंध, उपवाक्य, वाक्य और प्रोक्ति के रूप में जानते हैं। साथ ही 'स्वन' और 'अर्थ' संबंधी अध्ययन भी वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अंतर्गत ही किया जाता है। इस संदर्भ में मुख्य बात यह है कि यह अध्ययन केवल एक ही काल खंड या कालबिंदु पर आधारित होता है।

2. संरचनात्मक भाषाविज्ञान

संरचनात्मक भाषाविज्ञान में भाषा की 'संरचना' विवेचन का माध्यम तथा केंद्र होता है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान के तहत किसी भाषा की निजी व्यवस्थागत विशिष्टताओं का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान में भाषा के संरचना नियमों को नियमबद्ध करते समय शब्दार्थ की भी विवेचना की अपेक्षित होती है।

3. प्रकार्यात्मक भाषा विज्ञान

भाषा विज्ञान की जो शाखा भाषा के प्रकार्य (फंक्शन) के आधार पर केंद्र रूप अध्ययन एवं विश्लेषण का बोध कराती है उसे प्रकार्यात्मक भाषाविज्ञान कहा जाता है। इस प्रकार के अध्ययन का आरंभ प्राग संप्रदाय (प्राग स्कूल) द्वारा किया गया।

प्राग संप्रदाय द्वारा वर्णित भाषा के चार प्रमुख प्रकार्य निम्नलिखित हैं-

1. सांप्रेषणिक प्रकार्य

यह प्रकार्य आपसी विचार-विनिमय में प्राप्त होता है। इसके अनुसार भाषा द्वारा वक्ता से श्रोता तक सूचना या संदेश संप्रेषित करने का कार्य किया जाता है।

2. अभिव्यक्तिपरक प्रकार्य

अभिव्यक्ति का सीधा संबंध वक्ता के स्वयं के वक्तव्य है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति की भाषा में कुछ-न-कुछ परिवर्तन देखा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की भाषिक अभिव्यक्ति में कुछ न कुछ विशेषता अवश्य होती है।

3. प्रभावपरक प्रकार्य

भाषा को जो रूप श्रोता को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हुए कुछ सोचने, करने या न करने के लिए प्रेरित किया जाता है, उसे प्रभावपरक प्रकार्य कहा जाता है। अतः इसकी भाषा उपर्युक्त दोनों से अलग होती है। इसमें संबोधनपरक वाक्यों की संख्या अधिक होती है।

4. प्रकार्यों की संरचना का प्रकार्य

भाषा के प्रथम तीन प्रकार्य अलग-अलग अवसरों पर होते हैं, किंतु इनसे समन्वित भाषा का भी अपना प्रकार्य होता है। उदाहरण के लिए – धोती, कुर्ता, टोपी के अलग-अलग प्रकार्य तो हैं ही, किंतु स्वंत्रता आंदोलन के समय में ये समेकित रूप से एक अलग पहचान बनाते हैं।

3. स्वन विज्ञान और स्वनिम विज्ञान

प्राग संप्रदाय द्वारा 'स्वन' और 'स्वनिम' को लेकर अधिक कार्य किया गया है। अपने अध्ययन में उन्होंन स्वनविज्ञान (फोनेटिक्स) की जगह स्वनिमविज्ञान (फोनोलॉजी) पर अधिक बल दिया है। स्वनिमविज्ञान स्वनों (या स्वनिमों) का अध्ययन किसी भाषा-विशेष में प्रकार्य के आधार करता है। प्राग संप्रदाय ने स्वनिमों के व्यावर्तक अभिलक्षणों के रूप में विभाजित होने की बात की। किसी भाषा के स्वनिमों के निर्धारण के बाद उनके परस्पर संबंधों के विश्लेषण हेतु प्राग संप्रदाय ने द्विचर विरोध (बाइनरी अपोजिशन) पद्धति देने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इसमें घोष-अघोष, कोमल-कठोर आदि युग्मों के आधार पर संबंधों का निर्धारण किया जाता है। जैसे- क और ख आपस में प्राणत्व द्वारा सहसंबंधित हैं। इनमें 'क' अचिह्नित तथा 'ख' चिह्नित सदस्य है।

4. तुलनात्मक भाषाविज्ञान

अध्ययन की जिस पद्धति में दो या दो से अधिक भाषाओं की ध्वनियों, वर्णों, शब्दों, पदों, वाक्यों और अर्थों आदि की तुलना की जाती है, उसे भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की तुलनात्मक पद्धति कहते हैं। इस अध्ययन के अंतर्गत एक भाषा के विभिन्न कालों के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन कर उसकी विकासात्मक स्थिति का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करते हैं। एक भाषा की विभिन्न

बोलियों की समता-विषमता जानने का अध्ययन भी इसी पद्धति के विवेचन के फलस्वरूप विकसित हुआ है। इसका प्रबल प्रमाण है कि प्रारम्भ में इसके लिए तुलनात्मक भाषा विज्ञान का प्रयोग किया गया। यह भी सत्य है कि बिना तुलनात्मक अध्ययन - दृष्टिकोण अपनाए किसी नियम का निर्धारण अत्यंत कठिन होता है। भाषा - परिवार के निर्धारण में भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाना आवश्यक होता है। भाषा की सरसता, सरलता या विशेषताओं को स्पष्टरूप से रेखांकित करने के लिए तुलनात्मक अध्ययन सर्वाधिक उपयोगी होता है।

जिन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, उनमें ध्वनि, रुप, वाक्य, अर्थ की समानताएं मिलती है, तो उन्हें एक परिवार का मान लिया जाता है। अर्थात उनके संबंध में यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि ‘ भले ही उन में हजारों मीलों की दूरी एवं उच्चारण संबंधी थोड़ी सी भी और समानता क्यों ना हो फिर भी उनकी उत्पत्ति एक ही मूल भाषा की मानी जाती है।

5. ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान में किसी भाषा के मूल से चलकर उसके वर्तमान रूप तक विकास का क्रमिक अध्ययन किया जाता है। जब किसी भाषा के ध्वनि रूप वाक्य और अर्थ के परिवर्तन का काल क्रमानुसार अध्ययन कर तत्संबंधी नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, तो उसे ऐतिहासिक भाषाविज्ञान कहा जाता है।

6. रूपविज्ञान

रूपविज्ञान’ भाषाविज्ञान की एक शाखा है, जिसके अध्ययन की केंद्रीय इकाई ‘रूपिम’ है। अंग्रेजी में रूपविज्ञान के लिए ‘मार्फोलॉजी’ शब्द का प्रयोग किया जाता है, कि जो ‘मॉर्फ’ और ‘लोजी’ दो शब्दों के मेल से बना है। ‘मॉर्फ’ के लिए हिंदी में ‘रूप’ शब्द का प्रयोग प्रचलित है। ‘लॉजी’ का अर्थ है- ‘विज्ञान’। इस प्रकार समेकित शब्द बनता है रूपविज्ञान। भाषावेत्ताओं ने रूपविज्ञान को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख भाषाविदों की परिभाषाएँ दृष्टव्य हैं-

1. नाइडा- “रूपविज्ञान रूपिम तथा शब्द-निर्माण में उसकी व्यवस्था करता है”।
2. ब्लाक तथा ट्रेगर - रूपविज्ञान शब्द-गठन का विवेचन करता है।
3. कैरोल -“रूपविज्ञान उस पद्धति अथवा प्रणाली का अध्ययन है जिसके अनुसार शब्द निर्माण किया जाता है और निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि रूपविज्ञान का संबंध रूपिमों की पहचान, शब्द-निर्माण में उनके क्रम, उनमें होने वाले परिवर्तन तथा विविध व्याकरणिक संरचनाओं में पाई जाने वाली व्यवस्था का अध्ययन है।”(उद्धृत हिंदीविज्ञान, (1981) चमनलाल अग्रवाल)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रूपविज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसमें रूपिमों के अर्थ, स्वरूप, अनुक्रम, उनकी प्रतीति और प्रकार्य आदि के आधार पर उनके भेदों का किसी भाषा विशेष की संरचना के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है।

7. शैलीविज्ञान

शैली-विज्ञान भाषा-विज्ञान की वह शाखा है, जिसके माध्यम से साहित्य की रचनात्मक कृतियों का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार शैली-विज्ञान साहित्य की शैली के कोण से अध्ययन है।

शैली का अर्थ है-- प्रकार या काम करने का ढंग। शैली यों तो प्रत्येक प्रकार के कार्य-व्यापार से सम्बद्ध होती है, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में शैली का अर्थ होता है--अभिव्यक्ति-शैली अथवा शब्द-प्रयोग-शैली। इसे भाषा-प्रयोग की शैली या भाषा-प्रयोग की भंगिमा भी कहा जा सकता है।

8. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान, भाषाविज्ञान का प्रायोगिक क्षेत्र है। इसका प्रारंभ 1950ई; के बाद पहली बार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटेन देशों में लगभग साथ-साथ हुआ माना जाता है।1956 ई. में एडिनबर्ग विश्वविद्यालय में जे.सी.कैटफोर्ड के निर्देशन में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के स्कूल की स्थापना की गई। एडिनबर्ग के अनुसार प्रारंभ में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान को भाषा के सिद्धांत उत्पादक के बजाय भाषाविज्ञान के उपभोक्ता के रूप में ही देखा गया। सन 1957 में चार्ल्स फर्ग्युसन द्वारा वाशिंगटन डी.सी. में इसका केंद्र स्थापित किया गया। प्रारंभ में इसे केवल भाषा शिक्षण को शामिल न करते हुए शैलीविज्ञान, भाषिक कमियां तथा अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में ही देखा गया।

भाषाविज्ञान मानव भाषाओं का वैज्ञानिक दृष्टि से सैद्धांतिक अध्ययन करने का कार्य करता है। जिन क्षेत्रों में भाषा के सैद्धांतिक ज्ञान का उपयोग किया जाता है वे अनुप्रयोग क्षेत्र कहते हैं और उन्हें सामूहिक रूप से अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत रखा जाता है।

9. संगणक भाषाविज्ञान

संगणक भाषाविज्ञान अंग्रेजी के शब्द 'कम्प्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स का हिंदी पर्याय है। यह अंतरानुशासनिक अध्ययन के अंतर्गत आता है। भाषाविज्ञान 'भाषा' तथा संगणक भाषाविज्ञान परस्परनिर्भर तथा सहयोगी ज्ञानशाखाएँ हैं। यह शास्त्र या विज्ञान मानव भाषा तथा संगणक या मशीन के बीच महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। कृत्रिम बुद्धि का क्षेत्र मानव भाषाओं पर आधारित होता है। मानव भाषाओं को संगणक की भाषा के अनुकूल बनाना बहुत ही चुनौतीपूर्ण होता है। आज सम्पूर्ण विश्व में वर्तमान में 'संगणक भाषाविज्ञान' अनुसंधान के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप स्वीकृत हो चुका है। ऐसा प्रत्येक देश में हो रहा है कि प्रयोगकर्ताओं के समाप्त हो जाने पर उनके द्वारा प्रयुक्त भाषाएं या बोलियां भी समाप्त होती जा रही हैं। ऐसे में यदि उनकी

बोली या भाषा को संरक्षित रखना हो तो 'संगणात्मक भाषाविज्ञान' बहुत ही उपयोगी भूमिका निभा सकता है और निभा भी रहा है। इसके साथ ही अंकीकरण, धृतिसंचय जैसे अनुप्रयोगों के माध्यम से बोलियाँ एवं भाषाओं को बचाना, उनका अंकीकरण करना, उनके व्याकरणादि के आधार पर अनुवाद आदि के लिए उपकरण विकसित करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य भी संगणक भाषाविज्ञान द्वारा सफलतापूर्वक किए जा रहे हैं।

10. व्यतिरेकी भाषाविज्ञान

व्यतिरेकी भाषाविज्ञान के अंतर्गत दो भाषाओं की व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं की समानता और भिन्नताओं की तुलना की जाती है। यह कार्य किसी भाषा को अन्य भाषियों एवं विदेशियों को सिखाने में सहायता एवं सुविधा के लक्ष्य को ध्यान में रखकर किया जाता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने व्यतिरेकी भाषाविज्ञान को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया है, प्रथम : सैद्धांतिक व्यतिरेकी भाषाविज्ञान द्वितीय : अनुप्रयुक्त व्यतिरेकी भाषाविज्ञान।" सैद्धांतिक व्यतिरेकी भाषाविज्ञान में इस बात की सैद्धांतिक चर्चा होती है कि दो भाषाओं, भाषा - बोलियों, एक ही भाषा के विभिन्न कालों या एक ही काल की विभिन्न प्रयुक्तियों या शैलियों आदि का व्यतिरेकी अध्ययन कैसे किया जाए तथा वह किन - किन स्तरों पर हो।' अनुप्रयुक्त व्यतिरेकी भाषाविज्ञान में सैद्धांतिक स्वरूपों के अनुसार व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाता है। ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, प्रोत्ति, प्रयुक्ति, एवं शैली आदि के आधार पर ध्वनिय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, शब्दीय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, रूपीय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, वाक्यीय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, अर्थीय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, प्रोक्तिय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, शैलीय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, लेखीय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान आदि व्यतिरेकी भाषाविज्ञान की प्रमुख शाखाएं हैं।

बोध प्रश्न

- भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की मुख्य पद्धतियां कितनी मानी जाती है।
- संरचनात्मक भाषाविज्ञान तथा प्रकार्यात्मक भाषाविज्ञान में क्या अंतर है।
- अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान क्या है।
- संगणक भाषाविज्ञान से तात्पर्य क्या है।
- व्यतिरेकी भाषाविज्ञान के कितने प्रकार हैं।

3.4 : पाठ सार

भाषा विज्ञान की परंपरा यदपि बहुत प्राचीन है तथापि आधुनिक अर्थ में यह एक नवीन विद्याशाखा है। इसके अंतर्गत भाषा के विविध अंगों का गहन और सुव्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। यह मूलतः भाषाओँ कि आतंरिक संरचना का अध्ययन है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान के आते हैं। इसके अध्ययन के प्रणालियों के आधार पर कई प्रकार हैं – जैसे वर्णात्मक भाषा विज्ञान, संरचनात्मक भाषा विज्ञान, प्रकार्यात्मक भाषा विज्ञान, तुलनात्मक भाषा विज्ञान, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान, रुपविज्ञान, शैली विज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान संगणक भाषा विज्ञान और व्यतिरिकी भाषा विज्ञान ।

3.5: पाठ की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित विषय स्पष्ट हुए हैं –

1. भाषा विज्ञान की परिभाषा-भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि ।
2. भाषा विज्ञान का क्षेत्र और विस्तार ।
3. भाषा विज्ञान के अध्ययन की प्रणालियाँ।
4. भाषा विज्ञान के विभिन्न प्रकार ।

3.6: शब्द संपदा

1. व्युत्पत्ति - किसी शब्द की उत्पत्ति का स्त्रोत।
2. पाश्चात्य - पश्चिमी
3. साम्प्रेषणिक - सम्प्रेषण संबंधी (Communicative)
4. प्रकार्यात्मक - प्रकार्य संबंधी (Functional)
5. व्यतिरेकी - व्यतिरेक या विलोम संबंधी (Constrastive)
6. अनुप्रयुक्त - अनुप्रयोग संबंधी(Applied)

3.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड- (अ)

दीर्घ प्रश्न

1. भाषाविज्ञान की परिभाषाओं के आधार पर उसका अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. भाषाविज्ञान के अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रकाश डालिए।
3. भाषाविज्ञान के प्रकारों सहित अध्ययन की प्रणालियों पर विस्तृत विवेचन कीजिए।
4. भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की पाश्चात्य परंपरा पर प्रकाश डालिए।

5. भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की भारतीय परंपरा पर प्रकाश डालिए।

खंड- (ब)

लघु प्रश्नोत्तर

1. भाषा विज्ञान का कौन सा सिद्धांत धार्मिक आस्था पर अवलंबित है?(दैवीय सिद्धांत)
2. दैवीय सिद्धांत के अनुसार भाषा की उत्पत्ति किसके द्वारा हुई है? (ईश्वर के द्वारा)
3. संकेत सिद्धांत का दूसरा नाम कौनसा है?(निर्णय सिद्धान्त)
4. किस सिद्धांत के अनुसार प्राचीन मानव के विभिन्न संकेतों से ही व्यवहार की भाषा की उत्पत्ति हुई है?(संकेत सिद्धांत)

खंड- (स)

I. सही विकल्प चुनिए (बहुविकल्पीय)

1. 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा' पुस्तक के लेखक हैं-

(क) डॉ.हरीश शर्मा (ख) समाधान नारायण दास

(ग) डॉ. रूपाली चौधरी (घ) सुभवंदा पांडेय

2. भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। यह किस विद्वान द्वारा दी गई परिभाषा है।

(क) बाबूराम सक्सेना (ख) डॉ.मंगलदेव शास्त्री

(ग) देवेंद्रनाथ शर्मा (घ) श्यामसुंदर दास

3. भाषा संबंधी उठनेवाले प्रश्नों के जवाब किस विज्ञान से प्राप्त हो सकते हैं।

(क) इतिहास (ख) मानवविज्ञान (ग) भाषाविज्ञान (घ)ध्वनिविज्ञान

4. 'फिलोलॉजी' शब्द की मूल धातु किस भाषा की है।

(क) ग्रीक (ख) रोमन (ग) रूसी (घ) जापानी

5. भाषाविज्ञान के लिए 'ग्लोटोलॉजी' नाम किसने दिया।

(क)ग्लीसन (ख) ऑस्कललुईस चापरिया (ग) ब्लूम फील्ड (घ) एफ.जी.टकर

II. रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए

1..................सन् में हेग में अंतरराष्ट्रीय भाषाविज्ञान परिषद का प्रथम अधिवेशन हुआ।

2. विद्वानों ने वेदों की .... शाखाएं बताई हैं।

3. ....भी भाषाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय ग्रंथ माने जाते हैं।

4.........................संस्कृत व्याकरण ने लगभग 1500 वार्षिकों की रचना की जिनमें से बहुत से सूत्रों में पाणिनि के सूत्रों का स्पष्टीकरण मिलता है।

5. शब्द का आधार .... होती है।

III. सुमेल कीजिए

1.	भोलानाथ तिवारी	A.	भोजपुरी भाषा और साहित्य
2.	डॉ. धीरेंद्र वर्मा	B.	पालि,प्राकृत, अपभ्रंश
3.	डॉ. उदय नारायण तिवारी	C.	आधुनिक भाषाविज्ञान
4.	सुकुमार सेन	D.	ब्रजभाषा का विकास
5.	डॉ. हणमंतराव पाटील	E.	भाषाविज्ञान

3.8 : पठनीय पुस्तकें

1. डॉ. सुनीति कुमार चैटर्जी – द ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ बेंगाली लैग्वेज

2. डॉ. धीरेंद्र वर्मा,हिंदी भाषा का विकास

3. डॉ. उदय नारायण तिवारी, भोजपुरी भाषा और साहित्य

4. डॉ. माता बदल जायसवाल, मानक हिंदी का ऐतिहासिक व्याकरण, महामति प्रकाशन, इलाहाबाद,1979

इकाई 4: भाषा विज्ञान का इतिहास: भारतीय और पाश्चात्य परंपरा

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मूल पाठ: भाषा विज्ञान का इतिहास: भारतीय और पाश्चांत्य परंपरा

4.3. भारत में भाषावैज्ञानिक चिंतन परंपरा

4.3.2 पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक चिंतन की परंपरा

4.4 पाठ सार

4.5 पाठ की उपलब्धियाँ

4.6 शब्द संपदा

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

4.8 पठनीय पुस्तकें

4.1 : प्रस्तावना

भाषाओं वैज्ञानिक अध्ययन ही भाषा विज्ञान कहलाता है। इससे पूर्व की इकाईयों में भाषा का स्वरूप, वर्गीकरण, विविध रूप, भाषा विज्ञान की परिभाषाएं आदि का अध्ययन करने के बाद प्रस्तुत इकाई में भाषा विज्ञान का स्वरूप, उसका नामकरण, भाषाविज्ञान का अर्थ, भाषा विज्ञान संबंधी भारतीय तथा पाश्चात्य मतों की प्राचीन तथा आधुनिक परंपराएं कौन सी हैं। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा भाषा विज्ञान संबंधी किए गए कार्यों की प्रारंभ से आधुनिक काल तक की परंपरा आदि पर गौर करना आवश्यक है। इस अध्याय में भाषाविज्ञान के इतिहास पर दृष्टिपात किया जा रहा है।

4.2 : उद्देश्य

प्रिय छात्रो ! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- ♦ भाषा विज्ञान के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- ♦ भाषाविज्ञान के इतिहास की भारतीय परंपरा के बारे में जान सकेंगे।
- ♦ भाषाविज्ञान के इतिहास की पाश्चात्य परंपरा से अवगत हो सकेंगे।

4.3 : मूल पाठ : भाषा विज्ञान का इतिहास : भारतीय और पाश्चात्य परंपरा

अंग्रेजी भाषा में इतिहास को हिस्ट्री कहा जाता है जो कि यूनानी भाषा के ‘हिस्तरी’ शब्द से निकला है। ग्रीक शब्द हिस्तरी का हिंदी में अर्थ ‘बुनना या जानना’ होता है। जो कि मूल रूप

से ग्रीक भाषा के हिस्टोरिया शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ पूछताछ करना या शोध करना कहा जाता है इसीलिए इतिहास का मतलब पहले की घटनाओं के बारे में पूछताछ करना उसके बारे में शोध करना माना जाता है। हिंदी का इतिहास शब्द संस्कृत के 'इति+ह+आस' इन तीन शब्दों के मेल से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है – ऐसा ही निश्चित रूप से हुआ था। इति-ह-आह अर्थात भूत काल में जो इस तरह था अर्थात् इतिहास अतीत में घटित घटनाओं का विवरण है। किसी भी विषय के इतिहास से सीधा तात्पर्य है उसके उद्भव काल से वर्तमान तक के सफर का समेकित अध्ययन करना है। भाषाविज्ञान के अध्ययन की परंपरा को अग्रलिखित रूप में देखा जा सकता है-

4.3.1 भारत में भाषावैज्ञानिक चिंतन परंपरा

प्रकृतित: मानव का स्वभाव जिज्ञासु होता है और यही गुण मानव के बौद्धिक विकास का प्रमुख कारक है। जिज्ञासा के कारण ही पुरातन काल से ऋषि मुनियों, चिंतकों द्वारा स्थूल तत्त्वों के अतिरिक्त गंभीर और सूक्ष्म तत्त्वों पर चिंतन एवं मनन करते हुए प्रारंभिक विवेचन करते हुए आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्ञान की परंपरा छोड़ी। वाकतत्व, मन तत्व तथा प्राण तत्व मानव जीवन से जुड़े मूल भूत सूक्ष्म तत्व हैं। वाक-तत्व का संबंध मानव द्वारा प्रयुक्त भाषा है। भाषा के संबंध में किया गया चिंतन-मनन से जिस शास्त्र का विकास हुआ उसे भाषा-शास्त्र कहा गया। इसे ही परवर्ती काल में भाषा विज्ञान नाम से जाना गया। वैदिक ऋषियों द्वारा किए गए वाक-तत्व संबंधी विश्लेषण को 'ऋक' कहा गया। मनस्तत्त्व के विश्लेषण को 'यजुस्' कहा गया तथा प्राण-तत्त्व के विश्लेषण को 'साम' नाम दिया।

"ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्र पद्ये। (यजुर्वेद 36.1)

ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर वाक-तत्व का विवेचन किया गया है। ऋग्वेद की संहिता ऋचाओं का संग्रह है। ऋक संहिता का विभाजन दो प्रकार से किया जाता है- (1) अष्टक-क्रम और (2) मंडल-क्रम। अष्टक क्रम के अंतर्गत संपूर्ण संहिता आठ अष्टकों में विभाजित है और प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं। अध्याय वर्गों में विभाजित हैं और वर्ग के अंतर्गत ऋचाएं हैं। कुल अध्यायों की संख्या 64 है तथा वर्गों की संख्या 2006 है। मंडल-क्रम में संपूर्ण संहिता में मंडलों की संख्या दस है। प्रत्येक मंडल में कई अनुवाक हैं और प्रत्येक अनुवाक में कई सूक्त और प्रत्येक सूक्त में कई मंत्र हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद-संहिता में 10 मंडल, 85 अनुवाक, 1028 सूक्त और 10552 मंत्र हैं। ऋग्वेद की ऋचाएं वाणी के रहस्यमय स्वरूप से परिचित है। ऋचा कहती है कि कोई वाणी के स्वरूप को देखता हुआ भी नहीं देखता है,कोई उसे सुनता हुआ भी नहीं सुनता है,जबकि यह वाक-तत्व किसी की भी पात्रता को समझ कर उसके सम्मुख अपने स्वरूप को खोल देता है -

"उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।

उतो त्वस्मै तन्वे विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।। (ऋक्-10/71/4)

वाक-तत्व की महिमा के संबंध में ऋग्वेद में कहा गया है कि यह वाक-तत्व सभी प्रकार के तत्वों में व्याप्त है। जितनी और जहाँ तक द्युलोक और पृथ्वी की प्रतिष्ठा है उतनी और वहाँ तक वाक-तत्व प्रतिष्ठित है अर्थात् जितना और जहाँ तक ब्रह्मतत्त्व व्याप्त है उतना और वहाँ तक वाक-तत्व भी व्याप्त है -

"स्हस्त्रधा पञ्चदशन्युक्ता यावद्धावापृथिवीतावदित् तत्

स्हस्त्रधा महिमानः सहस्त्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्।। (ऋग्वेद 10/114/8

यर्जुवेद में मनस्तत्त्व से संबंधित अनेक स्थल हैं। महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य के प्रारंभ्र में भाषाशास्त्र से संबंधित अनेक मंत्र प्राप्त होते हैं। पतंजलि द्वारा महाभाष्य में मंत्रों की भाषाशास्त्रीय एवं व्याकरणिक व्याख्या की गई है। उनके अनुसार विद्वान व्याकरण इस विधा में इसीलिए रत रहते है जिससे वे वाग्देवी के परम रूप के दर्शन से स्वयं को कृतकृत्य कर सके -

"वाड्नों विवृणुयादात्मानमित्यध्येयं व्याकरणम्" (महाभाष्य)

प्राचीन ऋषियों ने भी शास्त्रीय चिंतनों का केंद्र वेद को ही माना है। अतएव वेद के षडंगों की कल्पना की गई। इनमें से विद्या, निरुक्त, व्याकरण और छंद का साक्षात् संबंध भाषा-शास्त्रा से है। इनमें प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्रीय चिंतन की रूपरेखा प्राप्त होती है।

शिक्षा ध्वनि- विज्ञान है। व्याकरण में पद-विज्ञान और वाक्य-विज्ञान का समन्वय है। निरुक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति का वर्णन है और छन्द में छन्दों की पाद-व्याख्या और प्रत्येक पाद में वर्णों और मात्राओं की निर्धारित संख्या का वर्णन होता है। इस प्रकार वेदांग के ये 4 अंग भाषाशास्त्र की प्रारम्भिक अवस्था का वर्णन करते हैं।

प्रमुख संस्कृत व्याकरणाचार्य है -

1. पाणिनि

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' ग्रंथ में माना है कि पाणिनि का समय 450 ई.पू. से 400 ई.पू. के मध्य है। आचार्य पाणिनि विश्व के सबसे बड़े वैयाकरण माने जाते हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य सभी भाषाशास्त्री इस विषय में एक मत हैं कि पाणिनि ने ही सर्वप्रथम भाषाशास्त्र की सर्वांगीण व्याख्या की है। उन्होंने संस्कृत भाषा का जितना सूक्ष्म विवेचन किया है, उतना विश्व की किसी भाषा का व्यापक अध्ययन नहीं मिलता है। पाणिनि का व्याकरण पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों के लिए भी आदर्श ग्रंथ रहा है। पाणिनि कृत व्याकरण में भाषाशास्त्र के विभिन्न अंगों- ध्वनि-विज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान, अर्थविज्ञान और तुलनात्मक व्याकरण का बहुत ही विशद विवेचन प्राप्त होता है। पाणिनी की रचनाओं से अग्रलिखित रूप में परिचित हुआ जा सकता है-

1. अष्टाध्यायी

अष्टाध्यायी पाणिनि की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें लौकिक संस्कृत के साथ ही वैदिक व्याकरण भी दिया गया है। यह सूत्र-पद्धति से रचित व्याकरण ग्रंथ है। इसमें निहित आठ अध्यायों के कारण ही इसका नाम 'अष्टाध्यायी' पड़ा। इसमें कुल 3997 सूत्र हैं। इसके विभिन्न अध्यायों में इन विषयों का विवेचन है-संधि, कारक, कृत और तद्धित प्रत्यय, समास, सुबन्त और तिङन्त प्रकरण, प्रक्रियाएँ, परिभाषाएँ, द्विरुक्त कार्य तथा स्वर-प्रक्रिया आदि।

2. अन्य ग्रंथ

इसके अतिरिक्त धातु-पाठ, गणपाठ,उणादिसूत्रा,लिंगानुशासन। आदि चार प्रमुख ग्रंथ भी पाणिनी द्वारा ही रचित प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त दो अन्य ग्रंथ पाणिनि के नाम से मिलते हैं, परंतु इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। ये ग्रंथ हैं-1. जाम्बवती-विजय या पाताल-विजय (महाकाव्य), 2. द्विरूपकोष (कोषग्रंथ)।

2. कात्यायन

कात्यायन ने अष्टाध्यायी के सूत्रों पर वार्तिकों की रचना की है। इनका दूसरा नाम वररुचि भी है। कात्यायन का समय 350 ई. पू. के लगभग माना जाता है। अष्टाध्यायी के सूत्रों में आवश्यक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन के लिए कात्यायन ने जो नियम बनाए हैं, उन्हें वार्तिक कहते हैं। कात्यायन ने पाणिनी से छूटे हुए नियमों का प्रतिपादन किया। वार्तिक की दूसरी व्याख्या भी है, यथा- 'वृत्तेर्व्याख्यान' वार्तिकम् सूत्रों के तात्पर्य को बताने वाली व्याख्या को वृत्ति कहते हैं और वृत्ति के विशद विवेचन को वार्तिक कहते हैं। कात्यायन ने अपने वार्तिकों में इन लक्ष्यों की पूर्ति की है। अतएव कात्यायन को वार्तिककार भी कहा जाता है। वार्तिकों के अतिरिक्त इनकी एक काव्य-रचना 'स्वर्गारोहण' भी मानी जाती है। कात्यायन ने भाषाविकास, भाषा के लोक व्यावहारिक महत्व, विभाषाओं की सत्ता, शब्द और अर्थ का नित्य संबंध सिद्धांतों का निर्माण किया।

3. पतंजलि

पतंजलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी और कात्यायन के वार्तिकों के आधार पर अष्टाध्यायी पर महाभाष्य नाम की सर्वांगीण व्याख्या की है। भाषा की सरलता, विशदता, स्वाभाविकता और विषय-प्रतिपादन की उत्कृष्ट शैली के कारण महाभाष्य सारे संस्कृत वाङ्मय में आदर्श ग्रंथ माना जाता है। व्याकरण के दार्शनिक तत्त्वों को भी सरल और सुबोध भाषा में समझाया गया है। यह व्याकरण का ही ग्रंथ न होकर एक विश्वकोष है। इसमें तत्कालीन ऐतिहासिक, सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक और सांस्कृतिक तथ्यों का भंडार है। इसमें भाषा शास्त्रा के सभी

पक्षों पर विशद विवेचन प्राप्त होता है। पतंजलि ने व्याकरण के दार्शनिक पक्ष, स्फोट और ध्वनि सिद्धांत, शब्द और अर्थ के स्वरूप का निर्णय, शब्द की नित्यता और अनित्यता का विशद विवेचन, भाषाशास्त्र में विभाषाओं का महत्त्व, संस्कृत को विश्वभाषा के रूप में प्रस्तुतीकरण, भाषा के विभिन्न रूप-विभाषा, अपभ्रंश आदि का उल्लेख, ध्वनिविज्ञान, निर्वचन, व्याकरण और दर्शनशास्त्रा का एकत्रा समन्वय, 'लोकतः' के द्वारा लोकव्यवहार एवं लोक-प्रचलित भाषा के स्वरूप को साहित्यिक भाषा से अधिक प्रामाणिक बनाना, ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान और अर्थविज्ञान के गूढ़ सिद्धांतों का स्पष्टीकरण आदि महत्वपूर्ण कार्य किए।

4.3.2 पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक चिंतन की परंपरा -

(अ) प्राचीन युग

1.सुकरात (469 ई. से 399 ई.पू.)

भाषा के अध्ययन के सिलसिले में सुकरात के मन में प्रश्न आया था कि क्या शब्द और उसके अर्थ में कोई स्वाभाविक संबंध है। किसी भी वस्तु का जो नाम है क्या उसके लिए वहीं नाम स्वभाविक रूप से हो सकता यदि कोई दूसरा नाम रखा जाता तो क्या वह अस्वाभाविक हो जाता? इसका सुकरात नकारात्मक उत्तर देते हैं, जो ठीक ही है। वस्तु और उसके नाम या शब्द और अर्थ में कोई स्वाभाविक संबंध न होकर माना हुआ संबंध है, इसी कारण प्रत्येक भाषा में पृथक्-पृथक् नाम हैं। यदि स्वाभाविक संबंध होता तो संभवतः एक वस्तु का प्रायः एक ही नाम सभी भाषाओं में होता। इतना ही क्यों, तब तो संसार में एक ही भाषा (स्वाभाविक) भी संभवत होती। पर, इसके अतिरिक्त सुकरात का यह भी विश्वास था कि ऐसी भाषा का निर्माण असम्भव नहीं है, जिसमें शब्द और अर्थ या वस्तु और नाम का स्वाभाविक संबंध हो। सुकरात का यह द्वितीय कथन स्पष्ट ही सत्य से दूर है।

2. प्लेटो (429 से 347 ई.पू.)

प्लेटो अपने गुरु सुकरात की भांति ही एक दार्शनिक थे। इनका भी भाषा के विचार से कोई सीधा संबंध नहीं है। आनुषंगिक रूप से इन्होंने 'क्रेटिलस' तथा 'सोफ़िस्ट' आदि में अपने विचार इस संबंध में प्रकट किये हैं। इनके द्वारा भी दी गई बातों को संक्षेप में यों गिनाया जा सकता है।

1. यूरोप में ध्वनियों के वर्गीकरण का प्रथम श्रेय प्लेटो को जाता है। इन्होंने ग्रीक ध्वनियों को घोष और अघोष दो वर्गों में बांटा। फिर आघोष के भी दो भेद किये।
2. 'सोफिस्ट' में विचार और भाषा विचार करते समय इन्होंने स्पष्ट किया है, कि विचार और भाषा में थोड़ा ही अंतर है। विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही

जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा का नाम दिया जाता है। अपनी एक दूसरी पुस्तक में प्लेटो भाषा और विचार के सत्यतः एक होने की बात को दूसरे शब्दों में दोहराते हैं। प्लेटो का विचार है कि मूलतः भाषा और विचार एक हैं, पर बाह्य अंतर इतना अवश्य है कि एक ध्वन्यात्मक है और दूसरा अध्वन्यात्मक।

3. उद्देश्य-विधेय तथा वाच्यों आदि की ओर भी इन्होंने कुछ संकेत किये हैं। इस प्रकार वाक्य के विश्लेषण तथा शब्द-भेदों के संबंध में भी उन्हें कुछ ज्ञान होने के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं।

4. इनकी पुस्तकों में कुछ व्युत्पत्ति की ओर भी संकेत मिलता है, पर उसे वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

3. अरस्तू (385 ई.पू. से 322 ई.पू.)

अरस्तू भी उपर्युक्त विद्वानों की भांति तत्ववेत्ता थे, पर आनुषंगिक रूप से आपने भी भाषा पर कुछ विचार किया, और प्लेटो के कार्य को कुछ और आगे बढ़ाया। अरस्तू का प्रसिद्ध ग्रंथ 'पोयटिक्स' है। इसके तृतीय भाग के 24वें तथा 25वें अंश में शैली के विश्लेषण में लेखक का ध्यान भाषा की ओर भी गया है। यह ध्यान विशुद्ध रूप में भाषा-विज्ञान से संबंधित न होने पर भी महत्वपूर्ण है, अतः कुछ विस्तार से देखने योग्य है।

1. अरस्तू वर्ण को अभिभाज्य ध्वनि मानते हैं। इसके उन्होंने स्वर, अन्तस्थ और स्पर्श तीन भेद किये हैं। इनकेआगे दीर्घ,ह्रस्व, अल्पप्राण तथा महाप्राण आदि अन्य भेद किये गये हैं। अरस्तू द्वारा दी गई स्वर की परिभाषा (स्वर वह है जो बिना जिह्वा या ओठ के उच्चरित हो) कुछ अंशों में वैज्ञानिक कही जा सकती हैं।

2. मात्रा तथा सम्बन्ध-सूचक शब्दों पर भी संक्षेप में विचार किया गया है।

3. वाक्यों का पदों (उद्देश्य, विधेय) में विभाजन करते हुए संज्ञा और क्रिया पर कुछ विस्तार से प्रकाश डाला गया है। क्रिया का विचार करते समय लेखक का ध्यान काल की ओर भी गया है।

4. कारक तथा उनको प्रकट करने वाले शब्दों की ओर भी यूरोप में प्रथम संकेत यहीं मिलता है।

5. शब्द, मोटे रूप से 'साधारण' और 'दुहरे', दो प्रकार के माने गये हैं। साधारण से अरस्तू का अर्थ 'अर्थरहित' से है और दुहरे शब्द वे हैं जिनमें 'सार्थक' और 'निरर्थक' दोनों तत्व हों। इसी प्रसंग में तिहरे और चौहरे शब्द भी माने गये हैं। शब्द के शुद्ध, विदेशी, परिवर्तित, मनगढ़ंत आदि और भी भेद किये गये हैं, जो शब्द-समूह की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। प्लेटो के श्रेणी-विभाग को पूरा कर 8 बनाने का श्रेय भी अरस्तू को ही है।

6. अरस्तू ने स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसकलिंग तथा उनके लक्षणों पर भी विचार किया है।

(आ) आधुनिक युग

1.सर विलियम जोंस (1746-1796)

सर विलियम जोंस कलकत्ता हाईकोर्ट में चीफ जस्टिस थे। यहां उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया तो आपको यूरोपीय भाषाओं से अनेक दृष्टियों से अभूतपूर्व साम्य दिखाई पड़ा। 1796 में रॉयल सोसाइटी की नींव डालते हुए आपने संस्कृत के महत्व की घोषणा की और संस्कृत को कई बातों में ग्रीक और लैटिन से भी श्रेष्ठ बतलाया। इनकी इस घोषणा के बाद अन्य यूरोपीय विद्वानों का ध्यान संस्कृत भाषा के अध्ययन की ओर गया। जोन्स ने अपने इसी व्याख्यान में शब्द, धातु तथा व्याकरण की दृष्टि से ग्रीक, संस्कृत, लैटिन, गाथिक, केल्टिक तथा पुरानी फारसी की एक मूल से निकली होने के कारण अनुमान लगाया था।

2. फ्रीड्रिख वान श्लेगल (1772-1829)

श्लेगल् भी संस्कृत के विद्वान् थे। इन्होंने केवल भाषा की दृष्टि से संस्कृत को न पढ़कर दर्शन और काव्य का भी अवगाहन किया था। आपने पेरिस जाकर 1803 में एक सिपाही अलेक्जेंडर हैमिल्टन से, जो युद्ध का कैदी था, संस्कृत पढ़ी थी और बाद तक ज्ञान-वृद्धि करते रहे। भारतीय भाषा और ज्ञान के संबंध में इनका प्रसिद्ध ग्रंथ On the language and the Wisdom of the Indians 1808 में प्रकाशित हुआ। इन्हीं के प्रयासों के फलस्व्रूप जर्मनी में संस्कृत का प्रचार बढ़ा।

तुलनात्मक व्याकरण के विषय में भी आवाज उठाने वाले प्रथम विद्वान् श्लेगल ही हैं। इसके अतिरिक्त, इन्होंने बहुत-से ऐसे शब्दों को इकट्ठा किया जो बिना किसी विशेष अर्थ या ध्वनि-संबंधी अन्तर के ग्रीक, लैटिन, जर्मन तथा संस्कृत में एक थे। इनके पूर्व कुछ लोगों का विश्वास था कि भारतीयों के उधार लेने के कारण ही शब्द साम्य मिलता है, पर श्लेगल् ने पुष्ट आधारों पर इसका खंडन किया। तुलना करने में आपने कुछ ध्वनि-परिवर्तन तथा ध्वनि-नियमों (लैटिन 'एफ' के लिए स्पैनिशीय 'एच'जर्मन 'एफ' के लिये लैटिन 'पी'आदि) की ओर भी संकेत किया था। जर्मन-ध्वनि-नियम की जानकारी का मूल बीज यही है। संसार की भाषाओं का वर्गीकरण करने वाले प्रथम विद्वान भी श्लेगल् ही हैं। इन्होंने भाषाओं को 2 वर्गों में रखा-

1. संस्कृत तथा सगोत्रीय भाषाएं- श्लेगल् द्वारा दी गई इस वर्ग की परिभाषा बहुत कुछ आज के श्लिष्ट वर्ग से मिलती-जुलती है।
2. अन्य भाषाएं- इस वर्ग को श्लेगल् लगभग अश्लिष्ट-वर्गीय मानते हैं, जिसमें प्रत्यय, उपसर्ग आदि जोड़े जाते हैं। इस दूसरी शाखा के अंत में वे चीनी भाषा को स्थान देते हैं, पर साथ ही

इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि अन्य भाषाओं से चीनी कुछ भिन्न है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से 2 वर्ग बनाते हुए भी श्लेगल् ने संसार की भाषाओं को तीन वर्गों में बांटा है।

3. याकोब ग्रिम (1785-1863)

फेयरी टेल्स के लेखक यही ग्रिम हैं। इन्होंने वर्ण-परिवर्तन का विवेचन किया है, जिसे मैक्समूलर के बाद से ग्रिम-नियम कहा जाने लगा। ग्रिम के गढ़े बहुत-से पारिभाषिक शब्द आज भी भाषा-विज्ञान में प्रचलित हैं। इन्होंने अपनी ऐतिहासिक प्रणाली द्वारा ध्वनि के अतिरिक्त वाक्य पर भी कार्य किया है। इनके व्याकरण के चौथे भाग में यह प्रकरण देखने ही योग्य है। जीवन के अन्तिम चरण में ग्रिम बर्लिन में अध्यापक थे और अन्त तक भाषा-विज्ञान संबंधी कार्य करते रहे।

4. फ्रान्त्स बॉप

बॉप को तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का जनक कहा जाता है। इस संबंध में इनकी प्रथम पुस्तक 'धातु-प्रक्रिया पर' 1816 में प्रकाशित हुई, जिसमें ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता, जर्मन तथा संस्कृत के रूप तुलनात्मक ढंग से दिये गये थे। 1822 में बॉप प्रसिद्ध बर्लिन एकेडमी में अध्यापक नियुक्त हुए। इसके बाद 19वीं सदी के दूसरे चरण में (1833 और 1849 के बीच में) इनकी प्रसिद्ध पुस्तक तुलनात्मक व्याकरण प्रकाशित हुई। तुलनात्मक व्याकरण की प्रथम पुस्तक यही है। विद्वान् लेखक ने संस्कृत, अवेस्ता आर्मीनीयन, ग्रीक, लैटिन, लिथुआनियन, प्राचीन स्लावियन, गॉथी तथा जर्मन का तुलनात्मक व्याकरण दिया है। प्रत्ययों के विषय में हार्नीटुके तथा हम्बोल्ड्ट आदि की भांति बॉप का भी विश्वास था कि ये कभी न कभी स्वतन्त्र शब्द अवश्य थे। स्वरों के संबंध में बॉप का विचित्र मत था। पहले इनका विश्वास था कि लिपि की अपूर्णता के कारण ही यूरोपीय भाषाओं के ए और ओ के स्थान पर संस्कृत में अ मिलता है। बाद में ग्रिम के प्रभाव से अ, इ और उ को ही उन्होंने मूल स्वर माना, फिर भी ये तथा इनके अनुगामी संस्कृत के अ को मूल भाषा का प्रतिनिधि मानते रहे। 1880 के लगभग 'तालव्य नियम' की खोज के बाद इस भ्रम का निवारण हो सका।

5. हेमैन स्टाइन्थाल (1825-1899)

हेमैन स्टाइन्थाल को नव्यशाखा का अग्रणी भाषाविज्ञानी माना जाता है। ये व्याकरण और भाषा-विज्ञान के साथ-साथ तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान के ज्ञाता थे। इनसे पूर्व भाषा के अध्ययन में मनोविज्ञान का सहारा नहीं लिया जाता था। इनकी मान्यता रही कि भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन मनोविज्ञान के बिना संभव नहीं है। इन्होंने 1855 में प्रकाशित अपने प्रथम ग्रंथ में मनोविज्ञान तर्क-शास्त्र और व्याकरण के पारस्परिक संबंध का विवेचन किया। भाषा के मनोविज्ञान पर स्टाइन्थाल के और भी ग्रंथ प्रकाशित हुए। इनके नूतन पथ के मुख्य प्रेरणास्रोत

हम्बोल्ड्ट के ग्रंथ थे। स्टाइन्थाल ने चीनी तथा अफ्रीका की मन्डे-निग्री भाषाओं का अध्ययन किया।

6. कार्ल ब्रुगमान

नव्यशाखा के विद्वानों में ये सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। ब्रुगमान ने भारोपीय भाषा के व्याकरण पर काफी काम किया, जो कि बड़े-बड़े पांच भागों में प्रकाशित हुआ। हर्मन ओस्टाफ के साथ इनका मिश्रित कार्य रूप-रचना पर है। यह ग्रंथ 'नई शाखा की गीता' के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रुगमान का अनुनासिक-सिद्धांत (Sonant nasal theory) काफी प्रसिद्ध सिद्धांत है। इस सिद्धांत से ग्रिम नियम की अनेक शंकाओं एवं अपवादों का समाधान हुआ।

7. ग्रैसमैन, वर्नर अस्कोली तथा येस्पर्सन

ग्रैसमैन ने अपने 'ग्रैसमैन-नियम' का प्रतिपादन किया जिससे ग्रिम-नियम (ध्वनि-विज्ञान) के कुछ अपवादों का निराकरण हुआ। ग्रिम नियम के शेष अपवाद 1877 में वर्नर के नियम से दूर हुए। 1870 में अस्कोली ने मूल भारोपीय भाषा में की 'क' ध्वनि संबंधी नवीन अन्वेषण किए जिससे सिद्ध हुआ कि कुछ भाषाओं में तो यह 'क' ध्वनि ही रही और कुछ में 'स' या 'श' हो गई। इसी आधार पर ब्रैडके द्वारा भारोपीय परिवार के केंतुम और सतम वर्ग बनाये गये। येस्पर्सन ने व्याकरण के दार्शनिक आधार, वाक्यविज्ञान, अंग्रेजी, व्याकरण तथा भाषा की उत्पत्ति और विकास पर अत्यंत महत्वपूर्ण काम किया है। सैद्धांतिक तथा अन्य दृष्टियों से अन्य काम करने वालों में स्वीट, पामर, टकर, वान्द्रिये, ग्रैफ, ग्रे, सटुर्टवेंट, सस्यूर, सपीर, ब्लूमफील्ड, डेनियलजोन्स आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है।

4.4: पाठ सार

भारत में भाषा वैज्ञानिक चिंतन की परंपरा अत्यंत प्राचीन है । इसका कारण यह है कि हमारे यहाँ सृष्टि का नाद अथवा वाक् से उत्पन्न माना गया है । वेद के छः अंगों में से शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त और छंद इन चार अंगों का सीधा संबंध भाषा विज्ञान से है। पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि जैसे विद्वानों ने व्याकरण के बहाने भारतीय भाषा विज्ञान की नींव रखी है। पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक चिंतन में, सुकरात प्लेटो और अरस्तु के उपरांत आधुनिक युग में सर विलियम जोन्स, ग्रीम और यास्पर्न आदि अनेक भाषा वैज्ञानिक हुए हैं । हिंदी में भी भाषा वैज्ञानिक चिंतन पृष्ठ प्राप्त होती है ।

4.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

उपर्युक्त सामग्री के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों के बारे में विशद जानकारी प्राप्त हुई-

1. भारत में भाषा वैज्ञानिक चिंतन की प्राचीन परंपरा ।

2. पश्चिम में भाषा वैज्ञानिक चिंतन की परंपरा।
3. हिंदी के भाषा वैज्ञानिक चिंतकों का योगदान।

4.6 : शब्द संपदा

1. पाणिनिकालीन	-	पाणिनि के समय का
2. वार्तिक	-	वार्ता संबंधी, व्याख्यात्मक ग्रन्थ
3. सगोत्रीय भाषाएँ	-	एक ही गोत्र या परिवार की भाषाएँ
4. भारोपीय	-	भारत और यूरोप में प्रचलित

4.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड- (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिए।

1- आधुनिक भारतीय विद्वानों द्वारा भारतीय भाषाविज्ञान पर कार्य के संबंध में विस्तापूर्वक विवेचन दीजिए।

2- भाषाविज्ञान के अध्ययन की प्राचीन भारतीय परंपरा पर निबंध लिखिए।

3- आधुनिक भारतीय विद्वानों के कार्यों पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

4- भारतीय भाषाविज्ञान के क्षेत्र में विदेशी विद्वानों के कार्यों पर निबंध लिखिए।

5- भारतेत्तर देशों में भाषाविज्ञान की परंपरा प्रकाश डालिए।

खंड- (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिए।

1- ऋग्वेद-संहिता में कितने मंडल, अनुवाक, शूक्त तथा मंत्र हैं।

2- किसके द्वारा महाभाष्य में मंत्रों की भाषाशास्त्रीय एवं व्याकरणिक व्याख्या की गई है।

3 - वाक्यपदीयकार किसे कहा जाता है।

5- वेद-मंत्रों के शुद्ध उच्चारण में कोई अन्तर आने न पाए इसके लिए किए उपायों का क्या कहते हैं।

6- भारत में वर्तमान समय में जिसे ध्वनि-विज्ञान कहते हैं। प्राचीन काल में उसे क्या कहा जाता था।

खंड (स)

1. सही विकल्प चुनिए

1. ध्वनिग्रामीय स्कूल (Phoneme school) किसे कहा जाता है।

   अ. अमेरिकल स्कूल आ.लंदन स्कूल
   इ. प्राग स्कूल ई. कोपेनहैगेन स्कूल

2. विलियम ड्वाइट ह्विटनी की पुस्तक कौन सी है।

अ. भाषा का अध्ययन’(1867) आ. ‘भाषा का जीवन और विकास’(1875)

इ. संस्कृत भाषा का व्याकरण(1879) ई. उक्त सभी

3. ‘पूरब की पवित्र पुस्तकें’ किसकी कृति है।

अ. फ्रैडरिख मैक्समूलर आ. भोलानाथ तिवारी

इ. हेमैन स्टाइन्थाल ई. कोइ नहीं

4. रूडल्फ राथ की पुस्तक है।

अ St. Petersburg Dictionary आ. Language

इ. Outline of linguistic analysis ई. Morphology

5. नायडा की पुस्तक है।

अ. Morphology आ. Language

इ. A manual of Phonology ई. A course in Modern linguistics

II. रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. यास्क का समय .... के लगभग माना जाता है।
2. यास्क से प्राचीन कितने .... के नाम मिलते हैं।
3. निघंटु में ....अध्याय है।
3. डॉ.सिद्धेश्वर वर्मा की पुस्तक ‘The Etymologies of Yaksa का प्रकाशन किस ....सन में हुआ।
4. निरुक्त का अर्थ ....है।
5. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल की पुस्तक का नाम...........है।

III. सुमेल कीजिए

1. डॉ.सिद्धेश्वर वर्मा	अ) ऐंद्र संप्रदाय
2. इंद्र ऋषि	आ) शब्दानुशासन
3. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल	इ) कच्चायन व्याकरण
4. कात्यायन	ई) द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण
5. काल्डवेल	उ) पाणिनिकालीन भारतवर्ष
6. हेमचंद्र	ऊ) The Etymologies of Yaksa

4.8 : पठनीय पुस्तकें

1. डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका

2. डॉ. भोलानाथ तिवारी, मानक हिदी का स्वरूप

5.भारतभूषण सरोज एवं डॉ. कृष्णदेव शर्मा, भाषाविज्ञान

7. विजयपाल सिंल, भाषाविज्ञान

9. डॉ. भोलनाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, दिल्ली, 1974

इकाई 5 : ध्वनि विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 मूल पाठ: ध्वनि विज्ञान

5.3.1 स्वन विज्ञान का स्वरूप और शाखाएँ

5.3.2 वाग्यंत्र और उसके कार्य

5.3.3 स्वन की अवधारणा व परिभाषा

5.3.4 स्वनों के भेद

5.3.4.1 स्वरों का वर्गीकरण

5.3.4.2 व्यंजनों का वर्गीकरण

5.3.5 स्वन परिवर्तन के कारण

5.3.6 स्वन परिवर्तन की दिशा

5.4 पाठ सार

5.5 पाठ की उपलब्धियाँ

5.6 शब्द संपदा

5.7 परीक्षार्थ प्रश्न

5.8 पठनीय पुस्तकें

5.1: प्रस्तावना

भाषा की सबसे लघुतम इकाई को ध्वनि कहते हैं। वैसे तो ध्वनि दो चीजों की टकराहट से उत्पन्न होती है। पर भाषा विज्ञान के अंतर्गत हम केवल भाषिक ध्वनियों का अध्ययन करते हैं। मानव के मुख - विवर या वागेंद्रिय द्वारा जो वाणी प्रकट होती है, उसे ध्वनि कहते हैं। ध्वनि मनुष्य के वागेंद्रिय द्वारा उत्पन्न होकर, वायु तरंग के माध्यम से संवहित होने के पश्चात् श्रोता द्वारा गृहीत होता है। इस प्रकार ध्वनि के लिए तीन बातें अपेक्षित हैं-उत्पादन, संवहन व ग्रहण। प्रकृति में घर्षण या टकराहट के द्वारा निःसृत ध्वनि जिससे वह अपने विचारों का सम्प्रेषण करता है, सार्थक ध्वनि कहलाती है।

5.2: उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप

1. ध्वनि विज्ञान से परिचित होंगे।

2. ध्वनि के लिए -उत्पादन, संवहन व ग्रहण तीन क्रियाओं से परिचित होंगे।

3. ध्वनि की परिभाषा, स्वरूप व दो भेद - स्वर व व्यंजन से परिचित होंगे।

4. ध्वनि- परिवर्तन के कारण व ध्वनि नियमों से परिचित होंगे।

5.3: मूल पाठ : ध्वनि विज्ञान

5.3.1 स्वन विज्ञान का स्वरूप और शाखाएँ

ध्वनि या स्वन को अंग्रेज़ी में Phoneme तथा ध्वनि (स्वन) के अध्ययन से सम्बंधित शास्त्र या विज्ञान को फोनेटिक्स (phonetics) कहते है। इसका संबंध ग्रीक शब्द Phone शास्त्र से है, जिसका अर्थ ध्वनि है। Tics व Logy विज्ञान के समानार्थी हैं।

इन दिनों Phonetics अर्थात् स्वनविज्ञान या स्वानिकी और Phonology अर्थात् स्वनिम विज्ञान शब्द का प्रयोग हो रहा है। डॉ.भोलानाथ तिवारी के अनुसार इन दोनों में प्रयोगगत अंतर है।

फोनेटिक्स (Phonetics) या ध्वनिविज्ञान, ध्वनिशास्त्र, स्वनविज्ञान या स्वानिकी विज्ञान में हम सामान्य रूप से ध्वनियों का उच्चारण, वर्गीकरण आदि का अध्ययन करते हैं।

फोनोलॉजी (Phonology) या स्वनिम विज्ञान, ध्वनि प्रक्रिया, स्वन प्रक्रिया के अंतर्गत भाषा विशेष की ध्वनियों की व्यवस्था, इतिहास तथा परिवर्तन आदि का अध्ययन किया जाता है। किसी भी भाषा की ध्वन्यात्मक विशेषताओं से परिचित कराने का कार्य ध्वनि-विज्ञान करता है।

स्वन विज्ञान की शाखाएँ :-

स्वनों के अध्ययन के तीन पक्ष है- (1) उच्चारण (2) संवहन (3) श्रवण। उच्चारण तथा श्रवण का सम्बन्ध शरीर विज्ञान से है, तथा संवहन का भौतिक विज्ञान से। प्रस्तुत तीनों पक्षों के आधार पर स्वन विज्ञान की तीन शाखाएँ इस प्रकार स्पष्ट होती है -

(1) उच्चारणमूलक स्वन विज्ञान (Articulatory Phonetics)

(2) संवहनमूलक स्वन विज्ञान (Acoustic Phonetics)

(3) श्रवण मूलक स्वन विज्ञान (Auditory Phonetics)

(1) उच्चारणमूलक स्वन विज्ञान (Articulatory Phonetics)

उच्चारणमूलक स्वन विज्ञान, स्वन विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा है। उच्चारण अवयव क्या है, स्थान क्या है तथा प्रयत्न क्या है, स्वनों का उच्चारण कैसे होता है इत्यादि अनेक प्रश्नों का उत्तर उच्चारणमूलक स्वन विज्ञान ही दे सकता है। ध्वनियों का उच्चारणिक वर्णन तथा वर्गीकरण करना ही उच्चारणमूलक स्वन विज्ञान का मूल कार्य है।

(2) संवहनमूलक स्वन विज्ञान (Acoustic Phonetics)

इसे भौतिक स्वन विज्ञान या संवाहनिक ध्वनि विज्ञान भी कहा जाता है। "भौतिक उर्जा के रूप में स्वन, ध्वनि लहरों का स्वरूप, उनकी आवृति संख्या, एवं कम्पन का आयाम, नाद और शोर आदि सन्दर्भों का सम्यक विवेचन भौतिक स्वन विज्ञान का विशेष-क्षेत्र है|" इस शाखा में ध्वनियों का अध्ययन तरंगों के रूप में किया जाता है। संवहन की प्रक्रिया सभी ध्वनियों में समान है, चाहें फिर वह मानव-मुख से निकली हो या बाह्य तत्वों से। आज इस शाखा की सहायता से स्वनिम और सहस्वनिमों का निर्णय सरल हुआ है।

(3) श्रवण मूलक स्वन विज्ञान (Auditory Phonetics)

इस शाखा का सम्बन्ध श्रवण से है। श्रवणेंद्रिय की रचना, श्रवण-मनोविज्ञान, मानव मात्र की श्रवण क्षमता इत्यादि विषयों पर इसी शाखा के अंतर्गत विचार किया जाता है। वक्ता द्वारा उच्चारित ध्वनि तरंगों के रूप में श्रोता तक पहुँचती है। उच्चारित ध्वनियों को कान से ग्रहण करके उन्हें मस्तिष्क तक पहुँचाता है। अतः कानों का कार्य सम्प्रेक्षक का है, जो भाषा के अर्थ-पक्ष की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

5.3.2 वाग्यंत्र और उनके कार्य

वाग्यंत्र / उच्चारण अवयव / ध्वनियंत्र (Vocal apparatus)

उच्चारण अवयव में निम्नलिखित अंग होते हैं -

1. उपालिजिह्वा (pharynx)
2. भोजन-नलिका (Gullet)
3. स्वर यंत्र (कंठ -पिंटक, Larynx)
4. स्वर यंत्र -मुख (काकल, Glottis)
5. स्वर-तंत्रि (ध्वनि-तंत्रि, Vocal Cord)
6. स्वरतंत्र-मुख-आवरण (अभिकाकल या स्वर यंत्रावरण, Epiglottis)
7. नासिका- विवर (Nasal Cavity)

8.	मुख-विवर (Mouth Cavity)
9.	अलिजिह्वा (कौआ, घंटी, Uvula)
10.	कंठ (Gutter)
11.	कोमल तालू (Soft palate)
12.	मूर्द्धा (Cerebrum)
13.	कठोर तालू (Hard palate)
14.	वर्त्स (Alveola)
15.	दांत (Teeth)
16.	ओष्ठ (Lip)
17.	जिह्वा मध्य (Middle of the tongue)
18.	जिह्वा नोक (Tip of the tongue)
19.	जिह्वाग्र (Front of the tongue)
20.	जिह्वापश्च (Back of the tongue)
21.	जिह्वा मूल (Root of the tongue)

उपर्युक्त मुखावयवों का स्वनों के उच्चारण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है, जिनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार हैं

1. श्वास नलिका - श्वसन नलिका की ध्वनि उत्पादन में विशेष भूमिका रहती है। प्राणियों की श्वास प्रक्रिया के मूलाधार फेफड़े हैं। मनुष्य की श्वास प्रक्रिया दिन-रात चलती रहती है। श्वास लेने, श्वास के द्वारा हवा को फेफड़ों तक ले जाने और फेफड़ों से उस हवा को बाहर निकाल देने के साथ दुबारा फेफड़ों तक पहुँचाने का क्रम निरंतर चलता रहता है।

2. भोजन नलिका - श्वास नलिका की तरह भोजन नलिका की भी ध्वनि उत्पादन में विशेष भूमिका रहती है। ये दोनों नलिकाएँ ऊपर और नीचे अलग अवश्य है पर कंठस्थल पर दोनों एक-दूसरे से मिली हुई है। मुख से भेजे गए भोजन को पाचन-तंत्र की ओर ले जाने का काम भोजन नलिका का है।

3. स्वर तंत्र - स्वर तंत्र श्वास नलिका के ऊपरी भाग पर स्थित है। फेफड़ों से निकली हवा को बाहर करने का काम स्वरयंत्र करता है। स्वरयंत्र के बीच ओंठों के आकार की दो मांसल झिल्लियाँ होती हैं, इन्हीं मांसल झिल्लियों को स्वरयंत्र कहा जाता है। इन झिल्लियों के माध्यम से स्वरयंत्र के मुख की अनेक आकृतियाँ बनती हैं।

4. स्वरयंत्र मुख - भोजन नलिका के पास साँस नली के करीब यह आवरण होता है जिससे भोजन या पेय पदार्थ श्वास नली में न पहुँच जाए इसका ध्यान आवरण रखता है। इस आवरण को ही स्वरयंत्र मुख कहते है। 'आ' तथा 'ह' ध्वनियों का उच्चारण स्वर यंत्र मुख से होता है।

5. स्वर तंत्रियाँ - स्वरतंत्र में झिल्ली के पास तंत्री होती है। मौन की स्थिति में तंत्रियाँ खुली रहती है, परन्तु उच्चारण प्रक्रिया में इनमें कंपन होता है। अघोष ध्वनियों में ये खुली रहती हैं, जबकि घोष ध्वनियों में एक दूसरे से चिपक जाती हैं जिससे प्राणवायु घर्षण के साथ बहिर्गत होती है।

6. नासिका विवरण -मुख की छत एवं नाक के बीच का भाग नासिका विवर होता है। नासिका विवर की कई ध्वनियों के उच्चारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। 'ङ' 'ञ','ण', 'न', 'म' इत्यादि ध्वनियाँ नासिका विवर से उच्चारित होती हैं।

7. स्वरयंत्र मुख आवरण - स्वरयंत्र की सुरक्षा हेतु इसके मुख के ऊपर एक मांसल भाग होता है। ध्वनि-उच्चारण के समय यह भाग सिमट कर वायु के बाहर निकलने के लिए मार्ग प्रदान करता है। साथ ही भोजन के समय कोई कण श्वास नली में न पहुँच जाए इसका भी यह भाग ध्यान रखता है। वह मांसल आवरण बढ़कर साँस मार्ग को ढँक लेता है।

8. मुख विवर - ओठों से गले तक का भाग मुख विवर है| ध्वनियों के उच्चारण में स्थानिक अंगों के रूप में सभी अवयव मुख विवर में ही होते हैं।

9. काकल - इसे अलिजिह्वा या कौआ भी कहा जाता है। यह कोमलतालु का अंतिम भाग है। यह एक छोटा-सा गोलाकार लटकता हुआ मांसपिण्ड होता है। यह माँसल पिण्ड ध्वनि उत्पादन के समय आवश्यकतानुसार मुख विवर के मार्ग और नालिका विवर के मार्ग को खोलता व बंद करता है।

10. कंठ -कंठ ग्रसनिका, गलबिल आदि नामों से जाना जाता है। यह तालु का अंतिम कोमल भाग है। क, ख, ग, घ, ङ् ध्वनियों का उच्चारण स्थान कंठ है। ध्वनियों के बोलने में तान का रूप-निर्धारण कंठ पर आश्रित है।

11. कोमल तालु - मुख विवर के ऊपर के भाग को तालु कहते है। कोमल तालु, तालु का वह पिछला हिस्सा है, जो कोमल है। कोमल तालु ऊपर नीचे हो सकता है। यह वाक् यंत्र का महत्त्वपूर्ण भाग है। क वर्गीय ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का पिछला भाग इसी का स्पर्श करता है।

12. मूर्द्धा -तालु के पीछे का भाग मूर्द्धा होता है। यह अस्थिमय है। यह कठोर व कोमल तालु के बीच का भाग है। ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष इत्यादि ध्वनियों का उच्चारण स्थान मूर्द्धा है।

13. कठोर तालु - मुख विवर के ऊपरी छत का दूसरा प्रमुख भाग कठोर तालु है। दूसरे शब्दों में कोमल तालु के आगे कठोर तालु वाग्यन्त्र का यह एक स्थिर अंग है। च, छ, ज, झ, ञ, श, य इत्यादि ध्वनियों का उच्चारण स्थान यही है।

14. वर्त्स - ऊपर के दाँतों के मूल से कठोर तालु के प्रारंभ तक का खुरदरा भाग वर्त्स कहलाता है| जिहवा के भाग इसका स्पर्श करके ध्वनि उच्चारण में सहायक होते हैं| 'र' के उच्चारण में यह सहायक है|

15. दाँत - दाँत नीचे के होंठ और जिह्वा की नोंक के साथ मिलकर ध्वनि उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। त, थ, द, ध ध्वनियों का उच्चारण उपरी दाँतों को स्पर्श करके किया जाता है।

16. होंठ - ध्वनियों के उच्चारण में ऊपरी एवं निचले दोनों ओष्ठों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती हैं। दोनों होंठ पूर्ण रूप से खोलकर 'आ' स्वर का उच्चारण किया जाता है। प, फ, ब, भ, म इत्यादि ध्वनियाँ ओष्ठ हैं।

17. जिह्वा -ध्वनियों के उच्चारण का सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव जिह्वा है। जीभ के पाँच भाग माने जाते हैं-(1) जिह्वा नोक (2) जिह्वा अग्र (3) जिह्वा मध्य (4) जिह्वा पश्च (5) जिह्वा मूल। जीभ की गतिशीलता ध्वनि उच्चारण में विशेष सहयोगी सिद्ध होती हैं।

वाग्यन्त्र के कार्य

ऊपर हमने वाक् अवयवों का उल्लेख किया है। ध्वनियों के उच्चारण में प्रयुक्त उपर्युक्त अवयव शरीर विज्ञान की दृष्टि से श्वसन तंत्र तथा पाचन तंत्र के अंतर्गत आते हैं। नासिका विवर, स्वर यंत्र एवं फेफड़े को श्वसन तंत्र में रखा जा सकता है। मुख-विवर तथा गलबिल का पाचन तंत्र से सम्बन्ध है।

फेफड़े धौंकनी का कार्य करते है। फेफड़े का मुख्य कार्य ऑक्सीजन ग्रहण करना और निःश्वास से दूषित वायु अर्थात् कार्बन डाईऑक्साइड निकालना है। बातचीत करने में तथा सार्थक ध्वनियों की रचना में फेफड़े मदद करते हैं।

वस्तुतः फेफड़े श्वास लेने के लिए हैं। वहाँ से जब श्वास बहिर्गत होती है तब उसे स्वरयंत्र के मध्य से गुज़रना पड़ता है। स्वतन्त्रियों के संकीर्ण मार्ग से गुज़रते समय नाद की उत्पत्ति होती है, यदि यह नाद बिना अवरोध के निकले तो 'आ' का उच्चारण होता है किन्तु वायु जब नाद के साथ मुख विवर में पहुँचती हैं तो जिह्वा अवरोध उत्पन्न करती है। स्वरों के उच्चारण में यह अवरोध कम होता है, पर व्यंजनों में अधिक होता है।

स्पर्श व्यंजन क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ इत्यादि के उच्चारण में जिह्वा केवल मुख्यायव स्पर्श करती है। त, थ, द, ध के उच्चारण में जीभ का दाँत से स्पर्श मात्र ही होता है फिर भी ये ध्वनियाँ स्पष्ट रूप से उच्चरित होती हैं।

बोध प्रश्न :-

- उच्चारण अवयव में स्थिर, अचल अवयव व चल अवयव कौन-कौन से हैं?
- ओष्ठ्य की सहायता से किन ध्वनियों के उच्चारण होते हैं?

5.3.3 स्वन की अवधारणा व परिभाषा

हम आगे स्पष्ट कर चुके है कि स्वन भाषा की लघुतम इकाई है। विभिन्न विद्वानों ने ध्वनि की परिभाषाएँ इस प्रकार प्रस्तुत की है -

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में -"भाषा-ध्वनि वह ध्वनि है, जिसे मनुष्य अपने मुँह के नियत स्थान से निश्चित प्रयास द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे और श्रोता जिसे उसी अर्थ में ग्रहण करे।

2. "ध्वनि मनुष्य के विकल्प परिहीत नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा उत्पादित और श्रोत्रेंद्रिय द्वारा अविकल्प रूप से गृहित शब्द लहरी है। "

3. डॉ. श्यामसुंदर दास ने लिखा है -"भाषणावयवों द्वारा उत्पन्न तथा श्रवण-गुण वाली ध्वनि भाषण-ध्वनि कही जाती हैं। "

हिंदी की प्राचीन ध्वनियाँ, नई विकसित ध्वनियाँ, विदेशी ध्वनियाँ व अंग्रेज़ी ध्वनियाँ :-

प्राचीन ध्वनियाँ :- प्राचीन ध्वनियों की संख्या 52 हैं, जिनमें 13 स्वर, 39 व्यंजन है।

(1) स्वर - मूल स्वर -अ, आ, इ, ई,उ, ऊ, ऋ ॠ लृ - नौं ध्वनियाँ हैं।

संयुक्त स्वर -ए (अ+इ), ओ (अ+उ), ऐ (आ+इ), औ (आ+उ) चार हैं।

(2) व्यंजन -25 स्पर्श व्यंजन, जो स्थान-भेद के अनुसार पाँच वर्गों में विभाजित हैं -

कंठ्य - क्, ख्, ग्, घ्, ङ्

तालव्य - च्, छ्, ज्, झ्, ञ्

मूर्धन्य - ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्

दन्त्य - त्, थ्, द्, ध्, न्

ओष्ठ्य - प्, फ्, ब्, भ्,म्

अन्तस्थ ध्वनियाँ -य्, र्, ल्, व्।

ऊष्म ध्वनियाँ - श्, स्, ष्, ह्।

संयुक्त व्यंजन -क्ष्, (कष) त्र् (त्र), ज्ञ् (ज् ञ)|
अनुस्वार (ं)
विसर्ग (:)
चन्द्र-बिंदु (ँ)|
नई विकसित ध्वनियाँ - स्वर-अ +ए (ऐ), अ +ओ (औ)

- व्यंजन -ड़, ढ़, न्ह, म्ह, ल्ह, ळ, ळह।

विदेशी ध्वनियाँ - अरबी-फ़ारसी ध्वनियाँ -क़, ख़, ग़, ज़, फ़।

अंग्रेज़ी ध्वनियाँ - ॲ, ऑ,ऍ,।

5.3.4 स्वनों के भेद -

स्वनों के दो भेद हैं - स्वर और व्यंजन

स्वर :- स्वर वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख विवर से निकल जाती है।

व्यंजन :- व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकल पाती उन्हें या तो पूर्ण अवरुद्ध होकर इसे बाहर निकलना पड़ता है या तो संकीर्ण मार्ग से घर्षण खाते हुए किसी भाग को कंपित करते हुए निकलती है।

वस्तुतः स्वर के उच्चारण में जिह्वा एक विशेष सीमा तक ऊपर उठकर वायु मार्ग को संकरा बना देती है| जहाँ कहीं वायु मार्ग में अवरोध होता है वहाँ व्यंजन ध्वनियाँ उच्चरित होती है।

5.3.4.1 स्वरों का वर्गीकरण

इससे पूर्व ही स्पष्ट किया जा चुका है कि स्वर वे ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में वायु-मार्ग में कहीं अवरोध न हो। स्वरों के उच्चारण में जिह्वा ओष्ठ, अलिजिह्वा, कंठ की मांसपेशियाँ आदि में विभिन्नता आ जाती है। इसके अतिरिक्त स्वर की मात्रा भी इस बात पर निर्भर करती है कि मुख-विवर या नासिका विवर की गूंज कब तक होती है। इन सभी दृष्टियों से स्वरों के वर्गीकरण करने के निम्नलिखित आधार हैं-

1.जिह्वा के भागों की दृष्टि से 2. जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से 3. ओठों की आकृति की दृष्टि से।

1) जिह्वा के भागों की दृष्टि से -इस दृष्टि से स्वरों के तीन भाग किए जाते हैं।

i) अग्र-स्वर ii) मध्य स्वर iii) पश्च-स्वर

i) अग्र-स्वर :- जब जिह्वा का अग्रभाग ऊपर उठकर स्वर का उच्चारण करता है तब इ, ई, ए, ऐ स्वरों का उच्चारण होता है।

ii) मध्य स्वर :- इसे केन्द्रीय स्वर भी कहा जाता है जिसमें जिह्वा का मध्य भाग ऊपर उठता है। जैसे अ के उच्चारण में।

iii) पश्च-स्वर :- जिह्वा का पश्च-भाग ऊपर उठने पर उ, ऊ, ओ, औ, स्वर का उच्चारण होता है।

2) जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से - स्वरों के उच्चारण में जिह्वा कभी ऊपर उठती है तो कभी नीचे, तो कभी इन दोनों स्थितियों के बीच में होती है। इस दृष्टि से स्वरों को चार भागों में बाँट सकते हैं - i) संवृत्त ii) अर्द्धसंवृत्त iii) विवृत iv) अर्द्ध विवृत

i) संवृत्त :-संवृत्त शब्द का अर्थ है बंद या संकरा। जब जिह्वा उच्चारण करते समय ऊपर उठ जाती है व मुख विवर अत्यंत संकरा हो जाती है, तो उसे संवृत्त कहते हैं। जैसे -ई, इ, उ, ऊ।

ii) अर्द्धसंवृत्त :-जिस स्वर के उच्चारण में जिह्वा और मुख-विवर के ऊपरी भाग की दूरी संवृत्त स्वर की अपेक्षा अधिक रहती है उसे ईषत सवृत्त या अर्द्धसंवृत्त स्वर कहते हैं। जैसे, अनेक शब्द में ए स्वर ईषत संवृत्त है।

iii) विवृत :-इसका अर्थ है खुला हुआ अर्थात् जिस स्वर के उच्चारण में जिह्वा अधिक से अधिक नीचे की ओर आ जाती है और जिह्वा तथा मुख-विवर के ऊपरी भाग के मध्य अधिक से अधिक दूरी हो जाती है उसे विवृत्त स्वर कहते हैं। जैसे 'आम' शब्द में 'आ' विवृत्त स्वर है।

iv) अर्द्ध विवृत :- जिस स्वर के उच्चारण में विवृत्त की अपेक्षा जिह्वा और मुख-विवर के ऊपरी भाग की दूरी कुछ कम हो जाती है, उसे ईषद विवृत्त या अर्ध विवृत्त कहते हैं। जैसे, 'बोतल' शब्द में 'ओ' ईषत् विवृत्त स्वर है।

3) ओठों की आकृति की दृष्टि से :- स्वरों का वर्गीकरण ओष्ठों की स्थिति के विचार से भी किया जाता है, क्योंकि किसी स्वर के उच्चारण में ओष्ठ उदासीन रहते हैं तो किसी स्वर के उच्चारण में ये संकुचित हो जाते हैं और किसी स्वर के उच्चारण में ये वृत्ताकर हो जाते हैं। ओष्ठों की इन्हीं स्थितियों को देखकर स्वरों के निम्नलिखित तीन भेद हैं - i) वृत्ताकार स्वर ii) अर्द्धवृत्ताकार स्वर iii) अवृत्ताकार स्वर

i) वृत्ताकार स्वर :- जिस स्वर के उच्चारण में ओष्ठों की आकृति पूर्णतया वृत्ताकार हो जाती है, उसे वृत्ताकार स्वर कहते हैं। जैसे, ऊ वृत्ताकार स्वर है।

ii) अर्द्धवृत्ताकार स्वर:- जिस स्वर के उच्चारण में ओष्ठों की आकृति पूर्णतया वृत्ताकार न हो कर अर्द्धवृत्ताकार हो जाती है,उसे अर्द्धवृत्ताकार स्वर कहते हैं| जैसे आ अर्द्धवृत्ताकार स्वर है|

iii) अवृत्ताकार स्वर :- जिन स्वरों के उच्चारण में ओष्ठ स्वाभाविक रूप में खुले रहते हैं अथवा वृत्ताकार या अर्द्धवृत्ताकार नहीं होते, उन्हें अवृत्ताकार स्वर कहते हैं। जैसे इ, ई, ए, ऐ अवृत्ताकार स्वर है।

बोध प्रश्न :-

- जिह्वा की ऊंचाई की दृष्टि से स्वर के कितने भेद हैं?
- जिह्वा के भागों की दृष्टि से स्वर के कितने भेद हैं?

5.3.4.2 व्यंजनों का वर्गीकरण

व्यंजनों का वर्गीकरण भी निम्नलिखित दो आधारों पर किया जाता है -

(अ) स्थान के आधार पर (आ) प्रयत्न के आधार पर

(अ) स्थान के आधार पर :- इसके आधार पर व्यंजनों के निम्नलिखित आठ भेद होते हैं -

i) काकल्य :-जिस व्यंजन का उच्चारण काकल स्थान से होता है, उसे काकल्य व्यंजन कहते हैं। इसके उच्चारण में मुख-विवर खुला रहता है और निःश्वास बंद कंठ-द्वार को झटके के साथ खोलकर बाहर निकल पड़ता है। जैसे 'ह' या अंग्रेजी का एच (h) काकल्य व्यंजन है।

ii) कंठ्य :- जिस व्यंजन का उच्चारण कंठ से होता है, उसे कंठ्य व्यंजन कहते हैं। इसके उच्चारण में जिह्वा का पिछला भाग कोमल तालु का स्पर्श किया करता है। जैसे क, ख, ग, घ कंठ्य व्यंजन होते हैं।

iii) तालव्य :- जिस व्यंजन का उच्च्चरण तालु से होता है, उसे तालव्य व्यंजन कहते है। इसके उच्चारण में जिह्वोपाग्र कठोर तालू का स्पर्श किया करता है। जैसे च, छ, ज, झ, य, श तालव्य व्यंजन है।

iv) मूर्धन्य :- जिस व्यंजन का उच्चारण मूर्धा से होता है, उसे मूर्धन्य व्यंजन कहते हैं। इसके उच्चारण में जिह्वा कठोर तालु के पिछले भाग अर्थात् मूर्धा का स्पर्श किया करती है। जैसे ट, ठ, ड, ढ, र, ष मूर्धन्य व्यंजन हैं।

v) वर्त्स्य :-जिस व्यंजन का उच्चारण वर्त्स से होता है, उसे वर्त्स्य व्यंजन कहते हैं। इसके उच्चारण में जिह्वानीक तालु के अंतिम भाग एवं उपरी मसूड़ों का स्पर्श किया करती है। जैसे 'न्ह' वर्त्स्य व्यंजन हैं।

vi) दन्त्य :- जिन व्यंजनों का उच्चारण दंत-पंक्ति से होता है, उन्हें दन्त्य व्यंजन कहते हैं। इनके उच्चारण में जिह्वा की नोक ऊपर की दन्त-पंक्ति का स्पर्श किया करती है। जैसे त, थ, द, ध, ल, स दन्त्य व्यंजन है।

vii) ओष्ठ्य :- जिन व्यंजनों का उच्चारण ओष्ठों से होता है, उसे ओष्ठ्य व्यंजन कहते हैं। ये ओष्ठ्य व्यंजन दो प्रकार के होते हैं-द्वयोष्ठ्य और दन्त्योष्ठ्य। जिन व्यंजनों का उच्चारण दोनों ओष्ठों से होता है, वे द्वयोष्ठ्य व्यंजन कहलाते हैं। जैसे प, फ, ब, भ, म द्वयोष्ठ्य व्यंजन हैं। जिन व्यंजनों का उच्चारण दन्त और ओष्ठ दोनों से होता है, उन्हें दन्त्योष्ठ्य व्यंजन कहते हैं। जैसे 'फ़', और 'व' दन्त्योष्ठ्य व्यंजन हैं।

viii) जिह्वामूलीय :-जिन व्यंजनों का उच्चारण जिह्वा के मूल से होता है, उन्हें जिह्वामूलीय व्यंजन कहते हैं। जैसे क़, ख़, ग़ जिह्वामूलीय व्यंजन हैं।

(आ) प्रयत्न के आधार पर :- व्यंजनों का वर्गीकरण प्रयत्न के आधार पर भी किया जाता है। प्रयत्न के मुख्यतया दो भेद होते हैं - आभ्यंतर और बाह्य।

(क) आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के आठ निम्नलिखित भेद होते हैं-

i) स्पर्श :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में अवयवों का पूर्णतया स्पर्श होता है अर्थात् जिनके उच्चारण में जिह्वा कंठ से लेकर ओष्ठ तक सभी स्थानों का स्पर्श किया करती है, उन्हें स्पर्श व्यंजन कहते हैं| क-वर्ग, च-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग, प-वर्ग के सभी व्यंजन स्पर्श व्यंजन कहलाते हैं|

ii) स्पर्श संघर्षी :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्पर्श के साथ-साथ निःश्वास के निकालने में हल्का-सा संघर्ष होता है उन्हें स्पर्श संघर्षी व्यंजन कहते हैं। जैसे च, छ, ज, झ स्पर्श संघर्षी व्यंजन कहलाते हैं।

iii) संघर्षी :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में वायु-मार्ग किसी एक स्थान पर इतना अधिक संकीर्ण हो जाता है कि निःश्वास रगड़ खाकर बाहर निकालता है और उसमें बाहर निकलने पर सर्प की सीत्कार जैसी ऊष्म ध्वनि होती है, उन्हें संघर्षी व्यंजन कहते हैं। जैसे स, श, ष,ज आदि संघर्षी व्यंजन हैं।

iv) पार्शिवक :- व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा की नोक मूर्धा का स्पर्श करती है और निःश्वास वायु जिह्वा के अगल-बगल से निकलती है। उन्हें पार्श्विक व्यंजन कहते हैं। जैसे ल पार्श्विक व्यंजन हैं।

v) लुंठित :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा बेलन की तरह लपेट खाकर तालु का स्पर्श करती है और जिह्वा की नोक वर्त्स पर बार-बार ठोकर मारती है, वे लुंठित कहलाते हैं। जैसे र, ऍ व्यंजन लुंठित हैं।

vi) उत्क्षिप्त :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा तालु के किसी भाग को झटके से छूकर हट जाती है उन्हें उत्क्षिप्त व्यंजन कहते हैं। जैसे ड़ और ढ़ उत्क्षिप्त व्यंजन है।

vii) अंतस्थ या अर्धस्वर :- कुछ व्यंजन ऐसे होते हैं, जो कभी स्वर की तरह और कभी व्यंजन की तरह बोले जाते हैं उन्हें अंतस्थ या अर्धस्वर कहते हैं। य और व अंतस्थ या अर्धस्वर कहलाते है।

viii) अनुनासिक :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में निःश्वास वायु मुख-विवर के साथ-साथ नासिका-विवर से भी निकला करती है, उन्हें अनुनासिक व्यंजन कहते हैं। जैसे ङ्, ञ, ण, न, म अनुनासिक व्यंजन हैं।

(ख) बाह्य प्रयत्न के आधार पर भी व्यंजनों के निम्नलिखित आठ भेद होते हैं -

i) विवार :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वर तंत्रियाँ पूर्णतया खुली रहती हैं,उन्हें विवार कहते हैं। जैसे क, च, ट, त, प।

ii) संवार :-जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वर-तंत्रियाँ बंद हो जाती हैं, उन्हें संवार कहते हैं। जैसे ग, ब, ज, ड, द।

iii) श्वास :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में श्वास- प्रश्वास की क्रिया अबाध रूप से चलती रहती है, उन्हें श्वास व्यंजन कहते हैं। जैसे छ, फ, आदि।

iv) नाद :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वर-तंत्रियों के अंतर्गत कंपन होता है, उन्हें नाद कहते हैं। जैसे म, ण, न आदि।

v) अघोष :- प्रत्येक वर्ग के प्रथम और द्वितीय व्यंजन को अघोष व्यंजन कहते हैं। जैसे क,ख,च,छ,ट,ठ, त, थ और प,फ, अघोष व्यंजन हैं।

vi) घोष :- प्रत्येक वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पंचम व्यंजन को घोष व्यंजन कहते हैं। जैसे ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, और ब, भ, म घोष व्यंजन होते हैं।

vii) अल्पप्राण :-जिन व्यंजनों के उच्चारण में निःश्वास- वायु का थोड़ा प्रयोग किया जाता है उन्हें अल्पप्राण व्यंजन कहते है। प्रत्येक वर्ग के प्रथम, तृतीय और पंचम व्यंजन अल्पप्राण होते हैं। क, ग, ङ, च, छ, ञ, ट, ठ, ण, त, थ, न, और प, फ, म अल्पप्राण व्यंजन हैं।

viii) महाप्राण :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में निःश्वास-वायु का अधिक प्रयोग होता है, उन्हें महाप्राण व्यंजन कहते हैं। अंग्रेज़ी के अक्षरों में एच (h) जोड़कर महाप्राण व्यंजन बनाए जाते हैं। जैसे k+h (ख), j+h (झ) आदि| प्रत्येक वर्ग के द्वितीय और चतुर्थ व्यंजन महाप्राण होते हैं| जैसे ख,घ, छ, झ,ड, ढ, थ, ध, और फ, भ महाप्राण व्यंजन हैं।

बोध प्रश्न :-

- घोष और अघोष की परिभाषा दीजिए?

- स्वरों के वर्गीकरण के कितने आधार हैं?

5.3.5 स्वन परिवर्तन के कारण :

प्रत्येक सजीव भाषा में सतत् परिवर्तन होता रहता है। जीवित भाषा का तो लक्षण ही उसकी गतिशीलता है। जो भाषा गतिशील न हो, जो विकसित न हो और जो युग के अनुसार परिवर्तित न हो वह मृत कहलाती है। मृत भाषा में वह क्षमता नहीं होती जिसके माध्यम से वह सभी विचारों व भावों को संप्रेषित कर सके। अत: भाषा का विकास या परिवर्तन अत्यावश्क है जो ध्वनि परिवर्तन के माध्यम से होता हैं।

ध्वनि-परिवर्तन के कारणों को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -

1) बाह्य कारण और 2) आंतरिक कारण।

बाह्य कारण:-ध्वनि परिवर्तन के बाह्य कारण मुख्यतया तीन होते हैं-व्यक्तिगत, भौगोलिक और ऐतिहासिक।

1) व्यक्तिगत कारण :-ध्वनि का संबंध व्यक्ति से अत्यन्त गहरा होता है। क्योंकि प्राय: एक व्यक्ति दूसरे का अनुकरण कर ही भाषा सीखता है। इस अनुकरण में दो इन्द्रियों का सर्वाधिक हाथ रहता है -श्रवण और वाक्। श्रवणेंद्रिय से वह किसी ध्वनि को सुनता है और वागेंद्रिय से उस ध्वनि का उच्चारण करता है। संसार में जितने व्यक्ति होते हैं, उतनी ही श्रवणेंद्रियाँ और वागेंद्रियाँ होती हैं। श्रवणेंद्रियों की विविधता के कारण कभी-कभी होता यह है कि एक व्यक्ति कुछ कहता है और दूसरे कुछ और ही सुना करते हैं। जैसे कोई कहता है -'छोटी बहू आई है'। सुनने वाला सुनता है 'छोटी बही आई है' / कहने वाला 'ओउम नमः सिध्दम', सुनने वाला सुनता है ओनामासीधम आदि-आदि। श्रवण की इस अपूर्णता के कारण अनेक ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती हैं। ऐसे ही वागेंन्द्रिय की विविधता के कारण सभी व्यक्ति किसी एक ध्वनि का एक-सा उच्चारण नहीं करते। कोई 'द' ध्वनि को 'ड' कहता है, कोई 'त' ध्वनि को 'ट' कहता है और कोई 'ट' ध्वनि को 'त' कहता है। जैसे एक अंग्रेज़ी तो 'देहरादून' को 'डेहराडून' कहता है और 'तोताराम' को 'टोटाराम' कहता है, जबकि एक मणिपुर का निवासी 'रोटी' को 'रोती' कहता है। इस प्रकार जैसे श्रवण की अपूर्णता ध्वनियों में विकार उत्पन्न किया करती हैं, वैसे ही व्यक्ति के वाग्यंत्र के कारण भी अनेक ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती हैं।

2 .भौगोलिक कारण - मानव जिस वाग्यन्त्र से ध्वनियों का उच्चारण किया करता है, उसकी रचना पर भौगोलिक वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इसी कारण एक देश की ध्वनियों का उच्चारण दूसरे देश के व्यक्ति सरलता एवं सुगमता से नहीं कर पाते। यदि वे उच्चारण करने का प्रयास भी करते हैं, तो उन ध्वनियों में प्रायः परिवर्तन आ जाता है, क्योंकि देखा गया है कि जो शीतप्रधान देश हैं, वहाँ के निवासियों का वाग्यन्त्र पूर्णरूप से खुल नहीं पता। इसलिए

वे प्राय: दन्त्य ध्वनियों (त,थ,द) का उच्चारण ठीक नहीं करते, जबकि उष्ण कटिबंध में रहने वाले व्यक्तियों का वाग्यन्त्र सदैव पूर्णरूप से खुला रहता है। अत: वे सभी ध्वनियों का उच्चारण ठीक-ठीक कर लिया करते हैं। जैसे, शीत कटिबंध के निवासी प्राय: 'स' को 'श', 'त' को 'ट', 'थ' को 'ठ', 'द' को 'ड' बोला करते हैं। ऐसे ही जो भू-भाग अधिक उर्वर एवं समृद्ध होते हैं और जहाँ आवागमन के साधन भी अधिक होते हैं, वहाँ विभिन्न भाषा-भाषियों के आवागमन के कारण प्राय: उस भू-भाग की ध्वनियों में विकार उत्पन्न होते हैं और जहाँ की भूमि ऊसर, पंकिल, मरुस्थलीय एवं बंजर होती हैं, वहाँ मानवों का आवागमन नहीं होता। अत: वहाँ की ध्वनियों में परिवर्तन नहीं होते। जैसे, लिथुआनिया की भूमि अत्यधिक पंकिल एवं आर्द्र है और वहाँ दुर्लभ्य पर्वत हैं। अत: ऐसी भूमि की ओर कोई व्यक्ति जाना पसंद नहीं करता। इसी कारण वहाँ की ध्वनियाँ अभी अपरिवर्तित एवं विकारहीन बनी हुई हैं।

3. ऐतिहासिक कारण :-ध्वनियों के विभिन्न परिवर्तनों पर ऐतिहासिक परिस्थितियों का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इतिहास से ही यह ठीक-ठीक बोध होता है कि कौन-सी भाषा की ध्वनियाँ किस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक या अन्य परिस्थितियों के कारण किन-किन दिशाओं में परिवर्तित हुई हैं और किन-किन विदेशी भाषाओँ के संपर्क के आने के कारण कैसे-कैसे उनमें ध्वनि विकार होते चले गये हैं। मुख्यतया भाषाओं का इतिहास इस बात का साक्षी है कि किस प्रकार उनकी ध्वनियाँ क्रमशः परिवर्तित होकर नये-नये रूप धारण करती रही है। भारत में ही पहले संस्कृत भाषा की ध्वनियाँ आभीरों के आगमन के साथ ही परिवर्तित होने लगीं और कालांतर में प्राकृत और अपभ्रंश भाषा की ध्वनियों के रूप में बोली जाने लगीं, जिसके परिणामस्वरूप अग्नि का अग्गि हो गया, कर्म का कम्म हो गया, धर्म का धम्म हो गया, अद्य का अज्ज हो गया आदि-आदि। ऐसे ही मुसलमानों के संपर्क में आने के कारण यहाँ कितने ही ध्वनि-परिवर्तन हुए। आज 'प्रकाश' को 'परकाश', 'प्रसाद' को 'परसाद' आदि कहने का कारण मुस्लिम-संपर्क ही हैं। अंग्रजों के संपर्क से भी पर्याप्त ध्वनि विकार हुए हैं। आज बहुत से भारतवासी 'देहरादून' को 'डेहराडून', 'केरल' को 'कैरला', 'कलकत्ता' को 'कैलकटा', 'गुप्त' को 'गुप्ता', 'मिश्र' को 'मिश्रा', 'राम' को 'रामा' केवल 'अंग्रेजी' के प्रभाव के कारण ही बोलते हैं।

आंतरिक कारण :-ध्वनि-विकार के आंतरिक कारण भी अनेक होते हैं, किंतु उनमें से ग्यारह कारण प्रमुख हैं -1.मुख-सुख 2. श्रुति 3. उपमान 4. कलागत-स्वातंत्र्य 5. प्रमाद या अशक्ति 6. अज्ञान या अशिक्षित 7. बलाघात 8. भावावेश 9. उच्चारण-त्वरा 10. प्रतिध्वनि -प्रवृत्ति और 11. लिपि की अपूर्णता

1.मुख-सुख :-इसे प्रयत्न-लाघव भी कहते हैं। प्राय: मनुष्य में यह सहज प्रवृति देखी जाती है कि वह अल्पकाल में अल्प श्रम से ही अधिक से अधिक काम कर लेना चाहता है। उसकी यह प्रवृत्ति ध्वनियों के उच्चारण में भी देखी जाती है और उसकी इस प्रवृत्ति के कारण ही अनेक ध्वनि-विकार हो जाते हैं, जिनमें से ध्वनि-लोप, समीकरण, विषमीकरण आदि प्रमुख हैं जैसे, 'नारायण' को 'नरायण', 'माइक्रोफोन' को 'माइक', 'रामप्रसाद' को 'आर.पी.' 'पर्यंक-ग्रंथि' को 'पाल्ती' आदि कहना प्रयत्न-लाघव का ही परिणाम है।

2. श्रुति :- बहुत से ध्वनि-विकार श्रुति के कारण हो जाते हैं। यह श्रुति दो प्रकार की होती हैं - पूर्व-श्रुति और पर-श्रुति। पूर्व-श्रुति के कारण ही 'स्त्री' को 'इस्त्री', 'स्टेशन' को 'इस्टेशन' या 'अट्टेशन', 'स्कूल' को 'इस्कूल' आदि कहा जाता है और पर श्रुति के कारण ही 'धर्म' को 'धरम', 'कर्म' को 'करम', 'इंद्रा' को 'इन्दर' आदि बोला जाता है। अत: बहुत से आगम संबंधी ध्वनि-विकार श्रुति के कारण हुआ करते हैं।

3.उपमान :- इसे अंधासादृश्य भी कहते हैं। प्राय: मानवों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे किसी प्रचलित शब्द की ध्वनियों के समान ही उससे मिलते-जुलते शब्द का उच्चारण करने लगते हैं और उससे फिर विचित्र प्रकार का ध्वनि-विकार हो जाता है। जैसे, दुःख के समान की सुक्ख उच्चारण करना, निर्गुण के समान सर्गुण बोलना आदि।

4.कलागत-स्वातंत्र्य :- प्राय: कविजन निरंकुश हुआ करते हैं और वे मनमाने ढंग से शब्दों को तोड़-मोड़ करते है| उनकी इस स्वच्छंद मनोवृत्ति के कारण अनेक ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती हैं। जैसे, 'रघुराज', 'रघुराउट', 'रघुराऊ', 'रघुराया' आदि 'गजवर' को 'गैवर', 'नदी' को 'नै', 'वय' को 'वै', 'किरण' को 'किरन', 'बादल' को 'बादर' आदि कहना।

5.प्रमाद या अशक्ति :- बहुत-सी ध्वनियों के प्रमाद या उनके उच्चारण की अपूर्णता अथवा अशक्ति के कारण बदल जाती हैं। इसी के कारण बहुत से लोग 'बंदूक' को 'दंबुक', 'पुलिस' को 'पुसिल' आदि कहने लगते हैं। बच्चों में प्राय: अशक्ति या उच्चारण की अपूर्णता अधिक पायी जाती है। इसी कारण वे 'बतासा' को 'बसाता', 'जलेबी' को 'जबेली', 'अमरुद' को 'अरमुद' आदि कहा करते हैं। इस प्रकार बहुत-से वर्ण-विपर्यय वाले ध्वनि- विकार प्रमाद या अशक्ति के कारण परिवर्तित हो जाते हैं।

6.अज्ञान या अशिक्षित :- कुछ ध्वनि-विकार अज्ञान या अशिक्षा के कारण भी हो जाते हैं, क्योंकि जिन शब्दों का ठीक-ठीक ज्ञान व्यक्तियों को नहीं होता अथवा शिक्षित न होने के कारण जिन शब्दों को वे ठीक-ठीक उच्चारण नहीं कर पाते, उनमें प्राय: ध्वनि-विकार हो जाता है।

इसलिए 'लैंटर्न' को 'लालटैन', 'मैकेंजी' को 'मक्खनजी', 'एडवांस को अडवांस', 'सेक्रेटरी' को 'सिकत्तर', 'हॉस्पिटल' को 'अस्पताल', 'रिपोर्ट' को 'रपट', 'एन.सी.सी.' को 'नेंकसी' आदि उच्चारण करते हैं।

7.बलाघात :- प्राय: यह देखा जाता है कि किसी शब्द के बोलने में जिन ध्वनियों का उच्चारण बलपूर्वक किया जाता है वे तो सबल होने के कारण जीवित रह जाती हैं किंतु उनकी पार्श्ववर्त्ति ध्वनियाँ निर्बल होने के कारण कालांतर में बदल जाती हैं। इस तरह बलाघात के कारण बहुत से ध्वनि-विकार हो जाते हैं। जैसे, 'अभ्यंतर' का 'भीतर', 'बिल्व' का 'बेल', 'निम्ब' का 'नीम', 'कोष्ठ' का 'कोढ ' आदि उच्चारण होना बलाघात के कारण ही हैं।

8.भावावेश :- बहुत से ध्वनि-विकारों का कारण भावावेश होता है क्योंकि बहुत से व्यक्ति भावुकता के कारण एक ही शब्द को विविध प्रकार से बोला करते हैं, जिससे विचित्र ध्वनि-विकार हो जाते हैं। जैसे, माता-पिता अपनी संतान का नाम लेते समय इतने भावावेश में आ जाते हैं कि शुद्ध और सही नाम न लेकर उसे तोड़-मरोड़कर बोला करते हैं। इसीलिए यदि किसी का नाम 'रामेश्वर' है तो कभी उसे 'रामुआ', कभी 'रम्मी', कभी 'रमे', कभी 'रमसुरा' आदि कहा करते हैं, जिससे विचित्र ध्वनि-परिवर्तन हो जाता हैं। इसी भावावेश के कारण एक ही 'कृष्ण' के 'कान्हा', 'कन्हैया', 'कन्नू', 'कन्नो' आदि कई उच्चारण मिलते हैं।

9.उच्चारण-त्वरा :- कुछ व्यक्ति बड़ी जल्दी-जल्दी बोला करते है और उनके जल्दी बोलने के कारण बहुत-से शब्दों के रूप परिवर्तित होकर कुछ के कुछ हो जाते हैं। जैसे 'दाल-भात' को 'भाल-दात', 'दाल-चावल', 'दाल में काला' को, 'काल में दाला' आदि अक्षर-विपर्यय संबंधी ध्वनि-परिवर्तनों का कारण यही उच्चारण-त्वरा है।

10.प्रतिध्वनि-प्रवृत्ति:- कुछ व्यक्तियों में प्राय: यह मनोवृत्ति पाई जाती है कि वे जब कुछ बोलते हैं, उनकी बोलचाल में कुछ ऐसे शब्द अनायास आ जाया करते हैं, जो पूर्व उच्चारित शब्द की ध्वनि के अनुकरण पर ही होती है और जिनमें पूर्व उच्चरित शब्द की प्रतिध्वनि पूर्णतया सुन पड़ती हैं। जैसे, 'रोटी-वोटी', 'पानी-वानी', 'नाश्ता-वाश्ता', 'पापड़-शापड़' आदि।

11.लिपि की अपूर्णता :- बहुत से ध्वनि-विकार इसीलिए भी हो जाते हैं कि सभी लिपियों में सभी भाषाओं की ध्वनियों को अंकित करने वाले ध्वनि-चिह्न नहीं होते और यदि किसी लिपि में किसी विदेशी ध्वनि को अंकित करने का प्रयास किया जाता है, तो उसको पढ़नेवाले कुछ का कुछ पढ़ जाते हैं, जिससे उनमें ध्वनि-विकार हो जाना स्वाभाविक है। जैसे रोमन-लिपि अपूर्ण है, यदि उसमें 'Rama' लिखा जाये, तो इसे 'रमा', 'रामा' और 'रम' पढ़ा जा सकता है, जिससे

ध्वनि-परिवर्तन हो जायेगा। ऐसे ही देवनागरी लिपि में ह्रस्व 'ओ' (o) और ह्रस्व 'ए' (e) के लिए ध्वनि-चिह्न नहीं हैं। इसीलिए यहाँ 'College' को कोई 'कालेज', कोई 'कालिज' और कोई 'कौलिज' लिखता है,जिससे सहज ही ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। इसी लिपि की अपूर्णता ने याज्ञिक शब्द को रोमन-लिपि में 'Yagnik' लिखा जाने के कारण 'याग्निक' बना दिया है और इसी कारण 'योग' (Yoga) को लोग 'योगा' कहते हैं| अत: लिपि की अपूर्णता के कारण भी अनेक ध्वनि-विकार हो जाते हैं।

बोध प्रश्न :-

- स्वन परिवर्तन के आतंरिक कारण कौन-कौन से हैं?
- कलकत्ता को कैलकटा किस विकार के कारण कहा जाता हैं?

5.3.6 स्वन परिवर्तन की दिशा

ध्वनि-परिवर्तन को ध्वनि-विकार, ध्वनि-विकास भी कहा जाता हैं। भाषायी परिवर्तन के फलस्वरूप कभी प्रचलित ध्वनियों में से कई ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं तो कभी विकृत हो कर नया रूप धारण कर लेती हैं, तो कभी सर्वथा परिवर्तित हो जाती हैं। ध्वनियों के परिवर्तित होने के विभिन्न रूप होते हैं, जिसे ध्वनि-परवर्तन की दिशाओं में गिना जा सकता है। संस्कृत विद्वानों में ध्वनि-परवर्तन की केवल चार दिशाओं का वर्णन किया था "वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चाSपारो वर्णविकारनाशौ"

अर्थात् -वर्णोगम, वर्ण-विपर्यय, वर्ण-विकार व वर्ण-नाश ध्वनि-परिवर्तन की दिशा हैं।

ध्वनि-परिवर्तन की दिशा

आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने ध्वनि-परिवर्तन की 15 (कुल मिलाकर 17 दिशाएँ) दिशाओं का वर्णन किया है -

1) आगम (Insertion) 2) लोप (Elision) 3) विपर्यय (Metathesis) 4) मात्रा-भेद (Difference) 5)समीकरण (Assimilation) 6) विषमीकरण (Dissimilation) 7) सघोषीकरण(Vocalization) 8) अघोषीकरण (Devocalization) 9) अल्पप्राणीकरण (Deaspiration) 10) महाप्राणीकरण (Aspiration) 11) ऊष्मीकरण (Assibilation)

12) अनुनासिकीकरण (Nasalization) 13) संधीकरण (Sadhization) 14)भ्रामक व्युत्पत्ति (Popular Etymology) 15) विशेष परिवर्तन

(i) अभिश्रुति (Umlaut vowel mutation)

(ii) अपनिहिति, समस्वरागम (Epenthesis)

(iii) अपश्रुति अक्षरावस्थान (Ablaut, Vowal Degradation)

1) आगम (Insertion) :- किसी शब्द में जब कोई ध्वनि आकर अपना स्थान बना लेती है, उसे आगम कहते है। इसके दो भेद निम्नलिखित हैं -(क) स्वरागम (ख) व्यंजनागम

(क) स्वरागम- जहाँ शब्दों में कोई स्वर आ जाता है, उसे स्वरागम कहते हैं। इसके तीन भेद हैं -i) आदि स्वरागम (protheis), ii) मध्य स्वरागम (Anaptyxis) iii) अंत स्वरागम

i) आदि स्वरागम (protheis) -जहाँ शब्द में आरम्भ में किसी स्वर का आगम हो जाए, उसे आदि स्वरागम कहते हैं। यह स्वर ह्रस्व भी होते है। प्रयत्न लाघव या बोलचाल की सुविधा के कारण लोग 'स' (ऊष्म-व्यंजन)से बना संयुक्त- व्यंजन (स्ट,स्क, स्न आदि) से पूर्व' अ', या 'इ' जोड़ देते हैं। जैसे - स्कूल =इस्कूल, स्नान = इस्नान, स्त्री =इस्त्री, यूनानी शब्द प्लातोन (प्लेटो) में ऊष्म व्यंजन नहीं है पर उच्चारण सुविधा की दृष्टि से इसका उच्चारण अफलातून हो जाता हैं। फारसी व फ्रेंच के लगभग सभी शब्द जिसके आरम्भ में ऊष्म- व्यंजन श, ष ध्वनियाँ होती हैं, आदि में स्वरागम हो जाता हैं।

ii) मध्य स्वरागम(Anaptyxis) :- इसे स्वर-भक्ति विपकर्ष (diaeresis) या युक्तिविकर्ष भी कहते हैं। उच्चारण-सुविधा के लिए प्राय: पंजाबी लोग शब्द के मध्य में स्वर जोड़कर संयुक्त व्यंजन को दो भागों में बाँट देते हैं। जहाँ किसी शब्द के मध्य में किसी स्वर का उच्चारण होने लगता है, उसे मध्य-स्वरागम कहते हैं जैसे -स्कूल =सकूल, स्टेशन=सटेशन, स्टूल =सटूल

बोलचाल की भाषा में मध्य-स्वरागम के अनेक शब्द (जो कालांतर में मानक हो गए हैं) मिलते हैं| जैसे:- धर्म=धरम, कर्म=करम, शर्म = शरम, गर्म = गरम, पूर्व = पूरब, कृपा = किरपा, पाजेब = पाइजेब

iii) अंत स्वरागम:- जहाँ किसी शब्द के अंत में किसी स्वर का उच्चारण होने लगता है, वहाँ अंत-स्वरागम होता हैं। अंत-स्वरागम की प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है। जैसे:- दवा = दवाई

पत्र = पतई (भोजपुरी), स्वप्न = सपना, प्रिय = पिया, संदेश = संदेसा, Agon = Agony

(जर्मन) अंग्रेज़ी

iv) कई विद्वानों ने सम-स्वरागम को भी स्वरागम का भेद स्वीकार है जिसे अपनिहिति कहते हैं- जिसका वर्णन विशेष-परिवर्तन के अंतर्गत किया जा रहा है।

(ख) व्यंजनागम :- जहाँ किसी शब्द में व्यंजन का उच्चारण प्रचलित हो जाए उसे व्यंजनागम कहते हैं। इसके निम्नलिखित भेद हैं -

i) आदि व्यंजनागम :- जहाँ किसी शब्द के आरंभ में व्यंजन का उच्चारण हो, उसे आदि व्यंजनागम कहते हैं।

इसके उदाहरण कम मिलते हैं क्योंकि इन व्यंजनों के जुड़ने से उच्चारण की सुविधा नहीं होती है। जैसे- ओष्ठ = होंठ, अस्थि = हड्डी, औरंगाबाद = नौरंगाबाद, उल्लास = हुल्लास, और = होर, अंसली = हंसली

ii) मध्य व्यंजनागम - जहाँ किसी शब्द के मध्य में किसी व्यंजन का उच्चारण होने लगे उसे मध्य व्यंजनागम कहते हैं। जैसे -पण = प्रण, शाप = श्राप, जेल = जेहल, लाश = लहास, वानर = बन्दर, पसंद = परसंद (भोजपुरी)

iii) अंत व्यंजनागम - जहाँ किसी शब्द के अंत में व्यंजन का उच्चारण होने लगे उसे अंत व्यंजनागम कहते हैं। जैसे-भौं = भौंह, कल = कल्ह, चील = चील्ह, रंग= रंगत, परवा = परवाह (भोजपुरी), दरिया = दरियाव, उमरा = उमराव (अमीर का अरबी बहुवचन), तारा = तरुख (कश्मीरी),तिलस्म =Talisman (अंग्रेज़ी)

iv) स्वर-व्यंजनागम या अक्षर व्यंजनागम इसके भी तीन भेद है -आदि अक्षरागम, मध्य अक्षरागम व अंत-अक्षरागम पाए जाते हैं।

(क) आदि अक्षरागम :- गुंजा = घुँघुची (भोजपुरी)

(ख) मध्य अक्षरागम :- खल = खरल, आलस = आलकस (भोजपुरी), ठेढा = ठेवाढा (भोजपुरी), समुद्र = समुन्दर (उर्दू)

(ग) अंत अक्षरागम:- वधू = वधूटी, मुख = मुखड़ा, जीभ= जीभड़ी

2) लोप (Elision) :- जहाँ किसी शब्द से कोई स्वर या व्यंजन लुप्त हो जाए तो उसे लोप कहते हैं। इसके भेद निम्नलिखित हैं -

(क) स्वर लोप -किसी शब्द में पहले विद्यमान स्वर लुप्त हो जाने से स्वर-लोप कहते हैं। इसके तीन भेद हैं।

(i) आदि-स्वर लोप (Aphesis) -जहाँ किसी शब्द के आरम्भ से किसी स्वर का लोप हो जाए, उसे आदि स्वर-लोप कहते हैं। जैसे:-अनाज = नाज, अगर = गर, अभ्यंतर = भीतर

उपायन = बायन,अहाता = हाता, अमीर = मीर, असवार = सवार

(ii) मध्य स्वर-लोप (Syncope) जहाँ किसी शब्द के मध्य से किसी स्वर का लोप हो जाए, उसे मध्य स्वर लोप कहते हैं। हिंदी के बहुत से शब्दों के उच्चारण में तो मध्य स्वर लोप हो जाता है उसे बोला या लिखा नहीं जाता है। जैसे :- बलदेव = बल्देव, लगभग= लग्भग, कृपाया = कृप्या, हरदम = हर्दम, Do not =Don't, Storey = Story

(iii) अंत स्वर लोप- जहाँ किसी शब्द के अंत से किसी स्वर का लोप हो जाए तो उसे अंत-स्वर-लोप कहते हैं।

जैसे -निंदा = नींद, भगिनी =बहिन, दुर्बा =दूब, बाहु = बाँह। हिंदी के अधिकांश अकारांत शब्दों के अंत से अ का लोप हो गया है जो लेखन में प्रचलित नहीं है। जैसे -आम=आम्, राम =राम्, मार = मार्, दाम = दाम्, हम = हम्, नमक = नमक्

कुछ स्वरांत शब्द भी व्यंजनान्त हो गए हैं। जैसे -शिला =सिल्, परीक्षा = परख्

(ख) व्यंजन लोप - जहाँ किसी शब्द में से किसी व्यंजन ध्वनि का लोप हो जाए तो उसे व्यंजन-लोप कहते हैं। इसके तीन भेद इस प्रकार हैं -

(i) आदि व्यंजन लोप - जहाँ किसी शब्द के पूर्व से किसी व्यंजन का लोप हो जाता है, वहाँ आदि व्यंजन लोप होता हैं। संस्कृत से अनेक शब्द व्यंजन लोप के कारण हिंदी में आए हैं। जैसे - स्थाली = थाली, स्थानक =थाना, स्कंध = कंधा, स्फूर्ति = फुर्ती

अंग्रेज़ी के कई शब्द के लेखन में यद्यपि व्यंजन का लोप नहीं हुआ पर उच्चारण में अवश्य हो गया। जैसे:- Knife = Nife,Write = Rite, Phychology = Sycology, Know = No

Pneumonia = Nemonia, Hospital = अस्पताल

(ii) मध्य व्यंजन लोप - जहाँ किसी शब्द में बीच में से किसी व्यंजन का लोप हो जाता है वहाँ मध्य व्यंजन लोप होता है। जैसे -सूची = सुई, सप्त =सात, कोकिल=कोयल, उत्तान = उतान

घरद्वार =घरबार, कूर्चिका = कूँची, गर्भिणी = गर्भिन, प्रिय = पिया, कर्म = काम, कार्तिक =कातिक

हिंदी की क्षेत्रीय व ग्रामीण बोलियों में इसके कई उदाहरण मिलते हैं।

जैसे -बुद्ध = बुध, भूमिहार = भुइहार, ज्वर = जर, डाकिन = डाइन, कायस्थ = कायथ।

अंग्रेज़ी के उच्चारण में कुछ मध्य व्यंजनों का लोप उच्चारण-स्तर पर हो गया है, वर्तनी में अभी वे लिखे जाते हैं-जैसे- Walk =वाक्, Right = राइट, Daughter = डॉटर, Often = ऑफ़न

(iii) अंत व्यजन लोप - जहाँ किसी शब्द में से अंतिम व्यंजन का लोप हो जाए, उसे अंत व्यंजन लोप कहते है| इसके उदाहरण कम मिलते हैं। जैसे -Water, Father आदि शब्दों में r का उच्चारण नहीं हैं। वे -वाटअ, फादअ इस प्रकार बोले जाते हैं। Bomb का उच्चरण बम्ब होता है, बम नहीं।

(ग) स्वर-व्यंजन लोप (अक्षर लोप)- जहाँ किसी शब्द में से स्वर व्यंजन लोप हो जाए, उसे अक्षर-लोप कहते हैइसके चार भेद है।

(i) आदि स्वर-व्यंजन लोप (Apheresis) - जहाँ किसी शब्द के आरम्भ से अक्षर का लोप हो जाए, उसे आदि स्वर-लोप कहते हैं। इसके उदाहरण कंही मिलते हैं -जैसे- नेकटाई = टाई, आदित्यवार = इतवार, Telephone = Phone

(ii) मध्य स्वर- व्यंजन लोप - जहाँ किसी शब्द में से स्वर व व्यंजन लुप्त हो जाए, उसे मध्य - स्वर-व्यंजन लोप कहते है। जैसे- भांडागार = भंडार, दस्तखत = दस्खत, फलाहार = फलार, पर्यकग्रंथी = पलत्थी

(iii) अंत स्वर व्यंजन लोप (Apocope) - जहाँ किसी शब्द के अंत में से स्वर व व्यंजन लुप्त हो जाए, उसे अंत स्वर व्यंजन लोप कहते हैं। जैसे:-नीलमणि = नीलम, कर्तरिका = कटारी, दीपवर्तिका = दीवट, आम्र = आम, व्यंग्य = व्यंग, भ्रातृजाया = भावज, निम्बुक = नींबू, उष्ट्र = ऊँट, मौक्तिक = मोती, सपादिक = सवा, जीव = जी

(iv) समध्वनि लोप :- (Haplogy) :- जहाँ किसी शब्द में कोई ध्वनि या ध्वनि समूह दो बार आकर एक का लोप हो जाता हैं क्योंकि दो ध्वनियों का उच्चारण सुविधाजनक नहीं हैं। सम-व्यंजन लोप के उदाहरण हैं -नाक-कटा = नकटा, मानस-सरोवर = मानसरोवर, स्वर्ग- गंगा = स्वर्गंगा, नाम- मात्र = नामात्र, कृष्ण-नगर = कृष्नगर, संवाद- दाता = संवाददाता, खरीद-दार = खरीदार, नाटक -कार = नाटकार, नन्द-दुलार = नंदुलार

स्वर-लोप के उदाहरण -सारा-आकाश =साराकाश

3) विपर्यय (Metathesis) :- जहाँ किसी शब्द के उच्चारण - क्रम में कोई स्वर या व्यंजन या अक्षर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बोले जाते हैं, वहाँ विपर्यय होता है। इसके चार भेद हैं-

(i) स्वर विपर्यय (ii) व्यंजन विपर्यय (iii) एकांगी विपर्यय (iv) आद्य शब्द विपर्यय

(i) स्वर विपर्यय :- जहाँ शब्द के उच्चारण करते समय कोई स्वर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बोला जाए, वहाँ स्वर विपर्यय होता है। इसके दो भेद हैं।

(क) पार्श्ववर्ती स्वर विपर्यय - यदि पास-पास के दो स्वर ध्वनियाँ एक दूसरे के स्थान ले लेती है, उसे पार्श्ववर्ती स्वर-विपर्यय कहते हैं। जैसे - कुछ= कछु, अंगुली = उँगली, पागल= पगला

(ख) दूरवर्ती स्वर विपर्यय - यदि दूर की स्वर ध्वनियाँ एक दूसरे का स्थान ले लेती है, उसे दूरवर्ती स्वर विपर्यय कहते हैं। जैसे -अनुमान-उनमान (प्राचीन साहित्य)

(ii) व्यंजन विपर्यय :- जहाँ शब्द का उच्चारण करते समय कोई व्यंजन एक स्थान से दूसरे स्थान पर बोला जाएँ, वहाँ व्यंजन विपर्यय होता है। इसके दो भेद हैं -(क) पार्श्ववर्ती व्यंजन विपर्यय, (ख) दूरवर्ती व्यंजन विपर्यय।

(क) पार्श्ववर्ती व्यंजन विपर्यय :- यदि पास-पास की दो व्यंजन ध्वनियाँ एक दूसरे का स्थान लेती हैं, उसे पार्श्ववर्ती व्यंजन विपर्यय कहते हैं। जैसे - चिह्न = चिन्ह, ब्राह्मण =ब्राम्हण, ब्रह्म = ब्रम्ह।

(ख) दूरवर्ती व्यंजन विपर्यय :- यदि दूर की दो व्यंजन ध्वनियाँ एक दूसरे का स्थान लेती हैं, उसे दूरवर्ती व्यंजन विपर्यय कहते हैं। जैसे -अमरुद = अरमुद (भोजपुरी), मुकलचा =मुचलका बफर = बरफ (फ़ारसी), मतलब =मतबल, लखनऊ = नखलऊ

(iii) एकांगी विपर्यय :- भाषा वैज्ञानिक वेंद्रिये ने माना है कि कभी-कभी शब्दों में कोई एक स्वर या व्यंजन अपना स्थान परिवर्तन तो कर लेता है पर उसके छोड़े हुए स्थान पर कोई दूसरा स्वर-व्यंजन नहीं आता। जैसे-पुर्तगाली भाषा का शब्द -Festra =Fresta (खिचड़ी)

ब्रिटेन की बोली -Debri = Drebi (खाना), हिंदी- बिन्दु = बूँद (इ का लोप तथा उ का ऊ के स्थान परिवर्तन)

(iv) आद्य शब्द विपर्यय :- इस प्रकार के परिवर्तन में कभी-कभी शब्दों के आरम्भ के अंशों में विपर्यय हो जाता है। आक्सफोर्ड के डॉ. डब्ल्यू ए.स्पूनर (1844 -1930) के नाम पर इसे स्पुनरिज्म कहते हैं क्योंकि वे इस प्रकार की गलतियाँ कर बैठते थे। एक बार क्रोधित होकर उन्होंने विद्यार्थी से कहा - You have a whole worm, वे कहना चाहते थे -You have wasted a whole term. ऐसे ही- Two bags and a rug के स्थान पर Two rags and a bug का प्रयोग। हिंदी में दाल-चावल के स्थान पर चाल- दावल, चूल्हा - चौका से चौल्हा - चूका, नून-तेल से नेन -तूल आदि। एक चुटकुले का उदाहरण है -

प्रश्न -आपकी बड़ी (घड़ी) में क्या घजा (बजा)

उत्तर -चौ (नौ) बजकर नालीस (चालीस) मिनट।

उदहारण त्वरा के कारण बोलते समय इस प्रकार का विपर्यय हो जाता होगा पर भाषा पर इसका स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता।

4) मात्रा-भेद (Difference) :- जहाँ किसी शब्द में कोई मात्रा ह्रस्व से दीर्घ व दीर्घ से ह्रस्व हो जाती है तो उस स्थिति को मात्रा-भेद कहते हैं। इसके दो भेद हैं-ह्रस्व से दीर्घ, दीर्घ से ह्रस्व|

उदाहरणार्थ -

ह्रस्व से दीर्घ **दीर्घ से ह्रस्व**

लज्जा > लाज धूम्र > धुआं

पुत > पूत आश्चर्य > अचरज

जिह्वा > जीभ आफिसर > अफसर

हरि > हरी आकाश > आकास

पति > पती बारात > बरात

गुरु > गुरू

तरु > तरू

5) समीकरण (Assimilation) :- इसे सावर्ण्य, सारूप्य तथा अनुरूपता भी कहा जाता है। इसका वर्णन करते मुझे एक गीत का स्मरण हो आता है -

ऐसे तो नहीं उनके रंग में ढली मैं,
पिया अंग लग- लग के हुई सांवरी मैं।

जब शब्द में कोई ध्वनि अपनी निकटवर्ती ध्वनि को अपने समान बना लेती है, वहाँ समीकरण होता है। इसके दो भेद हैं - (क) पुरोगामी समीकरण (ख) पश्चगामी समीकरण

(क) पुरोगामी समीकरण :- जहाँ शब्द में पहली ध्वनि अपने बाद वाली ध्वनि को अपने समान बना लेती है, उसे पुरोगामी समीकरण कहते हैं| इसके दो भेद है -(i) स्वर पुरोगामी समीकरण (ii)व्यंजन पुरोगामी समीकरण।

(i) स्वर पुरोगामी समीकरण :- जहाँ शब्द में पूर्ववर्ती स्वर अपने परवर्ती स्वर को अपने समान बना लेती है, वहाँ स्वर पुरोगामी समीकरण होता है। जैसे जुल्म= जुलुम, सूरज = सुरुज, हुक्म =हुकुम, मुक्ति =मुकुति, पूरब =पूरुब (भोजपुरी) खुरपी = खुरुपी (भोजपुरी)

(ii) व्यंजन पुरोगामी समीकरण :- जहाँ शब्द में पूर्ववर्ती व्यंजन अपने परवर्ती व्यंजन को अपने समान बना लेती है, वहाँ व्यंजन -`पुरोगामी समीकरण होता है। जैसे - नील=लील, पत्र = पत्ता, चक्र =चक्का, भद्र = भद्दा

(ख) पश्चगामी समीकरण :- जहाँ शब्द में परवर्ती ध्वनि अपनी पूर्ववर्ती ध्वनि को अपने समान बना लेती है, वहाँ पश्चगामी-समीकरण होता है। इसके दो भेद हैं-(i) स्वर पश्चगामी समीकरण (ii) व्यंजन पश्चगामी समीकरण।

(i) स्वर पश्चगामी समीकरण :- जहाँ शब्द में परवर्ती स्वर अपने पूर्ववर्ती व्यंजन को अपने समान बना लेता है, उसे स्वर पश्चगामी समीकरण कहते हैं। जैसे - अंगुली = ऊंगली, इक्षु =उक्खु, श्वसुर =सुसुर

(ii) व्यंजन पश्चगामी समीकरण :- जहाँ शब्द के परवर्ती व्यंजन अपने पूर्ववर्ती व्यंजन को अपने समान बना लेती है, उसे व्यंजन पश्चगामी समीकरण कहते हैं। जैसे - कर्म =कम्म, शर्करा = शक्कर, कलक्टर =कलट्टर।

6) विषमीकरण (Dissimilation) :- जहाँ पर किसी एक सी ध्वनि में, एक ध्वनि अपनी निकटवर्ती समान ध्वनि को छोड़कर दूसरा रूप धारण कर लेती हैं, वहाँ विषमीकरण होता हैं। इसके दो भेद हैं।

(i) पूर्वगामी विषमीकरण, (ii) पश्चगामी विषमीकरण

(i) पूर्वगामी विषमीकरण:- जहाँ शब्द में दो समान ध्वनियों में से पूर्ववर्ती ध्वनि जैसी की तैसी बनी रहती है, किन्तु परवर्ती ध्वनि अपना रूप बदल लेती है, वहाँ पूर्वगामी विषमीकरण होता है, जिसके दो भेद हैं -

(क) स्वर पूर्वगामी विषमीकरण :- जहाँ शब्द के दो स्वर में प्रथम स्वर ज्यों का त्यों बना रहता है और दूसरा परिवर्तित हो जाता है उसे स्वर पूर्वगामी विषमीकरण कहते हैं।

जैसे -पुरुष =पुरिस (उ+उ=उ+इ), तित्तिर = तीतर (इ+इ =ई+अ), भित्ति = भीत (इ+इ= ई+अ)

(ख) व्यंजन पूर्वगामी विषमीकरण :- जहाँ शब्द के दो निकटवर्ती व्यंजन में प्रथम व्यंजन ज्यों का त्यों बना रहता है और दूसरा व्यंजन परिवर्तित हो जाता है, उसे व्यंजन पूर्वगामी विषमीकरण कहते हैं।

जैसे -काक =काग, कंकण =कंगन, पिपासा =प्यासा।

(ii) पश्चगामी विषमीकरण :- जहाँ शब्द के दो समान व्यंजन में से परवर्ती ध्वनि जैसी की तैसी बनी रहती है किन्तु पूर्ववर्ती ध्वनि अपना रूप बदल लेती है, वहाँ पश्चगामी विषमीकरण होता हैं इसके दो भेद हैं --

(क) स्वर पश्चगामी विषमीकरण -जहाँ शब्द के दो समान स्वर में परिवर्तित स्वर ज्यों का त्यों बना रहता है, पर पूर्ववर्ती स्वर बदल जाताहै, उसे स्वर पश्चगामी विषमीकरण कहते हैं|

जैसे -मुकुट = मउर (उ+उ =अ+उ), नुपुर = णेउर (उ+उ =ए+उ)

(ख) व्यंजन पश्चगामी विषमीकरण :-जहाँ शब्द के दो समान व्यंजन में परवर्ती व्यंजन ज्यों का त्यों बना रहता है पर पूर्ववर्ती व्यंजन बदल जाता है, उसे व्यंजन पश्चगामी विषमीकरण कहते हैं। जैसे -लांगल =नांगल, दरिद्र = दलिद्दर, नवनीत = लवणी।

7) सघोषीकरण / घोषिकरण (Vocalization) :- जैसा की कहा जा चूका है, सघोष या घोष वे ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में स्वर-तत्रियों के निकट आ जाने से उसके बीच हवा से उनमें कंपन होता है। हिंदी के प्रत्येक व्यंजन वर्ग के प्रथम दो ध्वनियाँ क, ख, च, छ, ट, ठ अघोष ध्वनियाँ हैं। (अर्थात् जिनके उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपन नहीं होता हैं।) प्रत्येक व्यंजन वर्ग के अंतिम तीन व्यंजन ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड,ढ,ण आदि सघोष होते हैं।

जहाँ उच्चारण सुविधा के कारण कोई अघोष ध्वनि (1 & 2) कालांतर में सघोष (3,4 &5) ध्वनि के रूप में बदल जाएँ, उसे सघोषीकरण कहते हैं।

जैसे -शकुन =सगुन, साक =साग, प्रकट = प्रगट, शती = सदी, कंकण =कंगन, कुंचीका = कुंजी, घोटक =घोड़ा, मकर = मगर, एकादशी = ग्यारह, काक =कागा,

8) अघोषीकरण (Devocalization) :- जहाँ कोई सघोष ध्वनि (3,4,5)कालांतर में अघोष ध्वनि (1,2) में बदल जाए, उसे अघोषीकरण कहते हैं।

जैसे -पैशाची भाषा में -नगर =नकर, गगन = गकन, वारिद = वारित, मेघ =मेख, अदद =अदत्, मदद = मदत्, ठंडा = डंडा, खूबसूरत = खुपसूरत।

रुसी भाषा में शब्दांत का घोष-व्यंजन अघोष रूप में उच्चारित होता है।

जैसे -ख्लेब =ख्लेप (रोटी), साद =सात (बाग) द्रुग =द्रुक (मित्र)

9) अल्पप्राणीकरण (Deaspiration) :- जहाँ महाप्राण ध्वनियाँ कालांतर में अल्पप्राण ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं, उसे अल्पप्राणीकरण कहते हैं। जैसे -

भुगामी =बोधामी (भ का ब), सिन्धु = हिन्दू (ध का द), बलिष्ठ =बालिष्ट (ठ का ट), हाथ = हात (थ का त), पलत्थी = पाल्थी (थ का त), भगिनी = बहिन (भ का ब), भीख =भीक (ख का क), शुष्क =सुखा (क का ख), गृह = घर (ग का घ), भेष =वेष (भ का व), परशु = फरसा (प का फ)

10) महाप्राणीकरण (Aspiration) :- जहाँ अल्पप्राण कालांतर में महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं, उसे महाप्राणीकरण कहते हैं| जैसे:-वाष्प = भाप (व का भ), हस्त = हाथ (त का थ), वृश्चिक =बिच्छु (क का छ), धृष्ट =ढीठ (ट का ठ), कुछ भोजपुरी शब्द -सर्व =सभ (व

का भ), पेड़ =फेड़ (प का फ), ताक =ताखा (क का ख), पत्थर = पत्तर (प का फ) (दिल्ली की करखंदारी भाषा)

11) ऊष्मीकरण (Assibilation) :- जहाँ कालांतर में स्पर्श-ध्वनि ऊष्म ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है वहाँ ऊष्मीकरण होता है| केन्तुम वर्ग की भाषाओं में क ध्वनि शतम् वर्ग की भाषाओं में ऊष्मीकृत स् श् ष् हो जाती हैं। जैसे केंटुम - शतम्(क का श)

12) अनुनासिकीकरण (Nasalization) :- जहाँ अननुनासिक ध्वनियां कालांतर में अनुनासिक ध्वनि में परिवर्तित हो जाती हैं, उसे अनुनासिकीकरण कहते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी इसका प्रयत्न लाघव मानते हैं। वे मानते हैं कि नासिका-विवर की हवा न जाने देने के लिए कौवे को ऊपर उठाकर नासिका मार्ग बंद करने के लिए प्रयास करना पड़ता है। अनुनासिक ध्वनि ही हमारे लिए स्वाभाविक तथा आसान है, इसलिए कहीं-कहीं उसका अनजाने में विकास हो जाता है।

जैसे -सर्प = साप, ऊ ष्ट्र = ऊँट, सत्य = साँच, युक = जूं, कूप = कुआँ, अश्रु = आँसू, श्वास = साँस भ्रू =भौं, वक्र= बाँका, वेत्र = बेंत

कई विद्वान इसे द्रविड़ प्रभाव, तो कई इसे अकारण मानते हैं। ब्लाक और टर्नर के अनुसार स्वर की मात्रा में बदलाव के कारण अनुनासिकीकरण होता है। इनके अनुसार मध्य भारतीय आर्य भाषा के बाद आधुनिक काल में आकर स्वर में दीर्घता आने के फलस्वरूप अनुनासिकीकरण हो गया (सर्प>सप्प>सांप) डॉ. चटर्जी इसे मध्य भारतीय आर्य भाषाओं की ही विशेषता मानते हैं,तो ग्रियर्सन इसे आधुनिक काल की प्रवृत्ति स्वीकार करते हैं।

13) संधीकरण (Sadhization) :- जब शब्द के मध्यवर्ती व्यंजन पहले स्वर में परिवर्तित हो जाएँ और फिर अपने निकटवर्ती स्वर के साथ संधि कर लें, वहाँ संधिकरण होता है।

जैसे - नयन = नइन = नैन   स्थविर = थइर = थेर   चमार = चंउर =चोर

अ + इ = ऐ   अ + इ = ए   अ + उ = ओ

14) भ्रामक व्युत्पत्ति (Popular Etymology) :- कभी अज्ञान व अशिक्षाके कारण जब हम अपरिचित या विदेशी शब्दों के संस्पर्ष में आते हैं तब इन शब्दों का उच्चारण मनमाने ढंग से या उससे मिलते-जुलते देशी शब्दों के आधार पर उच्चारण करने लगते हैं। जैसे अंग्रेज़ी-लाईब्रेरी का हिंदी -रायबरेली, लार्ड का लाट, अडवांस का अठवांस, मैकेंजी का मक्खनजी, आर्टीचोक का हाथिचोक, सैंडर्स-रोड का संडास-रोड। अरबी में इंतकाल का अंतकाल।

15) विशेष परिवर्तन :- कुछ विशेष प्रकार के ध्वनि-विकार निम्नलिखित हैं जिनके केवल आज ऐतिहासिक महत्व रह जाया है। इनके बारे में विद्वान में मतभेद है। वें हैं (i) अभिश्रुति

(Umlaut, vowel mutation),(ii) अपनिहिति, समस्वरागम (Epenthesis) (iii) अपश्रुति, अक्षरावस्थान (Ablaut, VowalDegradation)

(i) अभिश्रुति (Umlaut vowel mutation) :-

Umlaut नाम प्रो.ग्रिम का दिया हुआ है। Um का अर्थ है समीप, व laut का अर्थ है ध्वनि। इस प्रकार Umlaut का अर्थ हुआ समीपस्थ आगामी ध्वनि के कारण पूर्वध्वनि में परिवर्तन। इस प्रकार का परिवर्तन जर्मन भाषा में पाया जाता है। जैसे -

Mani > Maini > Men

मनि मइनि मैन ए (e)में परिवर्तन।

इ (i) मध्य में इ (i) का आगम

य हाँ किसी शब्द में पहले तो किसी समान स्वर का आगम होता है। कालांतर में वह स्वर परिवर्तित हो जाता है| बंगला- भाषा में कोरीआ, कोरिए, करो, कोरे (करना) इसी प्रकार का परिवर्तन है। मध्य बंगाली में हारिय का परिवर्तन आधुनिक बंगला में हेरे (खोकर) आदि इसी के उदाहरण हैं।

(ii) अपनिहिति, समस्वरागम (Epenthesis) :- जहाँ किसी शब्द के आरम्भ, मध्य या अंत में किसी ऐसे स्वर का आगम हो जो उस शब्द में पहले से से ही विद्यमान है, इसे अपनिहिती या समस्वरागम कहते हैं। अपनिहिति शब्द अनेक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। ग्रे व पेई ने इसे आगम कहा है तो बाबू श्याम सुन्दर दास इसे अक्षरपरीनिहिति कहते हैं। डॉ. चटर्जी व तारापोरवाला इसे स्वरागम कहते हैं। अवेस्ता भाषा में इसके उदाहरण पाए जाते हैं। जैसे

संस्कृत	अवेस्ता
भवति (इ अंत में)	बवइति (अंत में इ यथावत् पर मध्य में भी इ का आगम)
अरुष	अउरुसो
(उ स्वर मध्यम में)	(रु में उ यथावत् पर मध्य में उ स्वर का आगम)
तरुण	तउरुन
(उ स्वर मध्यम में)	(रु में उ यथावत् पर मध्य में उ स्वर का आगम)

ऐसे ही भोजपुरी में :-स्त्री = इस्त्री, स्नान = अस्नान, स्टेशन = इस्टेशन, आदि में समस्वर आरम्भ में ही आ गया हैं।

(iii) अपश्रुति अक्षरावस्थान (Ablaut, Vowal Degradation)

Umlaut के समान Ablaut नाम भी प्रो. ग्रिम (Grimm) का दिया हुआ है, जिसका अर्थ है -स्वर-परिवर्तन| इसके उदाहारण जर्मन भाषा, भारोपीय, हैमेटिक व सैमेटिक भाषा परिवारों

में मिल जाता है। कभी-कभी शब्द के व्यंजन ज्यों के त्यों रहते हैं, किन्तु स्वरों में आंतरिक परिवर्तन के कारण अर्थ बदल जाता है। जैसे करना- कराना। अपश्रुति के दो प्रकार हैं -(क) गुणीय अपश्रुति (Quantitative change) (ख) मात्रिक अपश्रुति (Quantitatie change), dr.Taraporewala ने अपनी पुस्तक Elements of Science of language (p .174) में गुणीय अपश्रुति को Ablaut व मात्रिक अपश्रुति को Vowel gradation नाम दिया है।

(क) गुणीय अपश्रुति (Ablaut Quantitative change):-इसे Metaphony भी कहते हैं। इसमें गुण की दृष्टि से स्वर में परिवर्तन के कारण अर्थ में परिवर्तन हो जाता हैं।

अरबी में किताब (पुस्तक), कुतुब (पुस्तकें), कतबा (लेख), कातिब (लिखनेवाला) कत्ल (वध), कातिल वध करनेवाला), foot (पैर), feet (पैरों),Choose = Choosen, Man = Men, Mouse = Mice आदि इसके उदाहरण हैं।

(ख) मात्रिक अपश्रुति (Vowel gradation) :- इसमें स्वर के मात्रा में परिवर्तन हो जाता है| जैसे भरद्वाज का भारद्वाज, वसुदेव -वासुदेव। संस्कृत व्याकरण में इसे ही गुणवृद्धि कहा गया है। ऐसा माना जाता है कि संगीतात्मक या बलात्मक स्वरघात के कारण अपश्रुती घटित होती हैं।

बोध प्रश्न –

- 'लज्जा' से 'लाज' का रूपांतरण किस कारण हुआ?
- जुल्म से जुलुम का रूपांतरण किस कारण हुआ?

5.4 : पाठ सार

प्रस्तुत इकाई में स्वान या ध्वनि विज्ञान से संबद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण और सारगर्भित सामग्री है। इस इकाई में स्वन विज्ञान का स्वरूप और उसकी शाखाओं जैसे उच्चारण, संवहन और श्रवण को विस्तार से समझाया गया है। इसके अतिरिक्त वाग्यन्त्र और उसके कार्य, स्वन की परिभाषा, स्वनों का वर्गीकरण, व्यंजनों का वर्गीकरण, स्वन परिवर्तनों के कारणों, ध्वनि परिवर्तन के कारण व दिशा आदि का सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण सामग्री इस इकाई में मौजूद हैं। भाषा की सबसे लघुतम इकाई को ध्वनि कहते हैं। मानव के मुख - विवर या वागेंद्रिय द्वारा जो वाणी प्रकट होती है, उसे ध्वनि कहते हैं। ध्वनि के दो भेद हैं - स्वर और व्यंजन। स्वर :- स्वर वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख विवर से निकल जाती है। व्यंजन :- व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलती या तो पूर्ण अवरुद्ध होकर इसे बाहर निकलना पड़ता है या तो संकीर्ण हवा कंठ मार्ग से घर्षण खाते हुए किसी भाग को कंपित करते हुए निकलती है। ध्वनि-परिवर्तन के दो कारण हैं- बाह्य कारण और आंतरिक कारण। बाह्य कारण -ध्वनि परिवर्तन के बाह्य कारण मुख्यतया तीन होते हैं -व्यक्तिगत, भौगोलिक और

ऐतिहासिक। आंतरिक कारण-आंतरिक कारण में ग्यारह कारण प्रमुख हैं-1.मुख-सुख 2. श्रुति 3. उपमान 4. कलागत-स्वातंत्र्य 5. प्रमाद या अशक्ति 6. अज्ञान या अशिक्षित 7. बलाघात 8. भावावेश 9. उच्चारण-त्वरा 10. प्रतिध्वनि-प्रवृत्ति और 11. लिपि की अपूर्णता आदि हैं।

ध्वनि-परिवर्तन को ध्वनि-विकार, ध्वनि-विकास भी कहा जाता हैं। आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने ध्वनि-परिवर्तन की 15 (कुल मिलाकर 17 दिशाएँ) दिशाओं का वर्णन किया है - 1) आगम (Insertion) 2) लोप (Elision) 3) विपर्यय (Metathesis) 4) मात्रा-भेद (Difference) 5) समीकरण (Assimilation) 6) विषमीकरण (Dissimilation) 7) सघोषीकरण (Vocalization) 8) अघोषीकरण (Devocalization) 9) अल्पप्राणीकरण (Deaspiration) 10) महाप्राणीकरण (Aspiration) 11) ऊष्मीकरण (Assibilation) 12) अनुनासिकीकरण (Nasalization) 13) संधीकरण (Sadhization)14) भ्रामक व्युत्पत्ति (Popular Etymology) 15) विशेष परिवर्तन (i) अभिश्रुति (Umlaut vowel mutation) (ii) अपनिहिति, समस्वरागम (Epenthesis (iii) अपश्रुति अक्षरावस्थान (Ablaut, Vowal Degradation)।

5.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित विषय स्पष्ट हुए हैं –

1. ध्वनि (स्वन) विज्ञान का अर्थ और क्षेत्र।
2. ध्वनि विज्ञान का स्वरुप ।
3. मनुष्य का वाग्यंत्र और उसके कार्य ।
4. स्वन की अवधारणा और भेद ।
5. स्वन परिवर्तन के कारण और दशाएँ।

5.6 : शब्द संपदा

1. समीकरण - Assimilation

2. विषमीकरण - Dissimilation

3. महाप्राणीकरण - Aspiration

4. ऊष्मीकरण - Assibilation

5. अपश्रुति अक्षरावस्थान - Ablaut, Vowal Degradation

5.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खण्ड (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्निलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए ।

1. ध्वनि परिवर्तन के बाह्य व आतंरिक कारणों पर प्रकाश डालिए।

2. स्वर व व्यंजन के वर्गीकरण के प्रमुख आधार कौन-कौन से हैं? विस्तार से समझाइए|

3.वागेंद्रिय के चित्र बनाते हुए, स्वनों के उच्चारण में इनका क्या योगदान होता है? समझाइए।

खण्ड (ब)

लघु प्रश्न

निम्निलिखित प्रश्नों के उत्तर 250 शब्दों में लिखिए ।

1. वाग्यंत्र के प्रमुख कार्य कौन-कौन से है?

2. जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से स्वरों के कितने भेद हैं?

3. स्थान के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण कीजिए।

4. ओठों की आकृति की दृष्टि से स्वरों का वर्गीकरण कीजिए।

खण्ड (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1.किसी भी भाषा की ध्वन्यात्मक विशेषताओं से परिचित कराने का कार्य -करता है।

(अ) लिपि विज्ञान (आ) ध्वनि-विज्ञान (इ) अर्थ विज्ञान (ई) वाक्य विज्ञान ( )

2. किन व्यंजनों के उच्चारण में स्वर-तंत्रियों के अंतर्गत कंपन होता है।

(अ) नाद (आ) अल्पप्राण (इ) घोष (ई) अनुनासिक ( )

3. किसकी अपूर्णता के कारण भी ध्वनि-विकार हो जाते हैं।

(अ) भाषा (आ) अज्ञान (इ) लिपि (ई) भावावेश ( )

4. मात्रिक अपश्रुति को संस्कृत व्याकरण में क्या कहा जाता है?

(अ) गुणवृद्धि (आ) गुणीय अपश्रुति (इ) स्वराघात (ई) अपश्रुति ( )

5. बातचीत करने में तथा सार्थक ध्वनियों की रचना में -- मदद करते है।

(अ) किडनी (आ) फेफड़े (इ) आँख (ई) कान ( )

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. ___________ को अलिजिह्वा या कौआ भी कहा जाता है। (काकल)

2. संवृत्त शब्द का अर्थ ___________ या ___________ है। (बंद या संकरा)

3. जहाँ शब्दों में कोई स्वर आ जाता है, उसे _______________ कहते है। (स्वरागम)

4. ह्रस्व से दीर्घ व दीर्घ से ह्रस्व हो जाने वाली स्थिति को ________ कहते है। (मात्रा-भेद)

5. ध्वनियों के उच्चारण का सबसे महत्वपूर्ण अवयव ____________ है। (जिह्वा)

III. सुमेल कीजिए।

(अ)	**(ब)**
(i) व्यंजनागम	(अ) इस्टेशन
(ii) मध्य स्वर लोप	(आ) अमरूद -अरमुद
(iii) विपर्यय	(इ) पण -प्रण
(iv) स्वरागम	(ई) अनाज - नाज
(v) स्वर लोप	(उ) बलदेव -बल्देव

5.8 : पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान - डॉ॰ भोलानाथ तिवारी
2. भाषा विज्ञान - डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. भाषा विज्ञान व हिंदी भाषा का इतिहास - डॉ॰ शीला मिश्र
4. शर्मा, रामकिशोर (2007). भाषाविज्ञान, हिंदी भाषा और लिपि
5. तिवारी, भोलानाथ. भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा
6. शर्मा, राजमणि (1996). आधुनिक भाषाविज्ञान
7. शर्मा, राजमणि (2010). हिंदी भाषा, इतिहास और स्वरूप
8. शर्मा, देवेंद्रनाथ (1966). भाषाविज्ञान की भूमिका

इकाई 6 : रूप विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

6.1. प्रस्तावना

6.2. उद्देश्य

6.3. मूल पाठ: रूप विज्ञान

6.3.1. रूप प्रक्रिया का स्वरूप

6.3.2. शब्द और पद

6.3.3. अर्थ तत्व व संबंध तत्व का पारस्परिक सम्बन्ध

6.3.4. संबंध तत्व के प्रकार

6.3.5. रूप परिवर्तन के कारण

6.3.6. रूप ग्राम विज्ञान

6.4 पाठ सार

6.5 पाठ की उपलब्धियाँ

6.6 शब्द संपदा

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

6.8 पठनीय पुस्तकें

6.1: प्रस्तावना

भाषा की महत्वपूर्ण इकाइयाँ हैं शब्द और पद। अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से शब्द भाषा की सबसे छोटी इकाई हैं। उच्चारण की दृष्टि से यदि भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है, तो सार्थकता की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई शब्द है। सार्थक ध्वनि समूहों की समष्टि जिससे किसी एक अर्थ का बोध हो शब्द है। रूप विज्ञान या पद विज्ञान के लिए अंग्रेज़ी में 'Morphology' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यहाँ 'मार्फलॉजी' शब्द में 'मार्फ' पद का सूचक है, और 'लॉजी' शास्त्र अथवा विज्ञान का वाचक है। वाणी से भाव, विचार या अर्थ का बोध होता है और इनको समझाने के लिए जो समर्थ रूप से लिखा हो वही शब्द हैं। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पद या रूप कहलाता हैं। रूप विज्ञान के अंतर्गत रूप प्रक्रिया का स्वरूप, शब्द और पद में भेद, अर्थ तत्व व संबंध तत्व का पारस्परिक सम्बन्ध, रूप ग्राम विज्ञान और इसके भेद तथा संरुपों की चर्चा की जाएगी।

6.2: उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप:

1. रूप विज्ञान से परिचित होंगे।
2. शब्द और पद, शब्द और अर्थ के स्वरूप एवं इनकें भेदों से परिचित होंगे।
3. रूपग्राम की परिभाषा व अर्थ की अवधारणा से परिचित होंगे।
4. अर्थ तत्व व संबंध तत्व का पारस्परिक सम्बन्ध एवं इनके तत्वों से परिचित होंगे।
5. रूप परिवर्तन के कारणों से अवगत होंगे।

6.3: मूल पाठ : रूप विज्ञान

6.3.1 रूप प्रक्रिया का स्वरूप

रूप विज्ञान के लिए अंग्रेज़ी में 'Morphology' शब्द का प्रयोग किया जाता है। Morph का अर्थ है पद व logy का अर्थ है -विज्ञान या शास्त्र। शब्द और पद भाषा की महत्वपूर्ण इकाइयाँ हैं जिन्हें आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक महत्त्व दिया जाता रहा है।

उच्चारण की दृष्टि से यदि भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है तो सार्थकता की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई शब्द है। हमारे मुख से जो ध्वनियाँ निकलती हैं वे प्रायः सार्थक नहीं होती। जैसे अ्, क्, च्, ट्, त्, प् आदि ध्वनियाँ सार्थक नहीं हैं पर इन्हें सही जोड़ने पर वे सार्थक हो जाएगी। जैसे अब्, चल्, टल्, पक् आदि। सार्थक हो जाने से ही शब्द में प्रयोग-योग्यता नहीं आ जाती। शब्द तो लाखों हैं पर उन्हें वाक्य रूप में प्रयुक्त करने के लिए उनमें परिवर्तन आवश्यक है। जैसे मैं का प्रयोग संदर्भानुसार -मुझे, मुझको, मैंने, मुझमें आदि अनेक रूपों में कर सकते हैं। अर्थात् सार्थक ध्वनियों के समुच्चय को जब विभक्तियों, प्रत्ययों, परसर्गों से संयुक्त करके व्यवस्थित ढंग से वाक्य में प्रयुक्त किया जाए तब ये ध्वनियाँ वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य रूप ग्रहण कर लेंगी। अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पद या रूप कहलाता है।

रूप ध्वनियों की सार्थक-समष्टि है जो व्याकरण के अनुरूप परिवर्तित होकर कथन में व्यवहृत होता है। इसका प्रयोग किसी एक अर्थ की अभिव्यक्ति या किसी एक विचार या भाव व्यंजना के लिए होता है।

बोध प्रश्न -

- रूप विज्ञान के लिए अंग्रेज़ी में कौन-सा शब्द प्रयुक्त है? उसका अर्थ क्या है?
- कब ध्वनियाँ वाक्य में प्रयुक्त होने के लिए रूप ग्रहण करती हैं?

6.3.2 शब्द और पद

सार्थक ध्वनि समूहों की समष्टि जिससे किसी एक अर्थ का बोध हो शब्द है। जैसे- राम, श्याम, मार आदि शब्द हैं। पर जब ये शब्द विभिन्न विभक्तियों, प्रत्ययों, परसर्गों का आश्रय ग्रहण कर किसी वाक्य में प्रयुक्त होवें, तब इन्हें पद कहा जाता है। मूल शब्द कोष में रहता है जिसका प्रयोगगत कोई उपयोगिता नहीं है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पद कहलाता है। अतः रूप के दो भेद हैं -शब्द व पद।

6.3.2.1. शब्द का स्वरूप

उन ध्वनि-समूह को शब्द कहते हैं जिसमें अर्थ बोध की शक्ति हों। महर्षि पतंजली ने शब्द की परिभाषा देते हुए कहा है –"येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गुलककुदखुरविषाणिनां / संप्रत्ययों भवति सा शब्द:"

अर्थात् जिसके उच्चारण से सास्ना, लांगूल कुकूद, खुर, विषाण आदि से युक्त वास्तु का बोध होता है, उसे शब्द कहते हैं। उनके अनुसार –"अर्थगत्यर्थ: शब्द प्रयोग" अर्थात् अर्थ को व्यक्त करने के लिए शब्द का प्रयोग होता है। भर्तृहरि ने लिखा है-

षड्जादिभेदशरदेन व्यख्य्यातो रूप्यते यतः।
तस्मादर्थविद्या: सर्वाः शब्दमात्रासु निश्चिताः। |

अर्थात् शब्द के द्वारा ही असमाख्येय षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरों का यथार्थ विवेचन किया जाता है। आगे उन्होंने लिखा है -

न सोSरित्त प्रत्ययो लोके य़ः शब्दानुमादृते।
अनुविध्दमिव ज्ञानं सर्व शब्देन भासते। |

संसार में ऐसा कोई कोई ज्ञान नहीं है, जिसका बोध शब्द के बिना हो। संसार में जितना भी लोक व्यवहार व ज्ञान है सभी शब्द के माध्यम से भाषित होता है।

यूनान के दार्शनिक अरस्तू के अनुसार 'All speech is intended to serve for the communication of ideas'.अर्थात् वाणी से भाव, विचार या अर्थ का बोध होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिससे अर्थ का बोध हो व जो माध्यम भाव व विचार को व्यक्त कराने व समझाने में समर्थ हो वही शब्द है।

6.3.2.2. शब्द के भेद

जिस प्रकार ब्रह्म को अनंत, असीम, अजन्मा व अनेक रूपाय माना गया है उसी प्रकार शब्द के भी अनेक रूप स्वीकार किए गए हैं। निरुक्तकार यास्क मुनि ने शब्द का विभाजन चार

प्रकार से किया है -नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात- 'नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्चेति वैयाकरण:। '

(i) नाम - संज्ञा शब्द, जैसे राम, सीता, लड़का, गाय आदि।

(ii) आख्यान - क्रिया शब्द, जैसे करना, खाना, पीना, गाना आदि।

(iii) उपसर्ग - वह् शब्द जो संज्ञा या क्रिया के आरम्भ में जुड़कर विशिष्ट अर्थों का बोध कराए| जैसे -प्र,परा, अनु, वि आदि।

(iv) निपात - वे शब्द जो किसी भी अन्य अर्थ के साथ तादात्म्य कर अपना अन्वय-बोध कराने में समर्थ हो। जैसे संस्कृत में च, आ, व आदि।

नैयायिका ने शब्द के तीन भेद माने हैं-प्रकृति, प्रत्यय और निपात।

(i) प्रकृति -वे शब्द जो किसी अर्थ की प्रतीति कराएँ व अपने द्वारा प्रतिपाद्य अर्थ का बोध कराने में निश्चित हो। जैसे -गुरु, स्वामी आदि।

(ii) प्रत्यय -वे शब्द जिसका स्वयं कोई अर्थ नहीं पर प्रकृति से युक्त होकर अर्थ का बोध कराएँ| जैसे हिंदी में त्व, ता, आई प्रत्यय है व संस्कृत में सुप, तिड्, कृदंत व तध्दित चार प्रकार के प्रत्यय होते हैं।

पाणिनी ने शब्द के चार भेद किये हैं -

(i) प्रातिपादिक - प्रत्ययों के बिना ही अर्थ बोधक शब्द। जैसे - राम,शाम आदि।

(ii) धातु - मूल क्रियावाचक शब्द। जैसे -भू, ज आदि।

(iii) सुबंत - सु, औ, जस आदि विभक्तियाँ।

(iv) तिड्त - जो शब्द धातु के सामने लगकर अर्थ-बोध कराएँ। संस्कृत के तिप, तस, आदि तिड्त हैं। जैसे भवति, भवंति आदि।

अंग्रेज़ी व्याकरण की दृष्टि से शब्द के आठ भेद हैं -

(i) संज्ञा (ii) सर्वनाम (iii) विशेषण (iv) क्रिया (v) क्रिया विशेषण (vi) संबंध सूचक अव्यय (vii) समुच्चयबोधक अव्यय (viii) विस्मयादिबोधक।

रचना की दृष्टि से शब्द के तीन भेद हैं -

(i) रूढ़- जिन शब्दों के सार्थक खंड न हो सकें। जैसे हाथ, पैर, नाक आदि।

(ii) यौगिक - जिन शब्दों के सार्थक खंड हो सके। इन शब्दों को ही सामासिक कहा जाता है। जैसे, झट-पट, धुड-साल, पाठ-शाला आदि।

(iii) योग-रूढ़ - जिन शब्दों के व्युत्पत्ति की दृष्टि से सार्थक खंड न हो सकें पर जो विशेष अर्थ के द्योतक हों। जैसे, जलद (जल+द) पंकज (पंक+ज)। जलद का व्युत्पत्तिपरक अर्थ पानी देनेवाला है परन्तु यह शब्द केवल बादल के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार पंकज का अर्थ है, कीचड़ में जन्म लेनेवाला, परन्तु कमल के लिए प्रयुक्त होता है।

रूपांतर की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं -

(i) विकारी - जिन शब्दों में लिंग, वचन, क्रिया के अनुसार परिवर्तन हो जाता है। जैसे लड़का, लड़की आदि। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि विकारी शब्द हैं।

(ii) अविकारी - जिन शब्दों में लिंग, वचन, क्रिया के अनुसार कोई परिवर्तन न हो। क्रिया विशेषण, सम्बन्धसूचक, समुच्चय-बोधक व विस्मयादिबोधक अव्यय अविकारी शब्द हैं।

शब्द -शक्तियों के आधार पर शब्द तीन प्रकार के होते हैं -

(i) वाचक - जो शब्द साक्षात संकेतित अर्थ का बोध कराएँ।

(ii) लक्षक - जो शब्द मुख्यार्थ से भिन्न किसी अन्य अर्थ को लक्षित कराएँ। जैसे तू उल्लू है वाक्य में व्यक्ति पक्षी वाचक नहीं बल्कि मूर्ख है।

(iii) व्यंजक - जो शब्द मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी व्यंग्यार्थ का द्योतक हो।

वाचक- शब्द चार प्रकार के होते हैं -

(i) जातिवाचक, (लड़का, पशु, पक्षी), (ii) गुणवाचक (पीला, लाल, हरा), (iii) क्रियावाचक (खाना, पीना, बैठना), (iv) द्रववाचक (चन्द्रमा, सूर्य, हिमालय)

ऐतिहासिक दृष्टि से शब्द के पाँच भेद हैं -

(i) तत्सम - संस्कृत के शुद्ध शब्द तत्सम कहलाते है। जैसे - अग्नि, सूर्य, कृपा, पृथ्वी, आदि।

(ii) तद्भव - तत्सम से बने विकृत शब्दों को तद्भव कहा जाता है। जैसे - आग, छमा, दलिद्दर आदि।

(iii) देशज -जिन शब्दों की व्युत्पत्ति अज्ञात होती है पर वे लोकभाषाओं में प्रचलित होते हैं। जैसे-लोटा, खटिया, तेंदुआ आदि।

(iv) द्विज या संकर - जो शब्द दो भाषाओं के योग से बनता है। जैसे -रेलगाड़ी -(अंग्रेज़ी + हिंदी), अमन सभा - (अरबी+संस्कृत), अजायबघर (फारसी+हिंदी)

(v) आगत -जो शब्द विदेशी भाषाओँ के हों पर किसी भाषा में आकर प्रचलित हो जाएँ। जैसे- कोट, हैट, टिकट, आका, आचार, गरीब आदि शब्द विदेशी हैं पर हिंदी भाषा ने इन्हें अपना लिया है।

अर्थ की दृष्टि से शब्द के दो भेद है -

(i) एकार्थवाची -जो शब्द एक ही अर्थ का द्योतक हो। जैसे -हाथ, नाक, कान, खाट आदि|

(ii) अनेकार्थवाची -जो शब्द अनेक अर्थ के द्योतक हो। जैसे- ईश शब्द पति, स्वामी, राजा,ईश्वर आदि अनेक अर्थवाची हैं। केसर व जाफरान, सिंह की गर्दन, अयाल, मौलसिरी, नागकेसर, सोना आदि अनेक अर्थवाची है

6.3.2.3. शब्द और अर्थ में भेद

सामान्य रूप से शब्द और पद को पर्यायवाची समझा जाता है परन्तु भाषा विज्ञान व व्याकरण की दृष्टि से वे भिन्नार्थक हैं। सार्थक ध्वनि-समूह को शब्द कहा जाता हैं, जिसे संस्कृत में प्रातिपदिका कहते हैं। यही शब्द (मूलरूप, धातु) जब प्रत्यय, विभक्ति से संयुक्त होकर अन्य शब्दों के साथ अपना संबंध स्पष्ट करें व प्रयोग-योग्यता-संपन्न बन जाएँ तब इसे पद कहते हैं। महाभाष्य में कहा गया हैं-"न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तण्या, नापि केवलः प्रत्यय। अपंद प्रयुञ्जीत। " अर्थात् केवल प्रकृति (मूलशब्द, धातु) का प्रयोग नहीं करना चाहिए न ही केवल प्रत्यय का प्रयोग हो। अपद यानी शब्द को पद बनाए बिना प्रयोग न करें।

विश्व की कई भाषाओं में शब्द और पद में कोई अंतर नहीं है। जैसे - अयोगात्मक भाषा परिवार के चीनी भाषा में प्रत्येक शब्द स्वतंत्र है। सेमेटिक (अरबी आदि) भाषाओं में प्रत्यय या सम्बंधतत्व शब्द के अन्दर लग जाते हैं। जैसे क्, त्, ब् (पढ़ना) >किताब (पुस्तक)।

बोध प्रश्न –

- शब्द और पद में अंतर स्पष्ट कीजिए।
- रूपांतर की दृष्टि से शब्द के कितने भेद है?
- यास्क मुनि ने शब्द का विभाजन कितने प्रकार से किया है?

6.3.3 अर्थ तत्व व संबंध तत्व का पारस्परिक सम्बन्ध

सार्थक ध्वनि-समष्टि को शब्द कहते हैं। यह शब्द मानसिक बिम्बों के द्वारा अर्थ व भावों की अभिव्यक्ति करता है। जैसे - 'राम ने रावण को तीर से मारा'। इस वाक्य में राम, रावण, तीर, मारा इन चार शब्दों के मानसिक प्रतिभा द्वारा अर्थ व भाव-बोध हो रहा है। अतः ये अर्थतत्व हैं। उपरोक्त वाक्य में 'ने', 'को', 'से' विभक्ति व 'आ' प्रत्यय से शब्द के परस्पर संबंध का ज्ञान हो रहा है। इस वाक्य का निर्माण चार पदों से शब्द के परस्पर संबंध का ज्ञान हो रहा है। इस वाक्य का निर्माण चार पदों से हुआ है। राम ने, रावण को, तीर से तथा मारा। 'ने', 'को', 'से' व 'आ' ध्वनियाँ किसी विशेष अर्थ का बोध नहीं कराता पर इनका प्रयोजन शब्द के आपसी संबंध बतलाकर वाक्य का निर्माण करना है। ये ध्वनियाँ ही बतलाती हैं कि इस वाक्य में राम

कर्ता हैं, रावण कर्म हैं, तीर करण है तथा मारा भूतकाल की क्रिया है। पारस्परिक संबंध बतलाने वाली ध्वनियों को संबंध तत्व कहते हैं। इस प्रकार वाक्य में दो प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है।

(i) अर्थ तत्व - जो शब्द या ध्वनि केवल अर्थ या विचार का बोध कराएँ।

(ii) संबंध तत्व -जो शब्द या ध्वनि अर्थ-तत्वों के पारस्परिक संबंध का ज्ञान कराएँ।

बोध प्रश्न –

- सार्थक ध्वनि किसे कहते हैं?
- अर्थ और संबंध तत्व के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

6.3.4 संबंध तत्व के प्रकार

संबंध तत्व वे इकाई हैं जो अर्थ तत्वों के मध्य लगकर दो अर्थ तत्वों के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करते हैं। संबंध तत्व को कई विद्वान रूप-मात्र भी कहते हैं। विश्व की भाषाओँ के विश्लेषण से संबंध-तत्व के कई भेद पाए जाते हैं जो निम्नलिखित हैं -

1) शब्द स्थान (पद-क्रम) –

संसार की कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जिनके वाक्यों में यदि पदों का क्रम बदल दिया जाए तो अर्थ में परिवर्तन हो जाएगा। अर्थात् शब्द का स्थान ही संबंध-तत्व का द्योतक हैं।

जैसे - न्गो ता नी = मैं तुझे मारता हूँ।
नी ता न्गो = तू मुझे मारता है।

अंग्रेजी का पद क्रम है - कर्ता, क्रिया, कर्म पर पद बदलते ही अर्थ में अंतर आ जाता है।

जैसे - Ram killed Ravana = राम ने रावन को मारा

Ravana killed Ram = रावण ने राम को मारा।

संस्कृत व हिंदी में समस्त सामासिक पदों में शब्दों का स्थान संबंध तत्व का काम करता है। स्थान भेद से अर्थ में अंतर हो जाता है।

जैसे - राज-गृह = राजा का घर।
गृह-राज = घरों का राजा
राज-पंडित = राजाओं का पंडित
पंडित-राज = पंडितों का राजा।

इसी प्रकार मल्लग्राम, धन पति, राजपुत्र, घनश्याम, पतिगृह आदि शब्दों में भी स्थानांतर से अर्थांतर हो जाता है।

2) स्वतन्त्र शब्द –

संसार की अनेक भाषाओं में स्वतंत्र शब्द संबंधतत्व का काम करते हैं जैसे

(क) संस्कृत में - इति, च, वा, कृते, अर्थम् आदि।
न गमिष्यामि इत्युवाच (नहीं जाऊँगा ऐसा उसने कहा)
स्नानस्य कृते, स्नानार्थम (नहाने के लिए)
रामःकृष्णों वा (राम या कृष्ण)
(ख) हिंदी में - कारक चिह्न (विभक्ति, परसर्ग) ने, को, से, द्वारा आदि।
(ग) अंग्रेजी में -To (को), From (से), in (में), on (पर), with (से) आदि।
(घ) चीनी में-मेन (बहुवचन-चिह्न), ति (का), यु (को), त्सुंग (से), लि (पर) आदि। चीनी भाषा में पूर्ण (full) और रिक्त (Empty) दो प्रकार के शब्द होते हैं। संबंध तत्व वाले शब्द रिक्त होते हैं।
(ङ) फ्रेंच में -Quidi (उध्दरण- सूचक), du (का), Dans (में) ne ...pas (नहीं), sur (पर)आदि।
(च) जर्मन में -zu (को), Auf (पर), Mit (से)

3) शून्य तत्व (अविकृत शब्द, Zero -Modification)

L.Bloomfield (Language) p. 209) ने पाणिनि आदि वैयाकरणों के प्रति शुन्यतत्व के उपयोग को लेकर कृतज्ञता प्रकट की है। शून्य-तत्व का अभिप्राय है कि शब्द या धातु अपने मूल रूप में रहते हुए व्याकरण के संबंधों को बताते हैं।

हिंदी में आज्ञार्थक शब्द - आ, जा, खा, चल, उठ, बैठ आदि शब्द अविकृत हैं जिसका प्रयोग मध्यम पुरुष एकवचन में आज्ञार्थक रूप में होता है। तू आ, तू पढ़, तू बैठ आदि। अंग्रेजी में Sheep, Deer, Scenery आदि का प्रयोग एकवचन व बहुवचन में सामान रूप से होता है। इसी प्रकार Cut, Put, Bet, Set, Wed आदि भूतकाल के रूप में शून्य तत्व के उदहारण हैं।

4) अव्यय शब्द

विश्व की कई भाषाओं में अव्यय शब्द ही संबंध तत्व का कार्य करते हैं। जैसे हिंदी में तो, लेकिन, यद्यपि-तथापि, ज्यों-त्यों आदि। जैसे राम तो आया लेकिन श्याम नहीं आया। यद्यपि राम स्कूल गया तथापि अध्ययन नहीं किया। ज्यों ही कुत्ता भौंका त्यों ही घरवाले जाग गए। संस्कृत में प्रति, अरबी-फ़ारसी में रा, कि, लेकिन आदि अव्यय शब्द संबंध तत्व हैं|

5) प्रत्यय (Suffix)

शब्द व पदों के अंत में जुड़नेवाले प्रत्यय भी एक प्रकार से संबंध तत्व ही हैं क्योंकि इनसे भी पदों के व्याकरणिक संबंध का बोध होता है। जैसे देव>देवः, देवौं, देवाः, देवम्, आदि प्रत्यय,

शतृ,क्त (गच्छत्, गतः) आदि प्रत्यय अंग्रेजी की ed (walked), id (wept), ing (saying) es (goes),en (broken), ness(redness), ish (childish), ing (going) आदि हिंदी का आ (मारा), अंत(रटंत), आई (खुदाई), आऊ (उड़ाऊ) आका (धड़का) आदि।

6) आगम (Affixation, Addition)

शब्दों व धातुओं में पहले पूर्वसर्ग (Prefix) या परसर्ग लगने से शब्द के अर्थ में अंतर हो जाता है। जैसे हार से प्रहार, विहार, अनाहार, संहार आदि विभिन्न अर्थ द्योतक शब्द बन जाते हैं। अंग्रेजी में Re,de, un, ex, per, कॉम आदि उपसर्ग हैं जैसे- Receive, de-ceive, perceive, re-fer, Defer, con-fer।

7) विवरण (Infix)

कुछ भाषाओं में मध्य में प्रत्यय जुड़ता है, जो उस क्रिया के गण, काल, वाक्य आदि का बोध कराता है। यह मध्य प्रत्यय भी संबंध तत्व के अंतर्गत आते हैं। जैसे हिंदी में लिखना>लिखवाना, कटना > कटवाना, उठाना > उठवाना आदि। संस्कृत में युध्यते (युध् + य + ते) और गम्यते (गम् + य + ते) में य विकरण ; कारयति (कृ +अय + ति) में अय विकरण, स्नापयति (स्ना +पय + ति) में पय विकरण है।

8) अपश्रुति (आतंरिक परिवर्तन -Internal change)

संसार की कुछ भाषाओं में आतंरिक परिवर्तन से अर्थांतर हो जाता है। जैसे-अंग्रेजी में Sing, Sang, sung पद, अरबी में कतल, कातिल, कुत्ल, कुतिल, कित्ल, हिंदी में मेल, मेला, मिलाप, मिलन, मिलाना, मिलाना आदि पद अपश्रुति के कारण ही विविध रूपों में परिवर्तित होकर प्रयुक्त होते हैं।

9) द्विरुक्ति (Reduplication)

-कुछ भाषाओं में एक ही शब्द की आवृत्ति होती है। शब्द की द्विरुक्ति भी पदों के सम्बंधतत्व को प्रकट करती है। जैसे -दृश् (देखना)> ददर्श (देखा), पठ् >पपाठ (पढ़ा), हिंदी में घर-घर, दिन-दिन, गाँव-गाँव आदि पदों में द्विरुक्ति द्वारा प्रति का भाव प्रकट हो रहा है।

अफ्रीका की कुछ भाषाओं में भी यह द्विरुक्ति की प्रवृत्ति पाई जाती है। जैसे,इरिक् (चलना) इरिक्-रिक् (बहुत- चलना)|

10) बलाघात (Stress)

कुछ भाषाओं में एक ही शब्द संज्ञा, क्रिया दोनों होते है। शब्द के पहले अवयव पर बल पड़ता है तो वह संज्ञा बन जाता है, अंतिम अवयव पर बल पड़ने पर वह पद क्रिया बन जाता है। जैसे -Conflict (संज्ञा) Conflict (क्रिया), Import (संज्ञा) Import (क्रिया) ; Project (संज्ञा) Project (क्रिया)।

ग्रीक में, Patroktonos शब्द में to पर बलाघात होने पर वह संज्ञा पद अर्थात् पिता को मरनेवाला व ro पर बलाघात होने पर क्रियापद अर्थात् पिता द्वारा मारा गया अर्थ होता है।

11) ध्वनि निष्कासन (ध्वनिवियोजन Substraction)

कई भाषाओं में से अंतिम ध्वनि निकाल दी जाती है, तो उसका निष्कासन भी संबंध तत्व का बोध कराता है। जैसे - संस्कृत की दा धातु का अर्थ देना हैं। जब इसको जल, धन, वारि,काम, सुख आदि शब्दों के साथ जोड़ते हैं तथा दा में से आ ध्वनि निकाल देते हैं और क्रमशः जलदः, धनदः, वारिदः,कामदः,सुखदः आदि पद बन जाते हैं। फ्रेंच भाषा में इसके उदाहारण बहुत मिलते है।

सज्जन का स्त्रीलिंग शब्द gentille ध्वनि-निष्कासन के अंतर्गत पुल्लिंग अर्थवाचक gentil हो जाता है। Longa अर्थात् लम्बी स्त्रीलिंग रूप पुल्लिंग में Long हो जाता है।

बोध प्रश्न -

1) संबंध तत्व के कितने प्रकार हैं? ध्वनि निष्कासन से क्या अभिप्राय हैं।

2) स्वतन्त्र शब्द क्या है? उदाहरण सहित समझाईए।

6.3.5 रूप परिवर्तन के कारण

भाषा का प्रमुख गुण है, परिवर्तन। अतः उसकी इकाई -ध्वनि, शब्द, पद, अर्थ, वाक्य में विभिन्न परिस्थितियों के कारण समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। भाषा में परिवर्तनशीलता के कारण बहुत से नए-नए रूपों का विकास व विनाश होता है। इन रूपों के विनाश-विकास के निम्नलिखित कारण है।

1) नियमन - भाषा के कई नियम होते हैं जिन्हें स्मरण रखकर भाषिक-प्रयोग सरल होता है| परन्तु इसके विपरीत कुछ अपवाद इन प्रचलित नियमों का उल्लंघन करते हैं जिन्हें स्मरण कर प्रयोग करना कठिन होता है। इस कठिनाई से बचने के लिए प्रत्येक भाषा-भाषी जाने-अनजाने अनियमित रूपों के स्थान पर नियमित रूपों का प्रयोग कर जाता है। जैसे मर् का मरा, बैठ् का बैठा, चल् का चला रूप नियमित है परन्तु कर् का किया रूप अपवाद है। फलस्वरूप बहुत से

लोग कर् का करा रूप का प्रयोग कर देते हैं। ऐसे ही आइए, बैठिए, खाइए के सामान हूजिए, कीजिए शब्द जो की अपवाद व नियम विरुध्द है, का प्रयोग होइए, करिए के रूप में किया जाने लगा। हिंदी के विशेषण (बड़ा, अच्छा, मीठा, लंबा) व ईकारांत विशेषण (बड़ी, अच्छी, मीठी, लंबी) के सामान भारा (भारा बदन-पंजाब में प्रचलित), ताजा (होना चाहिए ताज़ी खबर), खारा पानी (होना चाहिए खारी पानी) का प्रयोग होता है।

2) एकीकरण - मानव का यह सहज स्वभाव है कि बोलने व लिखने में समय की बचत के लिए वह पदों के रूपों में एकरूपता लाने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में जो रूप अधिक बलवान हैं वह स्थिर हो जाता है पर जो रूप दुर्बल होता है उसका नाश हो जाता है। जैसे संस्कृत में पुत्र का पुत्रस्य, सर्व का सर्वस्य, अग्नि का अग्नेः, वायु का वायोः रूप बनता है पर पालि में पुत्तस्स, अग्गिस्स, वाउस्स रूप एकीकरण के प्रवृत्ति के कारण बन जाता है। हिंदी में संबंध कारक के चिह्न का प्रयोग कर्म, कारण,संप्रदान, अपादान, अधिकरण से अधिक होता है। इसी कारण मुझ, तुझ वाले रूप लुप्त होते जा रहे हैं। उसके स्थान पर मेरे को (मुझे, तेरे को (तुझे, तेरे से तुझ से), मेरे पर (मुझ पर), तेरे में (तुझ में) रूप प्रचलित हो गया है।

3) सरलीकरण (Sirapligication)- प्रायः बोलते व लिखते समय सरलता व सौकर्य के कारण रूपों में परिवर्तन हो जाते हैं। संस्कृत में पहले तीन लिंग - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग व नपुंसकलिंग व तीन वचन -एकवचन, द्विवचन व बहुवचन प्रचलित थे। प्राकृत व अपभ्रंश काल में सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण हिंदी तक आते-आते दो ही लिंग -पुल्लिंग व स्त्रीलिंग तथा दो वचन -एकवचन व बहुवचन रह गए। नपुंसकलिंग के शब्दों को पुल्लिंग व स्त्रीलिंग में सम्मिलित कर लिया गया। जैसे - ज्ञान, जल, दधि, मधु, दिन, बल, धनुष, फल आदि नपुंसक लिंग वाले शब्दों को पुल्लिंग में व पुस्तक को स्त्रीलिंग में तथा दधि से बने दही शब्द का प्रयोग पुल्लिंग में (दही खट्टा) व स्त्रीलिंग में (दही मीठी है) होने लगा है। ऐसे ही एक के अतिरिक्त सभी अंकों को बहुवचन में सम्मिलित कर लिया गया है।

4) उपमान या सादृश्य (Analogy - संसार की सभी भाषाओं के रूप परिवर्तन में सादृश्य का योगदान रहा है। जैसे संस्कृत का शब्द हस्तिन् का तृतीया एकवचन रूप हस्तिना है, तथा मति, मुनि, भानु आदि शब्द तृतीया एकवचन के आ प्रत्यय लगकर मत्या, पत्या, मुन्या, भान्वा रूप बनने चाहिए परन्तु उपमान या सादृश्य के कारण हस्तिना के समान मतिना, पतिना, मुनिना, भानुना आदि बोले जाने लगे हैं जो कि बिल्कुल नियम-विरुध्द हैं। ऐसे ही अंग्रेज़ी में Will व Shall का भूतकालिक रूप would व should हैं, इसी के सादृश्य पर Can का Could बन

गया जबकि Can शब्द में L कहीं नहीं है। ऐसे ही हिंदी में तीन से तीनों रूप के सादृश्य पर दो से दोनों बन गए जबकि दो शब्द में न नहीं है। दुक्ख के सादृश्य पर सुक्ख, रघुराई के सादृश्य पर नियराई, है (हय) के सादृश्य पर गै (गज), उर्वि (पृथ्वी) के सादृश्य पर गुर्वि (गुरु) आदि रूप भी परिवर्तित हुए हैं।

5) स्पष्टता - भाषा में एकरूपता व कारकों में एक जैसे रूपों के प्रयोग होने पर अधिक स्पष्टता लाने के लिए रूप-परिवर्तन होता है। जैसे पहले अवधि में एकवचन व बहुवचन में एक ही संज्ञा रूप का प्रयोग होने लगा था, जिससे शब्दों में एकरूपता आ गई थी। चोर, लरिका, गईंया, बरघा आदि शब्दों के प्रयोग एक वचन व बहुवचन में समान थे पर स्पष्टता लाने के लिए चोरन, लरिकन, गईंयन, बरघन आदि बहुवचन रूप बन गए| फारसी के दर-हकीकत, दर-अस्ल शब्दों में दर शब्द का अर्थ हैं में। फारसी का चलन समाप्त हो जाने पर हक़ीकत में, दरअसल में रूप प्रचलित हो गए। श्रेष्ठ शब्द का अर्थ है - सबसे अच्छा। किंतु व्याकरण की जानकारी कम होने से श्रेष्ठ शब्द अस्पष्ट हो गया, उसके स्थान पर सर्वश्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम, उत्तम के स्थान पर सर्वोत्तम शब्द का प्रयोग होने लगा। हिंदी में कवि, भक्त, विद्यार्थी, पंडित शब्द एकवचन व बहुवचन में समान है। परन्तु बहुवचन के रूप में स्पष्टता के लिए गण, जन, लोग आदि लगाने की प्रथा चल पड़ी। जैसे कविजन, कविलोक, भक्तगण, पंडित लोग आदि। हम शब्द बहुवचन है पर स्पष्टता के लिए हमलोग का प्रयोग इसी स्पष्टता का परिणाम है।

6) अज्ञान - अज्ञान के कारण भी रूप- संबंधी परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। जैसे उपर्युक्त के स्थान पर उपरोक्त, स्रष्टा के स्थान पर सृष्टा, सृष्टि के स्थान पर सादृश्य पर सृष्टा, द्रष्टा के स्थान पर दृष्टा, दृष्टि के सादृश्य पर दृष्टा, द्रष्टव्य के स्थान पर दृष्टव्य, शृंगार के स्थान पर श्रंगार, अनुगृहीत के स्थान पर अनुग्रहीत, व्यंग्य के स्थान पर व्यंग, सहस्र के स्थान पर सहस्त्र, कृपणता, कोमलता, पांडित्य के स्थान पर कृपणताई, कोमलताई (भरत भाग्य प्रभु कोमलताई, मानस -7 -11-3) पांडित्यता आदि का प्रयोग भी शब्दों की मूल प्रकृति, उनकी रचना पध्दति-बनावट-व्याकरणिक रूप आदि से अपरिचित होने के कारण बदल जाते हैं।

7) बल (Stress, Emphasis) -बलाघात से भी रूपों में विकार आ जाते हैं। जैसे अनेक के स्थान पर अनेकों, खालिस के स्थान पर निखालिस, खाकर के स्थान पर खाकरके इसी बल के ही परिणाम हैं।

8) नवीनता - जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता का प्रयोग दिखाई देता है। भाषा के क्षेत्र में भी नवनिर्मित शब्दों के प्रयोग के कारण शब्दों के रूप अत्यंत विचित्र हो जाते हैं।

प्रचलित रूप	नवीन रूप
मृदुता	मार्दव
प्रचुरता	प्राचुर्य
प्रखरता	प्राखर्य
उदारता	औदार्य
कुलीनता	कौलिन्य
सरलता	सारल्य
सुकुमारता	सौकुमार्य
सज्जनता	सौजन्य
सुकृति	सुकृत्य
सुकरता	सौकर्य
सुगमता	सौगम्य
सुशीलता	सौशील्य
विशिष्ट	विशिष्टता
विशेषता	वैशिष्ट्य

ये शब्द नवनीता के कारण ही चल पड़े हैं। इसी प्रवृति के कारण नए-नए क्रियाओं के रूप निर्मित हुए हैं। जैसे स्वीकारना, फिल्माना, अनुकूलता, बतियाना, रीतना, असीसना, प्रकटाना, हरसाना, निमजना आदि। नए विशेषणों का प्रयोग भी नवीनता की अभिरुचि के कारण हो रहे हैं। जैसे - तप्ती वासनाएँ, शिथिल रोमांच, अनथक गति, लजीली कली, प्यासी यादें, बासी सासें, निबिड़ वासना, बिलमे क्षण, सोंधी खुदबुद आदि ऐसे ही नवीन अभिव्यक्ति हैं। अज्ञेय ने भी इसी नवीनता की प्रवृत्ति के कारण पल्लवन, कुसुमन जैसे नए रूपों का प्रयोग किया हैं -

पल्लवन-पतझरों ने जिसका नित रूप सँवारा
पल्लवन-कुसुमन की ले पर अपनी प्रज्ञा को वाणी दे।

बोध प्रश्न -

- रूप परिवर्तन के कारणों को समझाइए।
- अज्ञानता के कारण कैसे रूप-परिवर्तन दिखाई देता है?
- रूप परिवर्तन में सादृश्य का योगदान कैसे रहता है?

6.3.6. रूप ग्राम विज्ञान

रूपिम या रूपग्राम को अंग्रेज़ी में Morphemics कहा जाता है। भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रूपग्राम है। रूपग्राम विज्ञान के अंतर्गत भाषा के विविध रूपों का वर्गीकरण व विश्लेषण किया जाता है। रूपग्राम विज्ञान को अंग्रेज़ी में Morphemics कहा जाता

है जिसके अंतर्गत भाषाओं के विविध रूपों का वर्गीकरण व विश्लेषण करके उनके अर्थ तथा वितरण के आधार पर रूपग्राम व संरूप को Allomorph कहा जाता है।

रूपग्राम:

भाषा या वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को रूपग्राम कहते हैं। 'राम ने रावण को तीर से मारा', वाक्य में सार्थक लघुतम खंड-आठ हैं - राम, ने, रावण, को, तीर, से, मार, आ|

1) राम-कर्ता 2) ने - कर्ता कारक का चिह्न, 3) रावण - कर्म, 4) को- कर्म कारक का चिह्न, 5) तीर -करण, 6) से- करण कारक का चिह्न, 7) मार - क्रिया, 8) आ- भूतकालीन क्रिया का चिह्न

6.3.6.1. रूप ग्राम के भेद: रूपग्राम को चार आधारों पर विभाजित कर सकते हैं।

1) प्रयोग के आधार पर

2) रचना के आधार पर

3) अर्थ तत्व एवं संबंधतत्व के प्रदर्शन के आधार पर

4) खंडीकरण के आधार पर

1) प्रयोग के आधार पर – प्र

योग के आधार पर रूपग्राम के तीन भेद हैं -(क) मुक्त रूपग्राम (Free -morpheme), (ख) बध्द रूपग्राम (Bound morpheme), (ग) मुक्तबध्द रूपग्राम (Free -bound -morpheme)।

(क) मुक्त रूपग्राम (Free -morpheme) - जो रूपग्राम वाक्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होते हैं या हो सकते हैं उन्हें मुक्तबध्द कहते हैं। जैसे -हरि रसोईघर में पुस्तक पढ़ता है। इस वाक्य में हरी, पुस्तक मुक्त रूपग्राम है क्योंकि इनका प्रयोग बिना किसी अन्य रूपग्राम की सहायता से हुआ है। रसोई और घर भी मुक्त रूपग्राम है क्योंकि इनका प्रयोग भी वाक्य में स्वतंत्र रूप से हो सकता है। जैसे, रसोई बन रही है, घर की सफाई हो रही है आदि।

(ख) बध्द रूपग्राम (Bound morpheme) - जो रूपग्राम अकेले न आकर वाक्य में सदैव किसी न किसी शब्द के साथ जुड़कर प्रयुक्त होते है, उन्हें बध्द-रूपग्राम कहते हैं। जैसे लड़के घरों से निकलकर लड़ाई कर रहे हैं। इस वाक्य में लड़के में ए, घरों में ओं, लड़ाई में आई रूपग्राम शब्दों से पूर्णतया बध्द होकर प्रयोग में आए हैं।

(ग) मुक्तबध्द रूपग्राम (Free -bound -morpheme) - जो रूपग्राम देखने में तो सर्वथा स्वतंत्र व मुक्त हो पर वाक्य में सदैव किसी न किसी शब्द का आश्रय लेकर प्रयुक्त होते हैं उन्हें

मुक्तबध्द रूपग्राम कहते हैं। हिंदी के परसर्ग ने, को, से, में आदि स्वतंत्र लिखे जाते हैं पर वाक्य में शब्द के आश्रित होते है। जैसे राम ने खाना खाया, राम से उठा नहीं जाता, राम गाँव से वापस आया आदि। अंग्रेज़ी में from, in, on, into, with ऐसे ही मुक्तबध्द रूपग्राम हैं।

2) रचना के आधार पर-

रचना के आधार पर रूपग्राम दो प्रकार के है- (क) संयुक्त रूपग्राम, (ख) मिश्रित रूपग्राम

(क) संयुक्त रूपग्राम (Complex morpheme) -जिन रुपग्रामों की रचना दो या दो से अधिक ऐसे रुपग्रामों से होती है, जिनमें एक तो अर्थ तत्व होता हा तथा शेष सभी संबंध तत्व होते हैं। जैसे - हमारे घरों की सफाई होगी वाक्य में हमारे, घरों, सफाई, होगी, संयुक्त रूपग्राम हैं, क्योंकि इस वाक्य में हम, घर, साफ, होना चार अर्थतत्व हैं और आ+रे, ओं, आई, गी संबंध तत्व हैं।

(ख) मिश्रित रूपग्राम (Compound morpheme) -इसकी रचना दो या दो से अधिक स्वतंत्र अर्थतत्वों से होती है। जैसे हमारे पाठशाला से नगरपालिका निकट है वाक्य में पाठ+शाला, नगर+पालिका मिश्रित रूपग्राम है, जिनका निर्माण दो स्वतंत्र अर्थतत्वों से हुआ है। थलसेनापति, वायुसेनापति आदि शब्दों में तीन-तीन स्वतंत्रमिश्रित रूपग्राम हैं।

3) अर्थ तत्व एवं संबंधतत्व के प्रदर्शन के आधार पर –

इस आधार पर रूपग्राम के दो भेद हैं। (क) अर्थतत्व प्रदर्शन रूपग्राम (ख) संबंधतत्व प्रदर्शन रूपग्राम

(क) अर्थतत्व प्रदर्शन रूपग्राम -जो रूपग्राम वाक्य में केवल अर्थतत्व के प्रदर्शन होते है, उन्हें अर्थतत्व प्रदर्शन रूपग्राम कहते हैं। जैसे - संज्ञा -राम, बालक, घोड़ा, सीता, लता, आदि। क्रिया- होना, जाना, उठना, बैठना, चलाना, हटना, रटना आदि, विशेषण -अच्छा, बुरा, नीला, पीला, भला, दृष्ट, काला आदि। ऐसे रूपग्राम की संख्या सभी भाषाओं में अत्यधिक होती है तथा इन्हें व्याकरण की दृष्टि से प्रकृति, धातु, stem, root, मस्दर या माद्या भी कहा जाता है।

(ख) संबंधतत्व प्रदर्शन रूपग्राम - जो रूपग्राम वाक्य में केवल संबंध तत्व (विभक्ति, परसर्ग, प्रत्यय) को ही प्रदर्शित करते हैं, उन्हें संबंधतत्व प्रदर्शन रूपग्राम कहते हैं। हिंदी के परसर्ग -ने, को, से, के द्वारा, का, में, पर आदि। देशी प्रत्यय- अ, आऊ, आका, अक्कड़, आला, ओत, औत, री, गा, ता आदि। विदेशी प्रत्यय -वान, दान, खाना, खोर, गीरी, ची, बाजी, डम, एशन आदि तथा अंग्रेज़ी प्रत्यय -ed, ing, t, er, s, id, en, art, dom, head, hood, kin, let, ling,ness,

red, ish, less, some, ate, able, age, ce, ism, ment, tive आदि व संस्कृत की विभक्तियाँ सु, औ, जस्, अम्, औट, शस् आदि संबंध तत्त्व प्रदर्शक रूपग्राम हैं।

4) खंडीकरण के आधार पर –

इस आधार पर रुपग्रामों के दो भेद हो सकते हैं। (क) खंडात्मक रूपग्राम (Segmental morpheme), (ख) अखंडात्मक रूपग्राम (Supra segmental morpheme)।

(क) खंडात्मक रूपग्राम (Segmental morpheme)-जिन रुपग्रामों को खंडो में अलग-अलग किया जा सकता है, उन्हें खंडात्मक रूपग्राम कहते है। जैसे-विश्वविद्यालय (विश्व+विद्या+आलय), डाकखाना (डाक+खाना), लड़कियों (लड़की+यों) आदि।

(ख) अखंडात्मक रूपग्राम (Supra segmental morpheme) -जिन रुपग्रामों को अलग-अलग खण्डों में विभाजित नहीं किया जा सकता उन्हें अखंडात्मक रूपग्राम कहते हैं। बलाघात (Stress), सुर (tone, pitch) तथा सुरलहर (intonation) अखंडात्मक रूपग्राम हैं, क्योंकि इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता हैं।

बोध प्रश्न -

- रूपग्राम को कितने आधारों पर विभाजित कर सकते हैं।
- अखंडात्मक रूपग्राम से आपका क्या अभिप्राय हैं? समझाईए।
- अर्थ तत्व एवं संबंधतत्व के प्रदर्शन के आधार पर रूपग्राम को स्पष्ट कीजिए।

6.3.6.2. रूप ग्राम के संरूप

संरूप को सहरूप या उपरूप भी कहा जाता है। कई रूपग्राम समानार्थी होते हैं व एक प्रकार की रचना में आते हैं या उनके आने के उद्देश्य समान होते है जैसे (एकवचन से बहुवचन बनाना) तथा वे परिपूरक वितरण (Complimentary distribution) में होता हैं अर्थात् रुपग्रामों के शब्दों के पीछे लगाने की स्थिति व नियम अलग-अलग हो, विरोध न हो या एक ही स्थिति में एक से अधिक न आते हों तो उन सबको एक ही रूपग्राम के संरूप या उपरूप माना जाता है। जैसे अंग्रेज़ी भाषा के बहुवचन मूलक प्रत्यय हैं S, परन्तु विभिन्न स्थितियों में आने पर उसके ध्वन्यात्मक रूपों में भिन्नता आ जाती है उदाहरण स्वरूप-

बहुवचन प्रत्यय	**शाब्दिक प्रयोग**	**उच्चारण**
S	Books, Rats, Cats, Shops, Post	स
S	Boys, cows, dogs	ज
es	Prizes, Judges, Bridges, Roses	इज
en	Oxen	एन

ren Children रेन

Zero Sheep, Swine, Cod, Trout, Salmon शून्य

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि स, ज, इज, इन, रिन रूपग्राम तो बहुवचन के लिए प्रयुक्त होते ही हैं, किन्तु कुछ शब्दों में कोई रूपग्राम नहीं लगता, वहाँ शून्य रूपग्राम होता है और वे शब्द भी एकवचन तथा बहुवचन दोनों में प्रयुक्त होते हैं। इन सभी रुपग्रामों का अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर यही ज्ञात होता है की ये सब समानार्थी हैं और समानार्थी होने के कारण एक के स्थान पर दूसरे के प्रयोग होने का भी सन्देश होता है। परन्तु ऐसा नहीं है, इन सभी रुपग्रामों के स्थान निश्चित हैं, जिस स्थान पर स का प्रयोग होता हैं, वहाँ ज नहीं आ सकता, जहाँ पर इज का प्रयोग होता है वहाँ पर इन का प्रयोग नहीं हो सकता अथवा जहाँ पर रिन का प्रयोग होता है वहाँ शून्य रूपग्राम का प्रयोग नहीं होता। अतएव वितरण अथवा प्रयोग की दृष्टि से सभी का स्थान पृथक-पृथक विभक्त है, उक्त सभी रूप परिपूरक वितरण (Complementary distribution) में हैं और इनका परस्पर कोई विरोध भी नहीं है, क्योंकि इन सभी रुपग्रामों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि _

(1) 'स' रूपग्राम वहाँ आता है, जहाँ स, श के अतिरिक्त और कोई व्यंजन होता है। जैसे books, school, rats आदि में क्रमशः स से पूर्व क (k), ल (l)और ट (t) व्यंजन आये हैं। अतः इसके पश्चात स रूपग्राम का प्रयोग हुआ है।

(2) 'ज' रूपग्राम वहाँ आता है, जहाँ अंत में आई आउ ध्वनि होती है। जैसे आई (eye), फ्लाई (fly) के अंत में आई ध्वनि है, पौनी (pony), बेबी (baby) के अंत में ई ध्वनि है और काउ (cow) के अंत में आउ ध्वनि विद्यमान है। यही कारण है कि इनके अंत में बहुवचन के लिए ज रूपग्राम का प्रयोग हुआ है।

(3) 'इज' रूपग्राम वहाँ आता है, जहाँ शब्दों के अंत में स,श, ज और च ध्वनि हो। जैसे हार्स (horse) के अंत में स ध्वनि है, बुश (bush) के अंत में श ध्वनि हैं, ऑरेंज (orange)के अंत में ज ध्वनि है और बीच (beech) के अंत में च ध्वनि है। इसलिए इनके पश्चात इज रूपग्राम का प्रयोग बहुवचन बनाने के लिए हुआ है।

(4) 'इन' रूपग्राम वहाँ आता है, जहाँ ox, brother आदि कुछ निश्चित शब्द आते हैं।

(5) 'रिन' रूपग्राम का प्रयोग भी child आदि कुछ निश्चित शब्दों के साथ ही होता है।

(6) 'शून्य' रूपग्राम का प्रयोग भी swine, sheep, deer, cod, trout आदि निश्चित शब्दों के लिए ही होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि उक्त रूपग्राम परस्पर विरोधी नहीं है, इनका वितरण परिपूरक है, ये विशिष्ट परिस्थितियों में ही आते हैं, एक रूपग्राम के स्थान पर दूसरा रूपग्राम नहीं आता और एक स्थिति में एक से अधिक रूपग्रामों का प्रयोग नहीं होता। अतएव उक्त संपूर्ण रुपग्रामों को एक ही रूपग्राम के संरूप कहा जा सकता है। इस दृष्टि से वे रूपग्राम किसी एक ही रूपग्राम के संरूप(Allomorph)कहलाते हैं, जो समानार्थी होते हैं, जो एक ही प्रकार की रचना में प्रयुक्त होते हैं, जिनके प्रयोग होने की स्थिति पृथक्-पृथक् होती है, जिनमें पारस्परिक विरोध नहीं होता, जो एक स्थोतो में एक से अधोक प्रयुक्त नहीं होते अथवा जो परिपूरक वितरण में होते हैं।

जिस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा में बहुवचन बनाने के लिए एक ही रूपग्राम के उपर्युक्त छः संरूप प्रचलित हैं, उसी प्रकार हिंदी में भी बहुवचन बनाने के लिए प्रायः शब्दों के आगे जिन रुपग्रामों का प्रयोग किया जाता है, वे सब एक ही रूपग्राम के विविध संरूप (Allomorph)होते हैं। जैसे-

संरूप	**परिपूरक वितरण**
1) ओं	गौओं, बहुओं, माताओं, भ्राताओ आदि।
2) ो	लड़कों, घरों, चौबों, पुस्तकों, सड़कों आई।
3) यों	लड़कियों, कवियों, थालियों, हाथिओं आदि।
4) ए	लड़के, बेटे, घोड़े, फोड़ो, जोड़ो आदि।
5) एँ	बहुएँ, गौएँ, माताएँ, धोतिएँ शालाएँ आदि।
6) े	आँखें, रातें, झीलें,बातें, गायें आदि।
7) याँ	नदियाँ, शक्तियाँ, थालियाँ, रानियाँ आदि।
8) ँ	बुधियाँ, लुटियाँ, डिबियाँ, बिटियाँ आदि।

9) शून्य (◦) अपरसर्ग रूपों के लिए शून्य संरूप आता है, क्योंकि वे दोनों वचनो में एक से रहते हैं। जैसे -अकारांत (घर), इकारांत (कवि), ईकारांत (हाथी), उकारांत (साधू), ऊकारांत (भालू) आदि।

1) ओं - हिंदी में प्रायः देखा जाता है कि जितने भी स परसर्ग शब्द आकारान्त, उकारांत, अकारांत आदि होते हैं, उनके बहुवचन बनाने में शब्दों के आगे ओं लगाया जाता है। आकारांत शब्दों में अंतिम वर्ण से पूर्व आ शब्द होने चाहिए तभी ओं लगेगा, अन्यथा ओं की मात्रा ही प्रयोग होगा। जैसे -लड़का से लड़कों। परन्तु अन्य सभी आकारान्त शब्दों के बहुवचन ओं लगाकर

ही बनते हैं। जैसे- माताओं, पिताओं, भ्राताओं आदि। उकारांत शब्दों में भी ओं लगाकर ही बहुवचन बनाया जाता है। जैसे -साधुओं, वस्तुओं आदि। ऊकारांत स परसर्ग शब्दों के बहुवचन बनाते समय उनको पहले उकारांत बना लिया जाता है और फिर ओं संरूप का प्रयोग होता है। जैसे, बहू से बहुओं, भालू से भालुओं डाकू से डाकुओं आदि। ओकारांत में बिना परिवर्तन किये हुए ही ओं लगाया जाता है। जैसे, गौओं, जौओं आदि।

2) ों-हिंदी के स परसर्ग अकारांत शब्दों में ओं न लगाकर केवल ओं की मात्रा (ों) का प्रयोग होता है। जैसे-घरों, चौबों, पुस्तकों, सड़कों आदि।

3) यों -हिंदी के स परसर्ग ईकारांत शब्दों के बहुवचन बनाते समय पहले उस शब्द को इकारांत बनाया जाता है, तथा यों संरूप जोड़ा जाता है। जैसे-लड़की से लड़कियों हाथी से हाथियों, साथी से साथियों, रानी से रानियों, थाली से थालियों आदि।

4) ए -हिंदी के अ परसर्ग आकारांत पुल्लिंग शब्दों के बहुवचन रूपों में अंतिम आ का लोप करके ए संरूप लगाया जाता है। जैसे, लड़का से लड़के, बेटा से बेटे, घोड़ा से घोड़े, फोड़ा से फोड़े, जोड़ा से जोड़े आदि।

5) एँ - हिंदी के अपरसर्ग आकारांत स्त्रीलिंग रों का बहुवचन बनाने के लिए एँ संरूप जोड़ा जाता है। जैसे, माताएँ, शालाएँ, अप्सराएँ आदि। साथ ही अपरसर्ग ईकारांत तथा ऊकारांत स्त्रीलिंग रूपों का बहुवचन बनाते समय पहले तो इन रूपों को ह्रस्व कर लेते हैं और फिर अंत में एँ संरूप जोड़ते हैं। जैसे - धोती से धोतिएँ, प्याली से प्यालिएँ, बहू से बहुएँ, जू से जूएँ आदि| अपरसर्ग उकारांत स्त्रीलिंग रूपों में कुछ भी परिवर्तन न करके उनके अंत में एँ जोड़कर बहुवचन बना लिया जाता है। जैसे - वस्तुएँ आदि।

6) ें -हिंदी के अपरसर्ग अकारांत स्त्रीलिंग रूपों में बहुवचन बनाने के लिए एँ के स्थान पर एँ की मात्रा (ें) का ही केवल प्रयोग होता है। जैसे- आँखें, रत से रातें, झील से झीलें, बात से बातें, गाय से गायें आदि।

7) याँ - हिंदी के अपरसर्ग ईकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन रूप बनाने के लिए पहले उन्हें ह्रस्व करके इकारांत बनाते हैं और फिर याँ संरूप जोड़ा जाता है। जैसे - नदी से नदियाँ थाली से थालियाँ, रानी से रानियाँ आदि। किन्तु इनमें से जो शब्द पहले से ही इकारांत होते है, उनमें बिना कुछ परिवर्तन किए याँ जोड़ा जाता है। जैसे शक्ति से शक्तियाँ, कृति से कृतियाँ, वृत्ति से वृत्तियाँ, क्षति से क्षतियाँ आदि।

8) ँ- हिंदी के उन अपरसर्ग स्त्रीलिंग रूपों के बहुवचन बनाते समय केवल चन्द्रबिन्दु (ँ) लगाया जाता है, जिनके अपरसर्ग अंत में या होता है। जैसे- बुढ़िया से बुढ़ियाँ, लुटिया से लुटियाँ, डिबिया से डिबियाँ, बिटिया से बिटियाँ, लठिया से लठियाँ, खटिया से खटियाँ, गुड़िया से गुड़ियाँ आदि।

9) शून्य (॰)- हिंदी के अपरसर्ग अकारांत (घर, दाम, आम); इकारांत (कवि, मुनि); ईकारांत (हाथी, पक्षी); उकारांत (साधु); ऊकारांत (भालू, ठाकू); एकारांत (चौरों); औकारात (जौ) आदि शब्दों में शून्य (०)संरूप का प्रयोग बहुवचन बनाते समय होता है। जैसे

घर -ये हमारे घर हैं।

दाम - मैंने इसके दाम दुकानदार को दे दी हैं।

आम - अबकी बार आम बहुत पैदा हुए।

कवि - मंच पर कवि बैठे हैं।

मुनि - तपोवन में मुनि तपस्या कर रहें हैं।

हाथी - भारत के जंगलों में हाथी अब कम मिलते हैं।

पक्षी - आकाश में पक्षी उड़ रहें हैं।

साधु - गंगा में साधु स्नान कर रहें हैं।

भालू - जंगल में भालू रहते हैं।

डाकू - चम्बल की घाटी के डाकू प्रसिध्द हैं।

चौबे -मथुरा के चौबे आ रहे हैं।

जौ- मेरे खेत में जौ बहुत हुए हैं।

उक्त उदाहरणों में शब्द बहुवचन में प्रयुक हुए हैं, किन्तु उनमें किसी भी प्रकार का संरूप नहीं जुड़ा है| अतः यहाँ शून्य (o) का योग मन जाता है। ऐसे ही चाचा, मामा, दादा,नाना,बाबा आदि पुनरावृत्ति वाले शब्दों में ; मुखिया, महाशय, महोदय, बहादुर, शास्त्री, देवी, साहरा जी आदि आदर-सूचक शब्दों में, गण (कविगण, पक्षिगण, देवतागण); जन (कविजन, मुनिजन, साधुजन); वर्ग (बंधुवर्ग, पाठकवर्ग); जाति (पशुजाति, मानवजाति, स्त्रीजाति); आदि से बने शब्दों में भी बहुवचन के लिए शून्य (o) संरूप का ही प्रयोग होता हैं|

अतएव जिस प्रकार अंग्रेज़ी में बहुवचन बनाने के लिए ही एक रूपग्राम के छः संरुपों का प्रयोग मिलाता हैं, उसी प्रकार हिंदी में बहुवचन बनाने के लिए एक ही रूपग्राम के नौ संरूप मिलते हैं, जिनके अर्थ की दृष्टी से कोई भिन्नता नहीं है, जो परस्पर तनिक भी विरोधी नहीं है, जिनके लगने की स्थिति निश्चित है, जिनमें से कोई भी संरूप किसी अन्य के स्थान पर प्रयुक्त नहीं हो सकता और जो सबके सब एक प्रकार किहि रचना में अर्थात् बहुवचन बनाने के लिए ही

प्रयुक्त होते हैं। अतः उक्त सभी संरूप एक ही रूपग्राम (ो) के रूप हैं। इस तरह एक ही रूपग्राम के समानार्थी एवं परिपूरक वितरण वाले ये सभी रूप संरूप की कोटि में आते हैं।

बोध प्रश्न -

1) रूप ग्राम के संरूप हिंदी में कितने प्रकार के हैं?

2) किन शब्दों में शून्य (०) संरूप का प्रयोग बहुवचन बनाते समय होता है?

3) 'स' रूपग्राम का प्रयोग कब होता है?

6.4 : पाठ सार

रूप विज्ञान के लिए अंग्रेज़ी में 'Morphology' शब्द का प्रयोग किया जाता है। Morph का अर्थ है 'पद' व logy का अर्थ है -विज्ञान या शास्त्र। उच्चारण की दृष्टि से यदि भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है तो सार्थकता की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई शब्द है। उन ध्वनि-समूह को शब्द कहते हैं जिसमें अर्थ बोध की शक्ति हों। जिससे अर्थ का बोध हो व जो माध्यम भाव व विचार को व्यक्त कराने व समझाने में समर्थ हो। सार्थक ध्वनि समूहों की समष्टि जिससे किसी एक अर्थ का बोध हो शब्द है। जैसे राम आदि शब्द हैं। पर जब ये शब्द विभिन्न विभक्तियों, प्रत्ययों, परसर्गों का आश्रय ग्रहण कर किसी वाक्य में प्रयुक्त हो, तब इन्हें पद कहा जाता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पद या रूप कहलाता हैं।

निरुक्तकार यास्क मुनि ने शब्द का विभाजन चार प्रकार से किया है -नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। तथा नैयायिका ने शब्द के तीन भेद माने हैं-प्रकृति, प्रत्यय और निपात| अंग्रेज़ी व्याकरण की दृष्टि से शब्द के आठ भेद हैं -(i) संज्ञा (ii) सर्वनाम (iii) विशेषण (iv) क्रिया (v) क्रिया विशेषण (vi) संबंध सूचक अव्यय (vii) समुच्चयबोधक अव्यय (viii) विस्मयादिबोधक। शब्द के अनेक दृष्टियों से कई भेद हैं जैसे -रूढ़, यौगिक, योग-रूढ़, विकारी, अविकारी, वाचक, लक्षक, व्यंजक, तत्सम, तद्भव, देशज, द्विज या संकर, आगत, एकार्थवाची, अनेकार्थवाची आदि।

जो शब्द या ध्वनि केवल अर्थ या विचार का बोध कराएँ अर्थ तत्व कहलाते हैं और जो शब्द या ध्वनि अर्थ-तत्वों के पारस्परिक संबंध का ज्ञान कराएँ संबंध तत्व कहलाते हैं। संबंध तत्व वे इकाई हैं जो अर्थ तत्वों के मध्य लगकर दो अर्थ तत्वों के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करते हैं। संबंध तत्व को कई विद्वान रूप-मात्र भी कहते हैं। विश्व की भाषाओं के विश्लेषण से संबंध-तत्व के कई भेद पाए जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं - शब्द स्थान (पद-क्रम), स्वतन्त्र, शून्य तत्व, अव्यय, शब्द प्रत्यय, आगम,विवरण, अपश्रुति (आतंरिक परिवर्तन, द्विरुक्ति, बलाघात, ध्वनि निष्कासन (ध्वनि वियोजन) आदि।

भाषा का प्रमुख गुण है, परिवर्तन। अतः उसकी इकाई -ध्वनि, शब्द, पद, अर्थ, वाक्य में विभिन्न परिस्थितियों के कारण समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। भाषा में

परिवर्तनशीलता के कारण बहुत से नए-नए रूपों का विकास व विनाश होता है। इन रूपों के विनाश-विकास के निम्नलिखित कारण है, जैसे- नियमन, एकीकरण, सरलीकरण, उपमान या सादृश्य, स्पष्टता, अज्ञान, बल, नवीनता आदि।

भाषा या वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को रूपग्राम कहते हैं। रूपग्राम को चार आधारों पर विभाजित कर सकते हैं (1) प्रयोग के आधार पर रूपग्राम के तीन भेद हैं -(क) मुक्त रूपग्राम (ख) बध्द रूपग्राम (ग) मुक्तबध्द रूपग्राम। (2) रचना के आधार पर रूपग्राम दो प्रकार के है- (क) संयुक्त रूपग्राम, (ख) मिश्रित रूपग्राम (3) अर्थ तत्व एवं संबंधतत्व के प्रदर्शन के आधार पर खंडीकरण के आधार पर रूपग्राम के दो भेद हैं। (क) अर्थतत्व प्रदर्शन रूपग्राम (ख) संबंधतत्व प्रदर्शन रूपग्राम (4) खंडीकरण के आधार पर रुपग्रामों के दो भेद हो सकते हैं। (क) खंडात्मक रूपग्राम, (ख) अखंडात्मक रूपग्राम।

संरूप को सहरूप या उपरूप भी कहा जाता है। कई रूपग्राम समानार्थी होते हैं व एक प्रकार की रचना में आते हैं या उनके आने के उद्देश्य समान होते है जैसे (एकवचन से बहुवचन बनाना) तथा वे परिपूरक वितरण में होता हैं अर्थात् रुपग्रामों के शब्दों के पीछे लगाने की स्थिति व नियम अलग-अलग हो, विरोध न हो या एक ही स्थिति में एक से अधिक न आते हों तो उन सबको एक ही रूपग्राम के संरूप या उपरूप माना जाता है।

6.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

उपर्युक्त पाठ सामग्री के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों के बारे में गहन जानकारी प्राप्त हुई है –

1. रूप का अर्थ और रूप प्रक्रिया ।
2. शब्द और पद में अंतर ।
3. अर्थतत्व और संबंध तत्व का अभिप्राय ।
4. संबंधतत्व के प्रकार ।
5. रूपपरिवर्तन की दिशाएँ ।
6. रूपग्राम विज्ञान।

6.6 : शब्द संपदा

1. विकारी - जिसमें परिवर्तन होता है
2. अविकारी - जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता
3. द्विज - संकर शब्द, दो भाषाओं के योग से बना शब्द
4. सादृश्य - समानता

5. रूपग्राम - रूपिम

6.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खण्ड (अ)

दीर्घ प्रश्न

1. रूप परिवर्तन के प्रमुख कारण कौन-से हैं? संरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. रूप-ग्राम विज्ञान के भेद सोदाहरण लिखिए।
3. संबंध-तत्व कितने प्रकार के हैं? सोदाहरण विवेचना कीजिए।

खण्ड (ब)

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. रूप और रूपग्राम किसे कहते हैं? समझाइए।
2. शब्द और पद में क्या अंतर स्पष्ट करते हुए शब्द के कितने प्रकार है समझाइए।
3. अर्थतत्व व संबंध तत्व को उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

खण्ड (स)

I.सही विकल्प चुनिए।

1. संसार की सभी भाषाओं के रूप परिवर्तन में किसका योगदान रहा है।
(अ) सादृश्य (आ) शब्द और पद (इ) अर्थ (ई) वाक्य ( )
2. रूपग्राम विज्ञान को अंग्रेज़ी में क्या कहा जाता है?
(अ) Bound morpheme (आ) Morphemics (इ) अ और आ (ई)कोई नही( )
3. भाषा या वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को क्या कहते हैं?
(अ) शब्द (आ) अर्थतत्व (इ) रूप (ई) रूपग्राम ( )
4. किनके कारण भी रूप- संबंधी परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं?
(अ) स्पष्टता (आ) बल (इ) अज्ञानता (ई)उक्त सभी ( )
5. अंग्रेज़ी में बहुवचन बनाने के लिए ही एक रूपग्राम के कितने प्रयोग मिलते हैं?
(अ) छः संरुपों (आ) पांच संरुपों (इ) दो संरुपों (ई) तीन संरुपों ( )

II.रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. सार्थक ध्वनि समूहों की समष्टि जिससे किसी एक अर्थ का बोध हो ____________है|
2. ___________ की रचना दो या दो से अधिक स्वतंत्र अर्थतत्वों से होती है।
3. नवीन प्रवृत्ति के कारण पल्लवन, कुसुमन जैसे नए रूपों का प्रयोग _______ ने किया|

4. स्त्रीलिंग को __________बनाने से पहले ह्रस्व कर लेते हैं और फिर अंत में एँ संरूप जोड़ते हैं।

5. 'मार्फलॉजी' शब्द में 'लॉजी' ________अथवा _________का वाचक है।

III.सुमेल कीजिए।

(अ)	**(ब)**
(i) रूप विज्ञान	(अ) अविकृत शब्द
(ii) अपश्रुति	(आ) Substraction
(iii) शब्द व पद	(इ) Morphology
(iv) शून्य तत्व	(ई) आतंरिक परिवर्तन
(V) ध्वनि निष्कासन	(उ) रूप

6.8: पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान - डॉ॰ भोलानाथ तिवारी
2. भाषा विज्ञान - डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. भाषा विज्ञान व हिंदी भाषा का इतिहास - डॉ॰ शीला मिश्र
4. शर्मा, रामकिशोर (2007). भाषाविज्ञान, हिंदी भाषा और लिपि
5. तिवारी, भोलानाथ. भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा
6. शर्मा, राजमणि (1996). आधुनिक भाषाविज्ञान
7. शर्मा, राजमणि (2010). हिंदी भाषा, इतिहास और स्वरूप
8. शर्मा, देवेंद्रनाथ (1966). भाषाविज्ञान की भूमिका

इकाई 7 : वाक्य विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 मूल पाठ : वाक्य विज्ञान

7.3.1 वाक्य विज्ञान और पद विज्ञान

7.3.2 वाक्य : अर्थ और परिभाषा

7.3.3 वाक्य की विशेषताएँ

7.3.4 वाक्य के तत्व

7.3.5 वाक्य : रचना पक्ष

7.3.6 वाक्य : अर्थ पक्ष

7.3.7 वाक्य परिवर्तन : कारण

7.4 पाठ सार

7.5 पाठ की उपलब्धियाँ

7.6 शब्द संपदा

7.7 परीक्षार्थ प्रश्न

7.8 पठनीय पुस्तकें

7.1: प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! हम सब जानते हैं कि हमें अपनी बात को सही ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए अनेक सार्थक शब्दों की आवश्यकता होती है। इन सार्थक शब्दों के समूह को ही वाक्य कहा जाता है। अतः अभिव्यक्ति के स्तर पर वाक्य का प्रमुख स्थान है। अर्थात पूर्ण अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्द-समूह वाक्य है। वाक्य के क्रमिक वैज्ञानिक अध्ययन वाक्य विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। इस इकाई में आप वाक्य से संबंधित विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

7.2: उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- वाक्य विज्ञान और पद विज्ञान की संकल्पना को समझ सकेंगे।
- वाक्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- वाक्य के तत्वों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- वाक्य के रचना पक्ष से अवगत हो सकेंगे।
- शब्द, पद और पदबंध से परिचित हो सकेंगे।
- वाक्य के प्रयोग संदर्भ को जान सकेंगे।

7.3: मूल पाठ : वाक्य विज्ञान

प्रिय छात्रो! अभिव्यक्ति के स्तर पर वाक्य पूर्ण अर्थ प्रदान करने वाला एक घटक है। वाक्य का गठन करते समय कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है। मौखिक भाषा में जहाँ अनुतान, आरोह-अवरोह, बलाघात आदि के माध्यम से हम अर्थ का अनुमान लगा सकते हैं, वहीं लिखित भाषा में वाक्य में विराम चिह्नों के आधार पर अर्थ का अनुमान लगाया जाता है। संप्रेषण भाषा का लक्ष्य है। इस लक्ष्य सिद्धि में वाक्य की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि हम वाक्यों में ही सोचते हैं। हम अपने विचारों को वाक्यों के विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करते हैं। वाक्य में शब्द अपना रूप परिवर्तित करके पद बन जाते हैं। इन्हीं पदों से अर्थ स्पष्ट होता है। अब हम वाक्य विज्ञान और पद विज्ञान क्या है, इसे समझने की कोशिश करेंगे।

7.3.1 वाक्य विज्ञान और पद विज्ञान

प्रिय छात्रो! प्रायः वाक्य विज्ञान और पद विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र को समझने में दुविधा उत्पन्न होती है। इन दोनों शब्दों को समझने की कोशिश करेंगे तो यह दुविधा भी आसानी से मिट जाएगी। पद (शब्द) की रचना से संबंधित अध्ययन पद विज्ञान कहलाता है। इसके अंतर्गत क्रिया, विशेषण, क्रिया विशेषण, कारक, लिंग, काल, वचन, पुरुष, संज्ञा आदि का अध्ययन होता है। शब्द को वाक्य में प्रयोग करने लायक कैसे बनाया जा सकता है, यह पद विज्ञान स्पष्ट करता है।

< चाय प्याला मैंने होंठ लगाया > - यहाँ पाँच शब्दों को एक समूह के रूप में रखा गया है। लेकिन इन्हें वाक्य नहीं कह सकते क्योंकि इन शब्दों से अर्थ पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो रहा है। अतः इन शब्दों के साथ संबंध तत्वों को जोड़ना अनिवार्य है। जब हम संबंध तत्वों को जोड़ते हैं तो ये शब्द वाक्य के रूप में इस तरह परिवर्तित हो जाते हैं -

< चाय के प्याला को मैंने होंठों से लगाया >

इन पदों को कहाँ और कैसे प्रयोग करके एक सार्थक वाक्य की रचना कर सकते यह वाक्य विज्ञान स्पष्ट करता है। पद से ऊपर के स्तर और उससे संबद्ध इकाइयों का क्षेत्र है वाक्य विज्ञान। अब आप वाक्य विज्ञान और पद विज्ञान में निहित अंतर को समझ गए होंगे। अब आगे चलते हैं।

बोध प्रश्न

- पद विज्ञान किसे कहते हैं?
- वाक्य विज्ञान किसे कहते हैं?

7.3.2 वाक्य : अर्थ और परिभाषा

वाक्य के निर्माण प्रक्रिया की चर्चा करने से पहले वाक्य किसे कहते हैं यह समझने की कोशिश करेंगे। वाक्य भाषा की पूर्ण इकाई है। सामान्य रूप से वाक्य को परिभाषित करना हो इस तरह कर सकते हैं - सार्थक शब्दों के समूह को वाक्य कहा जाता है। (A Sentence is a group of meaningful words)।

हिंदी के प्रसिद्ध वैयाकरण कांता प्रसाद गुरु ने पूर्ण विचार को प्रकट करने वाले शब्द समूह को वाक्य माना है। पाणिनी के अनुसार वाक्य पदों से निर्मित होता है। संज्ञा पद कर्ता, कर्म आदि पदबंधों का निर्माण करते हैं तो क्रिया पद वाक्य का मूल आधार है। अर्थ की दृष्टि से इनमें तालमेल होना चाहिए। 'वाक्यपदीयम' में भी वाक्य को परिभाषित किया गया है। वाक्य उसे कहेंगे जिसके अवयव विश्लेषण करने पर आकांक्षा युक्त हों, दूसरे वाक्यों के शब्दों की आकांक्षा न रखता हो, क्रिया प्रधान हो, अविभाज्य अर्थ देता हो।

पाश्चात्य विद्वान ब्लूमफील्ड ने वाक्य को परिभाषित करते हुए कहा कि "Sentence is an independent linguistic form. It is the larger unit of grammatical description." (वाक्य एक स्वतंत्र भाषिक रूप है। यह व्याकरणिक कोटि की बड़ी इकाई है।) वाक्य अपने आप में सार्थक और सबसे बड़ी भाषिक इकाई है।

एस्पर्सन ने कहा कि "A Sentence is a (relatively) complete and independent human utterance - the completeness and independence being shown by its standing alone or its capability of standing alone, i.e. of being uttered by itself." (वाक्य मनुष्य की उक्ति है जो संपूर्ण और अपने आप में स्वतंत्र होता है। अभिव्यक्ति के स्तर पर इसका स्वतंत्र अस्तित्व है।) अभिव्यक्ति के स्तर पर स्वतंत्र अस्तित्व होने का अर्थ यह है कि वाक्य किसी अन्य रचना तत्व पर निर्भर नहीं होता, बल्कि वह स्वतंत्र होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वाक्य एक स्वतंत्र एवं संपूर्ण सबसे बड़ी भाषिक इकाई है। अभिव्यक्ति के स्तर पर इसका एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है।

बोध प्रश्न

- पाणिनी ने किस पद को वाक्य का मूल आधार माना है?
- आप वाक्य को किस तरह से परिभाषित करेंगे?

7.3.3 वाक्य की विशेषताएँ

प्रिय छात्रो! वाक्य की परिभाषाओं को आप ध्यान से पढ़ेंगे तो वाक्य की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे। तो आइए, कुछ विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

(क) शब्दों का समूह

वाक्य शब्दों का समूह है। और यह सार्थक समूह है। अपने विचारों को पूर्ण रूप से व्यक्त करने के लिए हमें अनेक शब्दों की आवश्यकता होती हैं जो एक-दूसरे से जुड़कर एक निश्चित अर्थ देते हो। लेकिन यह भी ध्यान देने की बात है कि कभी-कभी संवाद या वार्तालाप में एक ही शब्द से हम अपनी बात को व्यक्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यह संवाद देखिए -

राम : मोहन तुम मेरे साथ आओगे?

मोहन : नहीं।

उपर्युक्त उदाहरण में प्रयुक्त शब्द 'नहीं' अपने आपने पूरी बात को स्पष्ट कर रह है। यहाँ यह पूर्ण वाक्य का अर्थ दे रहा है। अर्थात, राम मैं तुम्हारे साथ नहीं आऊँगा। इसी प्रकार एक और उदाहरण देखें -

राम : तुमने दवाई खा ली?

मोहन : हाँ।

यहाँ 'हाँ' शब्द पूर्ण वाक्य का अर्थ दे रहा है। अर्थात - हाँ, मैंने दवाई खा ली।

(ख) व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण

व्याकरण की दृष्टि से देखेंगे तो वाक्य प्रायः पूर्ण होते हैं। वाक्य से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है और संप्रेषण संभव होता है। अपूर्णता से सही अर्थ संप्रेषित करना असंभव है। अतः व्याकरण पूर्णता को महत्व देता है।

(ग) क्रिया की अनिवार्यता

वाक्य में क्रिया या सहायक क्रिया प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में होती है। यह अनिवार्य भी है। जहाँ एक शब्द में वाक्य की अनुभूति हो वहाँ क्रिया शब्द परोक्ष रूप से उपस्थित होती है।

(घ) भाषिक इकाई

भाषा की लघुतम (सबसे छोटी) इकाई ध्वनि है। ध्वनियों के संयोजन से शब्द, शब्दों से पद और पदों के समूह से वाक्य बनता है। वाक्य भाषा की सार्थक और सबसे बड़ी इकाई है।

बोध प्रश्न

- भाषा की सार्थक और सबसे बड़ी इकाई को क्या कहते हैं?
- वाक्य की कुछ विशेषताएँ बताइए।

7.3.4 वाक्य के तत्व

प्रिय छात्रो! अब तक आप समझ ही चुके होंगे कि संप्रेषण अथवा अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के वाक्य एक आवश्यक घटक है। इस वाक्य के कुछ प्रमुख तत्व हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार वाक्य तीन तत्वों की अपेक्षा रखता है - आकांक्षा, योग्यता और समीपता।

इस समीपता को विश्वनाथ ने आसत्ती कहा है। इन तीन तत्वों के अतिरिक्त सार्थकता, अन्विति और क्रमबद्धता भी आवश्यक है। आइए, इन तत्वों के बारे में थोड़ी सी चर्चा कर लेते हैं -

(i) आकांक्षा

जब किसी वाक्य से संपूर्ण अर्थ व्यक्त होता है तो वह पूर्ण वाक्य कहलाएगा। वाक्य की परिभाषा के माध्यम से हम यह जान ही चुके हैं कि शब्दों के समूह से वाक्य का निर्माण होता है। राम रावण बाण मारा - ये सभी शब्द ही हैं। लेकिन इनसे कोई निश्चित अर्थ ध्वनित नहीं हो रहा है। सिर्फ शब्दों के प्रयोग से श्रोता की आकांक्षा पूरी नहीं होती। उनमें यह जानने की आकांक्षा बढ़ जाती है कि किसने क्या किया। अतः इन शब्दों के साथ संबंध तत्वों को जोड़ा जाएगा तो पूर्ण अर्थ ध्वनित होगा। उदाहरण के लिए राम रावण बाण मारा में संबंध तत्वों को जोड़ने से वाक्य बनेगा राम ने रावण को बाण से मारा। अब यह पूर्ण वाक्य है।

बोध प्रश्न

- आकांक्षा से क्या अभिप्राय है?

(ii) योग्यता

जब वाक्य में शब्दों की संगति सही रूप में बैठती है तो उसे योग्यता कह जाता है। कहते ने आशय है कि एक शब्द से साथ जब हम दूसरे शब्द का प्रयोग कर रहे हों तो यह देखना चाहिए कि दोनों का सही संगत है या नहीं। उदाहरण के लिए -

तर्क संगत वाक्य	अतार्किक वाक्य
(क) पानी से प्यास बुझती है।	प्यास से पानी बुझता है।
(ख) पानी से सींचना।	आग से सींचना।
(ग) तोता आसमान में उड़ रहा था।	गाय आसमान में उड़ रही थी।

प्रिय छात्रो! उपर्युक्त उदाहरणों को देखें - पहले उदाहरण में पानी और प्यास का संबंध है। पानी से ही प्यास बुझती है, न कि प्यास से पानी। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण देखें - सींचना पानी से संभव है, न कि आग से। तीसरे उदाहरण में प्रयुक्त शब्द उड़ना पक्षियों का लक्षण है। अतः इसे तोता, कबूतर, कोयल सभी पक्षियों पर लागू किया जा सकता है, न कि गाय या अन्य पशुओं पर। योग्यता से सहप्रयोग की संकल्पना जुड़ती है।

बोध प्रश्न

- वाक्य में योग्यता से क्या अभिप्राय है?
- योग्यता के आधार पर एक तर्कसंगत वाक्य बनाइए।
- योग्यता से कौन-सी संकल्पना जुड़ती है?

(iii) समीपता

शब्दों के कथन में समीपता होना अनिवार्य है। यदि आप एक शब्द (मोहन) पहले कहकर दूसरे शब्द (पानी) दस मिनट बाद कहेंगे और तीसरे शब्द (पी रहा है) कहने के लिए दस पंद्रह मिनट और लगाएँगे तो एक सार्थक वाक्य नहीं बन सकता। क्योंकि इन शब्दों में दूरी है। यह तो हुई मौखिक भाषा की बात। लिखित रूप में भी आप एक पृष्ठ पर 'मोहन', चौथे पृष्ठ पर 'पानी' तथा दसवें पृष्ठ पर 'पी रहा है' लिखेंगे तो इसे वाक्य नहीं कह सकते हैं। सभी अर्थपूर्ण शब्द होने के बावजूद इनमें समीपता नहीं है। इससे स्पष्ट है कि वाक्य बनाने के लिए सभी अर्थपूर्ण शब्दों को समीप रखना चाहिए।

बोध प्रश्न

- वाक्य निर्माण में 'समीपता' किस लिए आवश्यक है?

(iv) सार्थकता

सार्थकता का अर्थ है सुनिश्चित अर्थ। प्रसंग के अनुसार एक शब्द भी पूरा अर्थ व्यक्त कर सकता है और कई पदों का समुच्चय भी। उदाहरण के लिए एक वाक्य देखें - 'यह का पुस्तक है राम' - इसमें सभी शब्दों का एक अर्थ है लेकिन इसे वाक्य नहीं कह सकते हैं क्योंकि शब्द सही क्रम में न होने के करण अर्थ ध्वनित नहीं हो रहा है। इन शब्दों को सही क्रम में रखने से वाक्य का निर्माण होगा - यह राम का पुस्तक है या यह पुस्तक राम का है।

बोध प्रश्न

- वाक्य में सार्थकता का क्या अर्थ है?

(v) अन्विति

व्याकरण की दृष्टि से इसका अर्थ है शुद्धता। लिंग, वचन, कारक आदि के प्रयोग में त्रुटि नहीं होनी चाहिए। यदि लिंग, वचन, कारक, क्रिया आदि में अन्विति नहीं होगी तो अशुद्ध वाक्य बनते हैं। उदाहरण के लिए

अशुद्ध वाक्य	शुद्ध वाक्य
लड़के जा रहा है।	लड़के जा रहे हैं।
गाड़ी आ गया।	गाड़ी आ गई।
कक्षा में बीस बच्चा अवश्य होना चाहिए।	कक्षा में बीस बच्चे अवश्य होने चाहिए।
घर पर सब कुशल हैं।	घर में सब कुशल हैं।
यह पुस्तक राम का है।	यह पुस्तक राम की है।
कृष्ण के अनेकों नाम हैं।	कृष्ण के अनेक नाम हैं।
वह रोज गाने की कसरत करता है।	वह गाने का रोज रियाज/ अभ्यास करता है।

(vi) क्रमबद्धता

वाक्यों में क्रम होना अनिवार्य है। हिंदी भाषा की प्रकृति के अनुसार वाक्य निर्माण का क्रम है - कर्ता (s) कर्म (o) क्रिया (v)

उदाहरण के लिए नदी में नाव है। यदि क्रम को बदल दें तो बनेगा नाव में नदी है। अर्थ की दृष्टि से यह गलत वाक्य है। क्रम बदल देने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। अतः वाक्य निर्माण में क्रमबद्धता का ध्यान देना अनिवार्य है।

बोध प्रश्न

- शब्दों में अन्विति का लोप हो तो क्या हो सकता है?
- वाक्य में क्रमबद्धता क्यों आवश्यक है?

7.3.5 वाक्य : रचना पक्ष

प्रिय छात्रो! शब्दों की एक सुनिश्चित क्रम से वाक्य का निर्माण होता है। क्रिया, कर्म, लिंग, वचन आदि के आधार पर वाक्य रचना की जाती है। हर भाषा की प्रकृति भिन्न है। अतः व्याकरणिक अन्विति भी भिन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए 'जाना' क्रिया हिंदी में लिंग के अनुसार बदलती है - मोहन जाता है/ राधा जाती है। वस्तुतः रचना पक्ष के विविध आयाम होते हैं। आइए, विविध पक्षों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

(क) प्राथमिक पक्ष : उद्देश्य और विधेय

सामान्य रूप से कहें तो हर वाक्य के दो अंग होते हैं - उद्देश्य और विधेय।

उद्देश्य : वाक्य का वह अंग या अंश है (व्यक्ति या वस्तु) जिसके संबंध में वाक्य के शेष अंश में कुछ कहा गया हो। इसको सामान्य भाषा में हम 'कर्ता' (subject) कहते हैं, लेकिन व्याकरण में इसके लिए 'उद्देश्य' का प्रयोग किया जाता है।

विधेय : कर्ता के बारे में वाक्य के शेष अंश में जो सूचना देते हैं इसे सामान्य भाषा में 'क्रिया' कहते हैं और व्याकरण में विधेय (predicate)।

अतः उद्देश्य और विधेय वाक्य के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं। यह ध्यान देने की बात है कि विधेय में सिर्फ क्रिया शब्द ही नहीं, बल्कि कर्ता के संबंध में कही गई सारी बातें जो वाक्य के भीतर आती हैं सभी होते हैं। उदाहरण के लिए- राम परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। इस वाक्य में 'राम' उद्देश्य है और 'परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ' विधेय।

बोध प्रश्न

- उद्देश्य किसे कहते हैं?
- विधेय से क्या अभिप्राय है?

- उद्देश्य और विधेय को स्पष्ट करते हुए एक वाक्य का निर्माण करें।

(ख) शब्द, पद और पदबंध

छात्रो! आइए शब्द से वाक्य तक की यात्रा को देखेंगे। शब्द, पद और पदबंध पर विचार करेंगे।

शब्द

सामान्य रूप से वाक्य को परिभाषित करते समय यही कहा जाता है कि शब्दों के समूह से वाक्य बनता है। शब्दों को स्वतंत्र रूप में प्रयोग किया जा सकता है। कोश में शब्दों के मूल रूप को देखा जा सकता है। जैसे राम, आम, पत्थर, मारा अलग-अलग स्वतंत्र शब्द हैं। इन कोशगत शब्दों से वाक्य नहीं बनाया जा सकता। पहले भी कहा जा चुका है कि केवल शब्दों से वाक्य नहीं बनते। क्रिया शब्द से तथा अन्य शब्दों से व्याकरणिक संबंध जुड़ने से ही वाक्य बनता है। जब मूल शब्दों के साथ संबंध तत्व जुड़ जाते हैं तो वे पदों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

पद

जब मूल स्वतंत्र शब्दों में संबंध तत्व जुड़ जाते हैं तो उनका रूप परिवर्तित हो जाता है। संबंध तत्वों से युक्त शब्द पद कहलाते हैं। इन्हीं पदों से आगे वाक्य बनता है। अतः पद वाक्य का अंतरंग अवयव है। राम आम पत्थर और मारा शब्दों से वाक्य बनाना हो तो इन शब्दों के साथ संबंध तत्वों को जोड़ना अनिवार्य है। तब ये शब्द पद कहलाएँगे। जैसे राम ने आम को पत्थर से मारा। यहाँ 'ने', 'को' और 'से' संबंध तत्व हैं तथा राम, आम, पत्थर और मारा पद हैं।

पदबंध

वाक्य के छोटे खंड को पदबंध कहा जाता है। अंग्रेजी में phrase कहा जाता है। जब दो या अधिक पद एक निश्चित क्रम और अर्थ में किसी पद का कार्य करते हैं तो उन्हें पदबंध कहते हैं। अर्थात कई पदों के योग से बने वाक्यांश जो एक ही पद का काम करता हो। उदाहरण के लिए 'बहती चली जा रही है' पदबंध है। यह अर्थ तो दे रहा है लेकिन पूर्ण रूप से नहीं। इससे क्या बह रहा है यह स्पष्ट नहीं है। इसी पदबंध का विस्तार देते हुए 'नदी' शब्द का प्रयोग करने से वाक्य बनता है - 'नदी बहती चली जा रही है'। पदबंध अनेक प्रकार के हो सकते हैं। प्रमुख रूप से इसके दो प्रकार हैं - संज्ञा पदबंध और क्रिया पदबंध।

बोध प्रश्न

- शब्द, पद और पदबंध में अंतर स्पष्ट कीजिए।

(ग) वाक्य : प्रकार

रचना पक्ष के आधार पर वाक्यों को वर्गीकृत किया जा सकता है - सरल वाक्य, मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य।

सरल वाक्य : यदि वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय हो तो वह सरल वाक्य है। उदाहरण के लिए - राधा गाती है। मोहन पढ़ रहा है। गाय दूध देती है।

मिश्र वाक्य : यदि वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य तथा एक या अनेक आश्रित उपवाक्य हो तो वह मिश्र वाक्य कहलाता है। उदाहरण के लिए - उस लड़के को बुलाओ जिसने काले जूते पहने हैं। इस वाक्य में 'उस लड़के को बुलाओ' मुख्य उपवाक्य है, 'काले जूते पहने हैं' आश्रित उपवाक्य है तथा 'जिसने' योजक है।

संयुक्त वाक्य : जब एक ही वाक्य में दो से अधिक उपवाक्य हो और सभी प्रधान उपवाक्य हो तथा अव्ययों के द्वारा जुड़े हुए हो तो वह संयुक्त वाक्य कहलाता है। उदाहरण के लिए वह सुबह गया और शाम को लौट आया।

बोध प्रश्न

- सरल, मिश्र और संयुक्त वाक्य में निहित अंतर को स्पष्ट कीजिए।

इन भेदों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। जैसे निषेधात्मक, विधानात्मक, प्रश्नवाची, विस्मयबोधक, आज्ञासूचक, संदेहसूचक, इच्छासूचक।

निषेधात्मक : आज हम घूमने नहीं जाएँगे। वह काम नहीं होगा। (वह वाक्य जिससे कार्य न होने का भाव प्रकट होता है)

विधानात्मक : हिंदी हमारी मातृभाषा है। हिमालय भारत के उत्तर में स्थित है। (वह वाक्य जिससे किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है)

प्रश्नवाची : आपका नाम क्या है? आप कहाँ रहते हैं? यह काम किसने किया? (वह वाक्य जिसके द्वारा किसी प्रकार प्रश्न किया जाता है)

विस्मयबोधक : हे भगवान! यह क्या हो गया। अरे! तुम कब पहुँचे। (वह वाक्य जिससे किसी प्रकार की गहरी अनुभूति का प्रदर्शन किया जाता है)

आज्ञासूचक : यह काम तुझे करना ही पड़ेगा। कृपया खामोश बैठिए। (वह वाक्य जिसके द्वारा किसी प्रकार की आज्ञा दी जाती है या प्रार्थना की जाती है)

संदेहसूचक : आज बारिश हो सकती है। शायद पापा मान जाए। (वह वाक्य जिसमें होने की संभावना का अनुमान लगाया जाता है)

इच्छासूचक : भगवान तुम्हारा भला करें। सदा प्रसन्न रहो। (वह वाक्य जिसमें इच्छा प्रकट होती है)

बोध प्रश्न

- रचना के आधार पर सामान्य रूप से वाक्यों को कितने प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है?
- 'तुम्हारा कल्याण हो' - यह किस प्रकार का वाक्य है?
- 'जल्दी-जल्दी काम कर' - यह किस प्रकार का वाक्य है?

- टोपी वाला बाबू कहाँ गया? - इस वाक्य को मिश्र वाक्य के रूप में परिवर्तित करें।

7.3.6 वाक्य : अर्थ पक्ष

प्रिय छात्रो! अब तक हम रचना के आधार पर वाक्य का अध्ययन कर रहे थे। अब हम अर्थ पक्ष के आधार पर वाक्य का अध्ययन करेंगे। अर्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है। इससे सूक्ष्म विशेषताएँ प्रतिबिंबित होती हैं। वाक्य में जिस तरह शब्दों का चयन करेंगे उस पर अर्थ निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए -

(अ) निकल जाओ जल्दी से

(आ) निकल जाओ मेरे सामने से

वाक्य (अ) और वाक्य (आ) दोनों में क्रिया समान है - 'निकल जाओ'। वाक्य (अ) से यह अर्थ ध्वनित हो रहा है कि किसी को विकट परिस्थिति से बचाने के लिए उस जगह से जल्दी निकल जाने की सलाह दी जा रही है। वाक्य (आ) से यह अर्थ ध्वनित हो रहा है कि वक्ता गुस्से में है। वाक्य (अ) में किसी की भलाई निहित है। दूसरे वाक्य में क्रोध। अतः दोनों संदर्भ अलग-अलग हैं। ऐसे में हम सद्भावना वाले संदर्भ में 'जल्दी' के स्थान पर 'मेरे सामने से' का प्रयोग नहीं कर सकते हैं।

वाक्य (अ) में सद्भाव है। किसी व्यक्ति को बचाने की चेष्टा है तो ऐसे में 'जल्दी से' पर बल होता है। वाक्य (आ) में किसी को क्रोध से डाँटा जा रहा है तो बल 'निकल जाओ' पर होता है। बलाघात के करण अंतर पैदा हो जाता है।

बोध प्रश्न

- एक ही क्रिया पद प्रयोग करके दो भिन्न अर्थ वाले वाक्यों का निर्माण कीजिए।

(क) प्रयोग संदर्भ

प्रिय छात्रो! अब आप देखेंगे कि वाक्य में अर्थ किस तरह बदलते हैं। कहने का आशय है कि प्रयोग के अनुसार वाक्य का अर्थ ध्वनित होता है। यह प्रायः बलाघात के करण होता है। बलाघात वाक्य में अर्थ परिवर्तन का कारण बनता है। एक वाक्य को लेंगे -

(अ) पकड़ो मत जाने दो।

यह एक सरल वाक्य है। इसमें प्रयुक्त सभी शब्द सामान्य शब्द हैं जिनका अर्थ स्पष्ट हैं। अब हम कुछ शब्दों पर बल देकर देखेंगे कि क्या अर्थ निकलता है।

(i) पकड़ो मत जाने दो - इस वाक्य को देखिए। बल 'पकड़ो' शब्द पर है। अतः बोलते समय या पढ़ते समय हमें इस शब्द पर अतिरिक्त बल देना है। ऐसे में उसका अर्थ होगा - उस व्यक्ति को पकड़ना है, जाने नहीं देना है - पकड़ो, मत जाने दो।

(ii) पकड़ो मत जाने दो - इस वाक्य में बल 'पकड़ो मत' पर है। अतः इस वाक्य का अर्थ बदल गया है - उस व्यक्ति को पकड़ना नहीं। उसे जाने देने है - पकड़ो मत, जाने दो।

(आ) वह पत्थर तोड़ती है।

इस वाक्य को देखिए। अलग-अलग शब्दों पर बल देकर देखेंगे कि क्या होता है।

(i) वह पत्थर तोड़ती है। - यहाँ बल 'वह' शब्द पर है। वह ही पत्थर तोड़ रही है कोई और नहीं।

(ii) वह पत्थर तोड़ती है। - यहाँ बल 'पत्थर' पर है। वह सिर्फ और सिर पत्थर ही तोड़ती है कुछ और नहीं।

(iii) वह पत्थर तोड़ती है। - यहाँ बल 'तोड़ती है' पर है। वह पत्थर तोड़ती है, फेंकती नहीं है।

(इ) मैंने उसे देखा

(i) मैंने उसे देखा - मैंने ही देखा है, कोई और नहीं।

(ii) मैंने उसे देखा - मैंने उसे ही देखा है, किसी और को नहीं।

बोध प्रश्न

- वाक्य में बलाघात का प्रयोग करके अर्थ परिवर्तन के उदाहरण दीजिए।

7.3.7 वाक्य परिवर्तन : कारण

वाक्य भी परिवर्तनशील होते हैं। इस परिवर्तन के कई करण हो सकते हैं। यहाँ हम कुछ प्रमुख कारणों पर चर्चा करेंगे।

(अ) क्रम में परिवर्तन

कभी-कभी किसी भावना या प्रबल अनुभूति को व्यक्त करने के उद्देश्य से वाक्य की व्याकरणिक संरचना में परिवर्तन किया जाता है। उदाहरण के लिए -

'मैं वहाँ नहीं जाता' - सीधी वाक्य रचना है।

लेकिन इसमें निहित 'नहीं' शब्द का क्रम परिवर्तन करने से वाक्य बनता है -

मैं वहाँ जाता ही नहीं। (इसमें बल देकर कहा गया है कि वहाँ किसी भी हालत में जाता ही नहीं।)

काश! मैं वहाँ जाता ही नहीं। (इस वाक्य से गहन दुख की अभिव्यक्ति हो रही है।)

(आ) शैली में रोचकता लाने हेतु

'गरीब की व्यथा है' के स्थान पर 'व्यथा गरीब की' का प्रयोग

(इ) बल देने हेतु अनावश्यक पदों का प्रयोग

'कृपया कल आइएगा' - आइएगा शब्द अपने आप में आदर सूचक है अतः कृपया का जोड़ना अनावश्यक है। लेकिन यहाँ अतिरिक्त बल देने के उद्देश्य से 'कृपया' शब्द जोड़ा गया है। इसी प्रकार आपका भवदीय, कृपया करके, बावजूद भी, दरअसल में आदि।

(ई) संक्षिप्तता

इस प्रवृत्ति के कारण वाक्य में प्रत्यय और पदों का लोप हो जाता है। उदाहरण के लिए - 'जिसको मैंने देखा नहीं, जिसके बारे में मैंने सुना नहीं, फिर उसके बारे में आपसे क्या कहूँ?' इस वाक्य का रूप परिवर्तन देखें - 'देखा नहीं, सुना नहीं, फिर क्या कहूँ?'

(उ) अन्य भाषा का प्रभाव

अंग्रेजी के प्रभाव से वाक्य निर्माण - please come के तर्ज पर कृपया पधारिए।

इनके अतिरिकत अन्य कारणों से भी वाक्य परिवर्तित होते जा रहे हैं। तेरे को (तुझे), मेरे को (मुझे), कायकू (क्यों), अपुन का क्या (मेरा क्या), वह नहीं आरा (वह नहीं आ रहा है), जातूँ (जाता हूँ), आतूँ (आता हूँ), उसने कहा वह आएगा (उसने कहा कि वह आएगा) आदि।

बोध प्रश्न

- वाक्य परिवर्तन के दो कारण बताइए।

7.4: पाठ सार

छात्रो! इस प्रकार से वाक्य विज्ञान में वाक्य के अंगों, उपांगों, प्रकारों, परिवर्तनों आदि का गहन अध्ययन किया जाता है। हम सामान्य रूप से बातचीत के दौरान प्रश्न करते हैं, प्रश्नों के उत्तर देते हैं, स्थिति के अनुसार आशंका और आश्चर्य व्यक्त करते हैं, अपनी मानसिक स्थितियों को उजागर करते हैं। हम प्रायः वाक्यों में ही सोचते हैं और वाक्यों में ही अभिव्यक्त करते हैं। अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए हमें वाक्यों का समुच्चय चाहिए। क्रमबद्ध और तार्किक समुच्चय। और ये वाक्य आदि से लेकर अंत तक शब्दों और उनके संबंध तत्वों के योग से ही बनते हैं।

7.5: पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं –

1. संप्रेषण में मुख्य रूप से हम ध्वनि, शब्द, पद, उपवाक्य से होते हुए वाक्य तक पहुँचते हैं।
2. वाक्य भाषा की पूर्ण इकाई है। अर्थात यह भाषा की सबसे बड़ी इकाई है। इससे संप्रेषण पूर्ण होता है।
3. मनुष्य वाक्यों में ही सोचता है। आवश्यकता के अनुसार वाक्य के विभिन्न रूपों में अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है।

4. भाषा के शुद्ध और सुगठित वाक्य की रचना के लिए पद रचना का ज्ञान आवश्यक है।
5. व्यावहारिक स्तर पर वाक्य परिवर्तन आवश्यक है।

7.6: शब्द संपदा

1.	अन्विति	=	परस्पर संबद्धता
2.	अभिव्यक्ति	=	प्रकट करना/ व्यक्त करना
3.	अस्तित्व	=	होने का भाव
4.	घटक	=	संबंध स्थापित करने वाला तत्व
5.	समुच्चय	=	समूह

7.7: परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. वाक्य को परिभाषित करते हुए रचना के आधार पर हिंदी वाक्य रचना पर प्रकाश डालिए।

2. वाक्य के तत्वों पर उदाहरण सहित प्रकाश डालिए।

3. रचना पक्ष के आधार पर वाक्य के विभिन्न प्रकारों की सोदाहरण चर्चा कीजिए।

4. एक ही क्रिया वाले दो वाक्यों में बलाघात के कारण अर्थ में अंतर कैसे आ जाता है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।

1. वाक्य विज्ञान और पद विज्ञान का अंतर स्पष्ट कीजिए।

2. वाक्य किसे कहते हैं? विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

3. वाक्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

4. वाक्य में आकांक्षा और अन्विति पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

5. शब्द, पद और पदबंध क्या है? स्पष्ट कीजिए।

6. वाक्य परिवर्तन के प्रमुख कारणों को रेखांकित कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. अभिव्यक्ति के स्तर पर किसका स्वतंत्र अस्तित्व है? ( )

(अ) शब्द (आ) पद (इ) वाक्य (ई) पदबंध

2. जिस वाक्य में एक उद्देश्य तथा एक ही विधेय होता है, उसे क्या कहते हैं? ( )

(अ) एकल वाक्य (आ) सरल वाक्य (इ) मिश्र वाक्य (ई) संयुक्त वाक्य

3. वाक्य के गुणों में यह समाहित नहीं है। ( )

(अ) लयबद्धता (आ) सार्थकता (इ) क्रमबद्धता (ई) आकांक्षा

4. 'नाव में नदी है' - इस वाक्य में किस वाक्य-गुण का अभाव है? ( )

(अ) आकांक्षा (आ) क्रम (इ) योग्यता (ई) आसक्ति

5. इनमें में से कौन-सा विकल्प सरल वाक्य के अंतर्गत आएगा? ( )

(अ) उसने कहा कि वह नहीं आ सकता।

(आ) अमित ने वह घर खरीदा जो उसके चाचा का था।

(इ) जमीन जल रही थी और खोपड़ी चटकी जा रही थी।

(ई) मुझे काम से दिल्ली जाना था।

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. भाषा की सार्थक और सबसे बड़ी इकाई .... है।

2. योग्यता से .... की संकल्पना जुड़ती है।

3. वाक्य में एक शब्द पर ...... देने से अर्थ में परिवर्तन आ जाता है।

4. वाक्य प्रयोग में योग्यता से .... की संकल्पना जुड़ती है।

5. .... वाक्य का वह अंग या अंश है जिसके संबंध में वाक्य के शेष अंश में कुछ कहा गया हो

III. सुमेल कीजिए -

1. कठोर बनो परंतु सहृदय बनो।	(अ) संदेहवाचक
2. तुम्हारे बाहर जाते ही वह सो गया।	(आ) विस्मयवाचक
3. अपना-अपना काम कर।	(इ) संयुक्त वाक्य
4. कैसा सुंदर देश है!	(ई) मिश्र वाक्य
5. संभवतः वह आएगा।	(उ) आज्ञा वाचक

7.8 : पठनीय पुस्तकें

1. भाषाविज्ञान : भोलानाथ तिवारी

2. भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा : भोलानाथ तिवारी

3. भाषाविज्ञान की भूमिका : देवेंद्रनाथ शर्मा

4. Theory of Hindi Syntax - Descriptive, Generative and Transformational : Vladmir Miltner

इकाई 8 : अर्थ विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

8. 1. प्रस्तावना

8.2. उद्देश्य

8.3. मूल पाठ : अर्थ विज्ञान

8.3.1. अर्थ की अवधारणा

8.3.2 शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

8.3.3 अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ

8.3.3.1. अर्थ विस्तार

8.3.3.2. अर्थ संकोच

8.3.3.3 अर्थादेश

8.3.4 अर्थ - परिवर्तन के कारण

8.4. पाठ सार

8.5 पाठ की उपलब्धियाँ

8.6 शब्द संपदा

8.7 परीक्षार्थ प्रश्न

8.8 पठनीय पुस्तकें

8.1: प्रस्तावना

भाषा में अर्थ और भाव का सबसे अधिक महत्व होता है। अर्थ भाषा की आत्मा है। जिस शास्त्र के अंतर्गत अर्थ का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है उसे अर्थ-विज्ञान कहते हैं। प्रत्येक सार्थक शब्द एक अर्थ, भाव या विचार प्रकट करता है वही अर्थ उसका सार या प्राण है, और इस शब्द का सम्पूर्ण महत्त्व उस अर्थ पर आधारित रहता हैं। अर्थ- विज्ञान के अन्य नाम है -'शब्दार्थ विज्ञान', 'अर्थ विचार', तथा 'अर्थातिशय'। अंग्रेज़ी में इसे सेमसोलाजी (Semasialogy), सेमेन्टिक्स (Semantique) कहते हैं। विषय की दृष्टि से 'अर्थ विज्ञान' शब्द अधिक समीचीन लगता है। किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि) को किसी भी इन्द्रिय (प्रमुखतया कान, आँख) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीत होता है, वही अर्थ हैं।

8.2: उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप :

1. अर्थ विज्ञान (अर्थ विचार) से परिचित होंगे।

2. अर्थ-परिवर्तन की तीन दिशाओं - अर्थ विस्तार, अर्थ संकोच, अर्थादेश से परिचित होंगे।

3. अर्थ की परिभाषा व अर्थ की अवधारणा से परिचित होंगे।

4. अर्थ विज्ञान में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध से परिचित होंगे।

8.3: मूल पाठ : अर्थ विज्ञान

8.3.1 अर्थ की अवधारणा

भाषा में अर्थ और भाव का महत्त्व सर्वाधिक है। भर्तृहरि के अनुसार -"शब्द के उच्चारण से जिसकी प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है, अर्थ का कोई दूसरा लक्षण नहीं है। अर्थात् अर्थ केवल शब्द का ही होता है। अर्थ की प्रतीति दो प्रकार की होती हैं -(क) आत्म-अनुभव से,(ख) पर-अनुभव से।

(क) आत्म-अनुभव से : जहाँ स्वयं किसी वस्तु का अनुभव किया जाता है, जैसे- 'करेला कड़वा है' में कड़वा का अर्थ-प्रतीति तब हो सकती है जब करेला स्वयं चखा जाए। ऐसे ही पानी, धुप, सर्दी, गर्मी की अर्थ-प्रतीति भी अनुभव से हो सकती है।

(ख) पर-अनुभूति से : कई अर्थों की प्रतीति हमें दूसरों के अनुभव या ज्ञान के आधार पर हो सकती है। जैसे आत्मा, इश्वर, विष आदि अर्थ की प्रतीति का आधार आत्म अनुभव न होकर पर-अनुभव है। भारतीय परंपरा में अर्थ बोध के आठ साधन माने गए हैं- व्यवहार, कोश, व्याकरण,प्रकरण या सन्दर्भ, व्याख्या या विवृति, उपमान, आप्तवाक्य, ज्ञान का सान्निध्य। इनके अतिरिक्त बलाघात, सुरलहर व अनुवादों के माध्यम से अर्थ-सम्बन्धी विषयों पर विचार किया जाता है। भाषा विज्ञान की उस शाखा को अर्थ-विज्ञानं कहते हैं, जिसमें भाषा की आत्मा ; अर्थ का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

शब्द और वाक्य अर्थ की अभिव्यक्ति के ही उपादान हैं। मनुष्य अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा को अपनाता है। किसी भी शब्द का सार्थक अर्थ ही भाषा को औचित्य प्रदान करता है। इसके अभाव में भाषा का कोई महत्त्व नहीं। शब्द अर्थ अभिव्यक्ति का माध्यम है। दूसरे शब्दों में शब्द साधन हैं, तो अर्थ साध्य। अतएव शब्द शरीर है तो अर्थ आत्मा।

8.3.1.1. परिभाषा :

अर्थ की महत्ता के सम्बन्ध में भर्तृहरि ने महर्षियों के प्रमाण को स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है-"नित्याः शब्दार्थसम्बन्धः समाम्नाता महर्षिभिः। (वाक्यपदीय, ब्रह्मकांड -23)

अर्थात् महर्षियों ने शब्दार्थ-सम्बंदों को नित्य मन कहा है। अर्थ का लक्षण स्पष्ट करते हुए भर्तृहरि ने कहा है- "यस्मितूच्चारीते शब्दे यदा योऽर्थ: प्रतीयते। / तमाहुरर्थ तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्। |" अर्थात् जिस शब्द के उच्चारण से जिसकी प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है। अर्थ का कोई दूसरा लक्षण नहीं है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में अर्थ की परिभाषा इस प्रकार है -"किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि) को किसी भी इन्द्रिय (प्रमुखत:कान, आँख)से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है,वही अर्थ है।

पाश्चात्य विद्वान डॉ. शिलर के अनुसार-Meaning is essentially personal ...What anything means depends on who means it." अर्थात् "अर्थ अनिवार्यत: व्यक्तिगत होता है, क्योंकि किसी वास्तु का अर्थ उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जो उस वस्तु का अभिप्राय रखता है। " डॉ. रसाल ने सम्बन्ध विशेष को अर्थ की संज्ञा दी है।

एलफ्रेड सिजविक ने अर्थ को परिणामों पर आधारित बताया है और सत्य अर्थ पर आधारित बताया है। इस प्रकार उन्होंने परिणाम को ही अर्थ माना है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि भारतीय विद्वान प्रतीति को अर्थ मानते हैं, तो पश्चिंमी विद्वान सम्बन्ध को अर्थ के रूप में स्वीकार करते हैं।

बोध प्रश्न :

- अर्थ की प्रतीति के कितने भेद हैं ?
- मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए किसे अपनाता हैं ?

8.3.2 शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

भाषा में शब्द और अर्थ का प्रश्न अनादिकाल से उठता रहा है कि दोनों में क्या सम्बन्ध है? कुछ वैयाकरणों ने 'शब्द' को ब्रह्म मान कर अर्थ को उसका रूपांतर कहा है तो कुछ ने अर्थ को ही चरम तत्व मानकर शब्द को उसका स्कोर करने वाला माना है। भारतीय वैयाकरणों ने अर्थ की महत्ता स्वीकार करते हुए शब्द को कम गौरव नहीं दिया। वे तो 'शब्दब्रह्मोती कथ्यते' मानकर शब्द को ब्रह्म कहते हैं।

भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था हैं। इसका अर्थ यह है कि भाषा के शब्द प्रतीक हैं। समाज ने विभिन्न शब्दों को विभिन्न अर्थों में प्रतीक के रूप में स्वीकार कर लिया है। शब्द विशिष्ट अर्थों के संकेत या प्रतीक हैं, इसलिए उन शब्दों के प्रयोग से श्रोता उन्हीं अर्थों को

ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए समाज ने 'दिन' शब्द को द+इ+न ध्वनियों के समूह को 'दिन' समय या काल के लिए संकेत या प्रतीक मान रखा है, इसीलिए 'दिन' कहने से उसी का बोध होता है, किसी और चीज़ का नहीं। लेकिन यदि हिंदी भाषी समाज आगे यह निर्णय कर ले कि 'दिन' शब्द 'जमीन' का प्रतीक है तो फिर 'दिन' कहने से 'जमीन' का ही बोध होगा। बाथरुम, क्लास रुम टायलेट इत्यादि शब्दों के अर्थ इसी प्रकार मान लेने से परिवर्तित हो गए हैं|

शब्द और अर्थ के एक निश्चित सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय ने चार साधन बताए हैं-(1) उत्पत्तिवाद (2) अभिव्यक्तिवाद (3) ज्ञाप्तिवाद (4) प्रतीकवाद।

(1) उत्पत्तिवाद : जिसके अंतर्गत अर्थ से ही शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। "इस वाद के अनुसार अर्थ यदि उत्पादक है तो शब्द उत्पाद्य है। शब्द की उत्पत्ति अर्थ से मानने का यह मत बहुत प्राचीन है। "

(2) अभिव्यक्तिवाद : शब्द तथा अर्थ का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अभिव्यक्ति पर जोर दिया जाता है। जैसा शब्द सुना जायेगा, बुद्धि वैसा ही अर्थ ग्रहण करेगी। यथा -'गुलाब' कहने से गुलाब के फूल का बिम्ब मस्तिष्क ग्रहण कर लेता है।

(3) ज्ञाप्तिवाद : इसके अनुसार शब्द अर्थ की ज्ञाप्ति कराता है।

(4) प्रतीकवाद : इसके अंतर्गत शब्द तथा अर्थ का प्रतीकात्मक सम्बन्ध होता है।

बोध प्रश्न :

- शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
- अभिव्यक्तिवाद क्या हैं ? स्पष्ट कीजिए।

8.3.3 अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ

जगत् परिवर्तनशील है। यहाँ सभी पदार्थों में नित्य परिवर्तन होता रहता है। इसी कारण मानव में भी सदैव परिवर्तन होता रहता है। मानव वैसे भी मर्त्य है और मानव से सीधा सम्बन्ध भाषा का है। जब मानव एवं जगत् दोनों ही परिवर्तनशील हैं, तब भाषा और उनके अर्थ भी कैसे सदैव एक जैसे रह सकते हैं ? समयानुसार प्रायः एक ही शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता रहता है। जैसे, गमनशीलता के कारण सर्वप्रथम पृथ्वी को गो कहा गया, किन्तु यह गमनशीलता का गुण दिखाई दिया और वाणी को भी गो नाम दिया गया| इसी तरह अन्य गमनशील एवं गतिशील पदार्थों जैसे आदित्य, रश्मि आदि को भी गो कहा जाने लगा। इस प्रकार एक ही शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होने लगा। ऐसे ही कभी-कभी अनेक अर्थों वाला शब्द संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है। जैसे, मार्ग पर चलने वाले प्रत्येक प्राणी को अश्व नहीं कहा जाता, प्रत्येक जंगली पशु को मृग नहीं कहते, आकाश में चलने वाले सभी पदार्थों को खग नहीं कहते और सभी ज्ञान

एवं विद्या वेद नहीं कहलाते। इस प्रकार कभी-कभी शब्दों का संकोच भी हो जाता है। इतना ही नहीं बहुत से ऐसे भी शब्द मिलते हैं, जो पहले जिस अर्थ में प्रयुक्त होते थे, कालांतर में उनके अर्थ पूर्णतया परिवर्तित हो गए और वे अन्य अर्थों में प्रयुक्त होने लगे। जैसे, असुर शब्द पहले देववाचक था, किन्तु पीछे वह राक्षस या दैत्य का वाचक हो गया। इस प्रकार शब्दों के अर्थों में सतत परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन ही अर्थों का विकास कहलाता है और यह अर्थ-विकास कहीं अर्थ को विस्तार कर देता हैं, कहीं अर्थ का संकोच कर देता है और कहीं अर्थ को पूर्णतया बदल देता है। इसी कारण यास्क मुनि ने अर्थ-परिवर्तन की तीन दिशाएँ घोषित की हैं - अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच और अर्थादेश। ये ही तीन दिशाएँ पाश्चात्य विद्वान ब्रील (Breal) ने भी स्वीकार की हैं।

डॉ. श्यामसुन्दरदास ने अर्थ-परिवर्तन की 6 दशाओं की ओर संकेत किया हैं 1. अर्थापकर्ष 2. अर्थादेश 3. अर्थोत्कर्ष 4. अर्थ का मूर्तीकरण तथा अमूर्तीकरण 5. अर्थ-संकोच 6. अर्थ-विस्तार। परन्तु यहाँ ध्यान से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि अर्थापकर्ष, अर्थापदेश, अर्थोत्कर्ष और अर्थ का मूर्तीकरण तथा अमूर्तीकरण में प्राय: शब्द का मूल अर्थ पूर्णतया बदल जाता है और वह शब्द अन्य अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है। यह दूसरी बात है कि कभी वह अन्य अर्थ का द्योतक होता है, कभी उत्कर्ष का, कभी मूर्तीकरण हो जाता है और कभी अमूर्तीकरण, कभी किसी शब्द का अच्छा अर्थ बुरे अर्थ में परिवर्तित हो जाता है और कभी बुरा, अर्थ अच्छे अर्थ में। अतएव उक्त चारों प्रकार के अंतर्गत अर्थ-परिवर्तनों का सम्बन्ध एकमात्र अर्थादेश (Transference of meaning) से ही है। इस दृष्टि से यही ज्ञात होता है कि अर्थ-परिवर्तन उक्त तीन दिशाएँ होती है, जो अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच और अर्थादेश कहलाती हैं।

बोध प्रश्न :

- यास्क मुनि ने अर्थ-परिवर्तन की कितनी दिशाएँ घोषित की है? वे कौन-कौन सी हैं?
- कब किसी शब्द का अच्छा अर्थ बुरे अर्थ में परिवर्तित हो जाता है?

8.3.3.1. अर्थ विस्तार (Expansion of meaning)

जब शब्दों का अर्थ सीमित एवं संकुचित क्षेत्र से निकलकर अधिक विस्तृत एवं व्यापक हो जाता है, उसे अर्थ-विस्तार कहते हैं। जैसे,स्याही शब्द पहले केवल काले रंग की मसि के लिए प्रयुक्त होता था,परन्तु कालांतर में लिखने के लिए नीली, लाल,हरी,जमुनी आदि रंग की मसि का भी प्रयोग होने लगा, जिससे स्याही शब्द का अर्थ काली मसि न रहकर सभी रंगों की लिखने की मसि हो गया। इसी प्रकार आजकल नीली स्याही, हरी स्याही, जामुनी स्याही, नीली-काली

स्याही, सुनहरी स्याही आदि कही जाती हैं। तेल शब्द का पहले अर्थ था तील का सार, परन्तु कालांतर में सरसों, अलसी, अरंड, महुआ आदि के सार को भी तेल कहने लगे और अब तो मिट्टी का तेल कहा जाता है। इस तरह तेल शब्द सभी प्रकार के सार के लिए प्रयुक्त होने लगा है। इसी तरह गवेषणा शब्द का वास्तविक अर्थ है-गाय को ढूँढना या चाहना, परन्तु विज्ञान के विकास के साथ-साथ जब जगत् के विभिन्न पदार्थों की खोज आरम्भ हुई और शोध-कार्य की प्रवृत्ति बढ़ी, तब गवेषणा का अर्थ केवल गाय को ढूँढना न रहा, अपितु वह अब खोज या अन्वेषण का वाचक हो गया हा। ऐसे ही कुशल शब्द का अर्थ था, जो कुश उखाड़कर लाने में चतुर हो। वैसे भी कुश को जंगल से उखाड़कर लाना अत्यंत कठिन कार्य था और इस कार्य को सभी व्यक्ति नहीं कर सकते थे, क्योंकि थोड़ी-सी असावधानी में अंगुलियाँ लहुलुहान हो जाती थीं, परन्तु जो अपनी अंगुलिओं को थोड़ा सा भी क्षत-विक्षप्त नहीं होने देता था और कुशों को उखाड़ लेता था उसे ही कुशल कहा करते थे| पीछे चलकर यह शब्द चतुर एवं दक्ष का वाचक हो गया। इस तरह कुशल शब्द का अर्थ-विस्तार हो गया। इसी प्रकार द्रव्य शब्द का मूल अर्थ था द्रु अर्थात् लकड़ी से बना हुआ पदार्थ, परन्तु आगे चलकर इस द्रव्य शब्द के अर्थ में भी विस्तार हुआ और आजकल द्रव्य शब्द धन, आत्मा आदि गुणवान पदार्थो का वाचक हो गया है। इसी तरह अभ्यास शब्द का अर्थ पहले बार-बार बाण फेंकना था, किंतु अब प्रत्येक कार्य को बार-बार करने की प्रक्रिया को अभ्यास कहा जाता है। ऐसे ही प्रवीण शब्द का मूल अर्थ था वीणा बजाने में चतुर, परन्तु आजकल प्रत्येक कार्य में चतुर व्यक्ति को प्रवीण कहा जाता है। रुपया शब्द का मूल अर्थ था चाँदी का बना हुआ सिक्का, परन्तु अब रुपया शब्द धन-संपत्ति का वाचक हो गया है। ऐसे ही पुंगव, वृषभ और ऋषभ शब्द पहले मुख्यतया बैल के वाचक थे, किंतु अब श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता के वाचक हो गए हैं। जैसे नरपुंगव (नारों में श्रेष्ठ), भरतर्षभ (भरतों में श्रेष्ठ) आदि।

इतना ही नहीं, कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का भी अर्थ-विस्तार हो गया है। जैसे, गंगा केवल उत्तराखंड की नदी विशेष ही नहीं है, अपितु प्रत्येक पवित्र नदी को गंगा कहा जाता है| जयचंद्र पहले कन्नौज का रजा विशेष था, परन्तु आजकल प्रत्येक देशद्रोही को जयचन्द्र कहा जाता है। विभीषण पहले रावण का एक भाई मात्र था, परन्तु आजकल प्रत्येक घर के भेदिये को विभीषण नाम से संबोधित किया जाता है। नारद पहले एक तपस्वी मुनि थे, किंतु आजकल आपस में लड़ाई-झगड़ा करा देनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को नारद कहा जाता है। कालिदास संस्कृत के उच्चकोटि के कवि विशेष थे, आजकल किसी भी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवि को उस साहित्य का कालिदास कह दिया जाता है। ऐसे ही शेक्सपीयर अंग्रेज़ी के सर्वोत्कृष्ट नाटककार विशेष थे, किंतु

आजकल किसी भी भाषा के सर्वोत्कृष्ट नाटककार को उस भाषा का शेक्सपीयर कह दिया जाता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर बंगला भाषा के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार थे, परन्तु आजकल किसी भी भाषा के सर्वोत्कृष्ट साहित्यकार को उस भाषा का टैगोर कह दिया जाता है। हिटलर जर्मनी का क्रूर एवं नृशंस शासक था, परन्तु आजकल किसी भी क्रूर एवं नृशंस शासक को हिटलर कह दिया जाता है। ऐसे ही रावण, कंस, दुर्योधन, युधिष्ठिर आदि के नामों का भी अर्थ-विस्तार हो गया है।

बोध प्रश्न

- अर्थ-विस्तार किसे कहते हैं ?
- 'व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का भी अर्थ-विस्तार हो गया है। ' उदाहरण दीजिए।

8.3.3.2. अर्थ-संकोच (Contraction of meaning)

जहाँ बहुत से शब्दों का अर्थ कभी अधिक व्यापक एवं विस्तृत था, किंतु कालांतर में वे शब्द किसी एक संकुचित अर्थ में ही प्रयुक्त होने लगते हैं, वहाँ अर्थ-संकोच होता है। अर्थ-संकोच में प्रायः किसी शब्द का प्रयोग विस्तृत या व्यापक अर्थ से हटकर विशिष्ट या सिमित अर्थ में होने लगता है। जैसे मृग शब्द पहले सभी प्रकार के जंगली जानवरों के लिए आता था, परन्तु हिंदी में अब इसका अर्थ केवल हिरन रह गया है। गो शब्द पहले पृथ्वी, गाय, वाणी, बाण, आदित्य, रश्मि, इन्द्रियाँ आदि अनेक गमनशील पदार्थों के अर्थ में प्रयुक्त होता था, किंतु हिंदी में आजकल यह शब्द केवल गाय का ही वाचक रह गया है। ऐसे ही धान्य शब्द चावल का ही वाचक रह गया है। पर्वत शब्द पहले बादल, पहाड़ आदि कई अर्थों का वाचक था, किंतु अब इसका अर्थ केवल पहाड़ माना जाता है। वेद शब्द पहले सभी प्रकार के ज्ञान एवं विद्या का द्योतक था, किंतु अब हिंदी में केवल दूल्हा का वाचक है। खाद्य शब्द पहले सभी प्रकार के भोजन का वाचक था, किंतु इसी से बना हुआ खाद शब्द आजकल केवल उर्वरक का द्योतक हो गया है। ऐसे ही आदित्य शब्द पहले अदिति के सभी पुत्रों के अर्थ में प्रयुक्त होता था, किंतु हिंदी में अब इसका अर्थ केवल सूर्य रह गया है। दुहिता शब्द पहले दुहनेवाली कन्याओं के लिए प्रयुक्त होता था, किंतु अब हिंदी में इसका अर्थ केवल पुत्री हो गया है। ऐसे ही घृणा शब्द का पहले अर्थ था दया और नफ़रत, परन्तु अब हिंदी में इस शब्द का प्रयोग केवल नफ़रत के अर्थ में ही होता है। वेदना शब्द पहले दुःख और सुख दोनों के लिए प्रयुक्त होता था, जैसे दुःखद वेदना और सुखद वेदना। परन्तु अब हिंदी में वेदना शब्द केवल दुःख के लिए ही प्रयुक्त होता है। बास शब्द का प्रयोग पहले सभी प्रकार की अच्छी एवं बुरी गंध के लिए होता था, किंतु आजकल ब्रजभाषा में बास से केवल दुर्गन्ध का ही अर्थ लिया जाता है। फ़ारसी में मुर्ग शब्द पक्षी मात्र का वाचक है, किंतु हिंदी में

आकर इसका अर्थ एक पक्षी विशेष हो गया है, जो नित्य प्रात: बोला करता है और उसे मुर्गा कहते है।

यहाँ अर्थ-संकोच कई रूपों में मिलता है। कभी-कभी तो उपसर्ग के संयोग से अर्थ-संकोच हो जाता है। 'हृ' धातु में विविध प्रकार के उपसर्ग लगाकर उसके अर्थ को संकुचित कर देते है। जैसे- विहार, संहार, प्रहार, आहार, उपहार, निराहार आदि। ऐसे ही 'भू' धातु से उपसर्गों के योग से बने शब्द संकुचित अर्थ के द्योतक हो जाते हैं। जैसे- अनुभव, प्रभाव, अनुभव, संभव आदि। दूसरे समास से भी पर्याप्त अर्थ-संकोच हुआ करता है। जैसे दौड़-धुप, हरी-भरी, चीए-फाड़, साठ-गाँठ, जाँच-पड़ताल आदि। तीसरे विशेषण के संयोग से भी अर्थ-संकोच हो जाता है। जैसे, श्वेत पट, काला घोड़ा, नीली गाय आदि। चौथे प्रत्यय भी अर्थ-संकोच में सहायक हो जाते हैं। जैसे - बाग़ से बगीचा, घ से घरुआ, देग से देगची, कोठा से कोठरी, टीका से टिकली, लक्कड़ से लकड़ी, खाट से खटोला, पूजा से पूजापाठ, खेल से खिलाड़ी, टूक से टुकड़ा, सात से सातवाँ, नवाब से नवाबी आदि। पाँचवें शब्दों का अर्थ लोक-प्रसिद्धि के आधार पर संकुचित हो जाता है। जैसे रक्त, लोहित और शोण पर्यायवाची हैं, किंतु लाल अश्व को अश्व शोण ही कहा जाता है, उसे रक्त अश्व या लोहित अश्व नहीं कहा जाता। ऐसे ही गर्भिणी शब्द से ही हिंदी में गाभिन शब्द बना है, किंतु गाभिन शब्द का प्रयोग केवल गाय, भैंस आदि के ही लिए होते है, किसी भी नारी के लिए यह शब्द प्रयुक्त नहीं होता। नारी के लिए सदैव गर्भिणी शब्द ही प्रयुक्त होता है। छठे व्याकरण, वैद्यक, खनिज, शास्त्र आदि में प्रसंगानुसार परिवर्तित हो जाता है। मूल शब्द भी प्रसंगानुसार दर्शन,गणित, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, भाषाविज्ञान आदि में भिन्न-भिन्न अर्थ का वाचक होता है। योग शब्द भी दर्शन,गणित, व्यायाम आदि में प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न अर्थों का वाचक हो जाता है। सातवें, पारिभाषिक शब्दावली के रूप में प्रयुक्त बहुत से शब्दों में अर्थ-संकोच दृष्टिगत होता है जैसे, आगम शब्द-व्याकरण, भाषाविज्ञान, साहित्य आदि में पृथक-पृथक संकुचित अर्थ का द्योतक होता है। रस शब्द-वैद्यक, साहित्यशास्त्र आदि में भिन्न-भिन्न अर्थ का द्योतक रहता है। इसी तरह समीकरण शब्द- गणित एवं भाषाविज्ञान में ध्वनि शब्द-विज्ञान, भाषाविज्ञान, काव्यशास्त्र आदि में गुण, शब्द दर्शन, साहित्य एवं काव्यशास्त्र में विराम शब्द व्याकरण, साहित्य आदि में विशिष्ट अर्थ का द्योतक होता है। आठवें, नामकरण भी अर्थ-संकोच में सहायक होता है। जैसे, कृष्ण का अर्थ है काला, किंतु आजकल देवकीनंदन या वासुदेव को ही मुख्यतया कृष्ण कहा जाता है। ऐसे ही शत्रुघ्न का अर्थ शत्रुओं का विनाशक, किंतु आजकल शत्रुघ्न का अर्थ केवल दशरथ का पुत्र ही हो गया है। पार्थ का अर्थ है पृथा या कुंती का पुत्र, परन्तु

आजकल केवल अर्जुन को ही पार्थ कहा जाता है। नवें, विशेषीकरण भी अर्थ-संकोच में सहायक होता है। जैसे, निरुक्त का अर्थ है निर्वचन-शास्त्र, किंतु आजकल केवल यास्क मुनि रचित शास्त्र को ही निरुक्त कहते हैं। उपनिषद् का अर्थ है आत्मा का सामीप्य प्राप्त करना, किंतु आजकल कठ, केन, ईश आदि ग्रंथों को ही उपनिषद कहते हैं। वेद का अर्थ है ज्ञान, किंतु आजकल ऋक, यजुर्वेद, साम और अथर्व को ही वेद कहते हैं। संस्कार का अर्थ है शुद्धि, आजकल यह शब्द सोलह संस्कारों के अर्थ का ही वाचक हो गया है। दसवें, रूपक भी किसी शब्द के अर्थ-संकोच में सहायक होते है। जैसे, साँपिन (वह साँपिन है), गधा (जो समझाने पर भी नहीं मनाता), सिंह (पंजाब का सिंह अभी जीवित है), कमल (आज कमल न जाने क्यों मुरझा रहा है) आदि-आदि सभी शब्द क्रमशः द्रष्टा, मुर्ख, वीर, मुख आदि के संकुचित अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। इस तरह अर्थ-संकोच के विविध साधन होते हैं, जिनके आधार पर बहुत से शब्दों के अर्थ संकुचित हो जाते हैं।

बोध प्रश्न :

- अर्थ-संकोच के कितने साधन है? स्पष्ट कीजिए।
- रूपक भी किसी शब्द के अर्थ-संकोच में सहायक होते है। स्पष्ट कीजिए।

8.3.3.3. अर्थादेश (Transference of meaning)

अर्थ-विस्तार एवं अर्थ-संकोच के अंतर्गत अर्थ परिवर्तित तो होता है किंतु मूल अर्थ बराबर बना रहता है, जबकि अर्थादेश में किसी शब्द का मूल अर्थ पूर्णतया लुप्त हो जाता है। शब्द का अर्थ पूर्णतया लुप्त हो जाय और उसके स्थान पर कोई नया अर्थ प्रचलित हो जाये वहाँ अर्थादेश होता है। जैसे, असुर का पहले अर्थ था देव विशेष, किंतु कालांतर में असुर का देववाचक अर्थ पूर्णतया लुप्त हो गया और उसके स्थान पर आजकल राक्षस या दैत्य अर्थ प्रचलित हो गया है। ऐसे ही महाराज शब्द का अर्थ पहले महान राजा लिया जाता था किंतु आजकल इस शब्द का मूल अर्थ पूर्णतया लुप्त हो गया है और हिंदी में रसोइया को महाराज कहा जाता है। इस प्रकार अर्थान्तरण या अर्थादेश की प्रवृत्ति कितने ही शब्दों के अर्थों में विविध प्रकार से परिवर्तन प्रस्तुत किया करती है। सुविधा की दृष्टि से अर्थादेश को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित कर सकते हैं-(क) अर्थापकर्ष, (ख) अर्थोत्कर्ष, (ग) अर्थ का मूर्तीकरण, (घ) अर्थ का अमूर्तीकरण।

(क) अर्थापकर्ष –

जहाँ किसी शब्द का मूल अर्थ तो लुप्त हो जाए और कोई दूसरा ऐसा अर्थ प्रचलित हो जाए जो उसकी गिरावट का सूचक हो वही अर्थोपकर्ष होता है। जैसे- पुंगव शब्द का मूल अर्थ था श्रेष्ठ एवं अच्छा, किंतु कालांतर में इसका यह मूल अर्थ लुप्त हो गया और आजकल इसी से बने पोंगा शब्द का अर्थ मुर्ख हो गया। ऐसे ही देवनांप्रिय शब्द का मूल अर्थ था सम्राट अशोक, जो देवताओं

के प्रिय था, किंतु कालांतर में इस शब्द का मूल अर्थ लुप्त हो गया और इसका अर्थ मूर्ख हो गया। इसी तरह जुगुप्सा का मूल अर्थ था छिपाने की इच्छा, किंतु आजकल इसका अर्थ घृणा हो गया है। इसी भांति महाजन शब्द का मूल अर्थ था श्रेष्ठ व्यक्ति, किंतु कालांतर में इसका अर्थ सूदखोर या ब्याज खानेवाला हो गया। ऐसे ही खाद्य शब्द का मूल अर्थ भोजन था, किंतु कालांतर में इसी से बने खाद शब्द का अर्थ गिरकर अब गोबर, मैला आदि से निर्मित उर्वरक हो गया है। इसी तरह शौच का अर्थ था पवित्रता किंतु कालांतर में इसका अर्थ गिरकर पाखाने जाना हो गया है। ऐसे ही स्वर्गवास, पंचत्व-प्राप्ति, गंगालाभ, वैकुण्ठ लाभ आदि शब्द सभी अच्छे अर्थ के वाचक थे, किंतु आजकल से अशुभ एवं बुरे अर्थ के द्योतक हो गए हैं। क्योंकि ये सभी शब्द मृत्यु के वाचक हैं। 'राम-नाम-सत्य है' यह एक अत्यंत पवित्र एवं शुभ अर्थ का द्योतक था, किंतु जब से इस वाक्य का प्रयोग शव-यात्रा के समय किया जाने लगा है, तब से इसका मूलार्थ पूर्णतया लुप्त हो गया और अब यह अशुभ एवं अमंगल का वाचक हो गया है। इस प्रकार अनेक शब्दों के मूल अर्थ लुप्त हो जाते हैं और उसने स्थान पर अपकर्ष के द्योतक नये-नये अर्थ प्रचलित हो जाते हैं।

(ख) अर्थोत्कर्ष –

जहाँ कुछ शब्दों के अर्थों में गिरावट आ जाया करती है, वहाँ कुछ शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होने से उत्कृष्टता भी आ जाती है। अतएव जहाँ कुछ शब्दों के बुरे अर्थ का का लोप होकर नए प्रचलित अर्थ में उत्कृष्टता दिखाई देती है, वहाँ अर्थोत्कर्ष होता है। जैसे, मुग्ध शब्द का मूल अर्थ मूढ़ या मुर्ख, परन्तु आजकल हिंदी में इसका अर्थ मोहित होना हो गया है, जो अर्थोत्कर्ष का द्योतक है। ऐसे ही साहस शब्द पहले डकैती, हत्या, चोरी आदि करने के अर्थ में प्रयुक्त होता था किन्तु अब इसका अर्थ सराहनीय कार्य के लिए हिम्मत दिखाना हो गया है। ऐसे ही कर्पट शब्द पहले फटे-पुराने कपड़ों का वाचक था किंतु आजकल इसी शब्द से बना हुआ कपड़ा शब्द अच्छे अर्थ का द्योतक हो गया है। इसी तरह पदार्थ शब्द का पहले अर्थ सामान्य वस्तु था, किंतु आजकल इसका अर्थ स्वादिष्ट वस्तु, उत्तम वस्तु, श्रेष्ठ वस्तु हो गया है। ऐसे ही मुनि शब्द पहले उत्तेजित, उन्मत्तन्या क्रोधी का वाचक था किंतु धीरे-धीरे इस शब्द के अर्थ का उत्कर्ष हुआ और आजकल यह ज्ञानी एवं तपस्वी का वाचक हो गया है। इसी तरह पहले बंदी शब्द भी बुरे अर्थ का ही द्योतक था, क्योंकि प्रायः चोर, डकैत आदि बंदी होते थे, किंतु जब से स्वतंत्रता- प्रेमी जन भी बंदी बनने लगे, तब से बंदी शब्द का अर्थ भी अच्छा हो गया है। इसी प्रकार बंदीगृह कारागार या जेलखाना शब्द भी पहले बुरे अर्थ के ही द्योतक थे, परन्तु जब से स्वराष्ट्र -प्रेमी नेताजन इस बंदीगृह या कारागारों में राष्ट्र-हित के लिए जाने लगे हैं, तब से इनका अच्छा अर्थ

कृष्णमंदिर हो गया है| इसी प्रकार अनेक शब्दों के गिरे हुए अर्थ कालांतर में उत्कृष्टता एवं उच्चता को प्राप्त कर लेते हैं।

(ग) अर्थ का मूर्तीकरण-

पहले यदि किसी शब्द का अर्थ अमूर्त होता है किन्तु कालांतर में वह अमूर्त अर्थ लुप्त होकर उसके स्थान पर कोई मूर्त अर्थ प्रचलित हो जाता है, तो वहाँ अर्थ का मूर्तीकरण होता है। जैसे देवता शब्द पहले भाव-वाचक संज्ञा शब्द था, जो देवत्व का वाचक था किंतु अब इसका देवत्व वाचक अमूर्त अर्थ तो लुप्त हो गया है और हिंदी में यह देववाचक मूर्त अर्थ का द्योतक हो गया है। ऐसे ही जनता शब्द भी पहले भाववाचक संज्ञा था और मानवता का वाचक था परन्तु आजकल हिंदी ने यह जनसाधारण के मूर्त अर्थ का वाचक हो गया है। इसी प्रकार खटाई तथा मिठाई शब्द भी भाववाचक थे और खट्टापन और मिठास सम्बन्धी अमूर्त अर्थ के द्योतक थे परन्तु आजकल हिंदी में इनका मूल अर्थ लुप्त हो गया है और ये द्रव्यवाचक मूर्त अर्थ के द्योतक हो गए हैं। ऐसे ही संतति का मूल अर्थ था लगातार बढ़ते जाना, जो एक अमूर्त अर्थ का द्योतक था, परन्तु आजकल इसका मूर्त अर्थ संतान हो गया है। इसी प्रकार शयन (बिछौना), भवन (घर), वसन (कपड़ा), आदि बहुत से शब्द जो पहले अमूर्त अर्थ के द्योतक थे अब वे मूर्त अर्थ के वाचक हो गए हैं।

(घ) अर्थ का अमूर्तीकरण-

जिस प्रकार कुछ शब्द अपने अमूर्त अर्थ को छोड़कर मूर्त अर्थ ग्रहण कर लेते हैं, उसी प्रकार कुछ शब्द अपने मूर्त अर्थ को छोड़कर कालांतर में अमूर्त अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। मूर्त से अमूर्त होने की ये ही प्रक्रिया अर्थ का अमूर्तीकरण कहलाती है। जैसे, कपतल शब्द पहले मूर्त खोपड़ी का वाचक था किंतु अब यह शब्द भाग्य जैसे अमूर्त अर्थ का वाचक हो गया है। ऐसे ही ह्रदय शब्द पहले एक अंगविशेष के मूर्त अर्थ का वाचक था, किन्तु आजकल यह भावुकता का वाचक होकर अमूर्त अर्थ का द्योतक गया है। इसी प्रकार खट्टा या मिट्ठा शब्द पहले द्रव्यवाचक थे, किंतु आजकल गुणवाचक होकर ये शब्द अमूर्त अर्थ के द्योतक हो गए हैं। ऐसे ही बड़ी छाती, बड़ा कलेजा, विशाल ह्रदय आदि शब्द भी अब मूर्त अर्थों के वाचक न रहकर क्रमशः साहस, दृढ़ता, उदारता आदि अमूर्त अर्थों के द्योतक हो गए हैं।

बोध प्रश्न

- सुविधा की दृष्टि से अर्थादेश को कितने भागों में विभाजित कर सकते है?
- अर्थ का अमूर्तिकरण क्या है, समझाइए?

8. 3.4 अर्थ -परिवर्तन के कारण

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह प्रकृति एवं प्रकृति से परे समस्त तत्वों तथा मानव जीवन को भी प्रभावित करता है। मानव के मन विचार और उनकी क्रियाओं में भी परिवर्तन

होता है। भाषा विचारों की वाहिका है। अतः विचारों के साथ भाषा में भी परिवर्तन होता है। इसके कारण भाषा के प्रधान तत्व-शब्दों एवं अर्थों में परिवर्तन होता है। इन परिवर्तनों का कोई एक कारण नहीं होता अपितु अनेक कारण होते हैं, वे परस्पर संश्लिष्ट रहते हैं। अतः कह सकते हैं कि अर्थ-परिवर्तन के आतंरिक और बाह्य, मानसिक और भौतिक अनेक संश्लिष्ट कारण होते हैं जो समष्टि रूप से प्रभावित करते हैं, जिसकी चरम परिणति अर्थ विकास में दृष्टिगत होती है।

अर्थ परिवर्तन के कारणों में से कुछ निम्न हैं, जिनका उल्लेख डॉ. भोलानाथ तिवारी ने किया है -

1) मानव जीवन में रहन-सहन के परिवर्तन के साथ प्राचीन शब्दों के स्थान पर नवीन शब्दों का प्रयोग होने लगता है।

2) समाज के रीति-रिवाज और विभन्न कर्मों के लोप तथा प्रयोग के अनेक शब्द लुप्त हो जाते हैं।

3) अश्लीलता के कारण अनेक शब्द समाज से अलग हो जाते हैं।

4) ध्वनि और अर्थ की दृष्टि से भी शब्द नष्ट होते हैं।

अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारण निम्न हैं -

(1) पीढ़ी - मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह जिस समाज में रहता है, उसी के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है। किसी भी समाज की एक पीढ़ी में कोई शब्द पहले जिस अर्थ में प्रयुक्त होता रहता है, वह सदैव उसी अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता, अपितु पीढ़ी के परिवर्तित होते ही जहाँ अन्य बहुत से परिवर्तन होते हैं, वहाँ भाषा के शब्दों एवं उनके अर्थों में भी परिवर्तन होने लगता है। जैसे, आरम्भ में लोग ताड़-पत्र पर लिखा करते थे। उस समय पत्र शब्द का अर्थ केवल पत्ता ही था किंतु कालांतर में पीढ़ी बदली और कागज़ का आविष्कार हो गया, तब लोग पत्ते के स्थान पर कागज़ पर लिखने लगे और वह कागज़ ही पत्र हो गया, क्योंकि जिस पर लिखा जाए वही पत्र माना जाने लगा। धीरे-धीरे पत्ते की तरह पतली, चपटी एवं मुलायम सभी वस्तुएँ पत्र मानी जाने लगीं। इतना ही नहीं, इसी गुण के आधार पर हर एक पतला पदार्थ पतरा या पातर अथवा पतला कहलाने लगा। तदन्तर युग बदला। लिखने के स्थान पर छपाई का कार्य आरम्भ हो गया और फिर जिस पर कुछ छपकर पढ़ने के लिए आया, वे सभी पदार्थ पत्र वाचक हो गए। इसीलिए आजकल समाचार पत्र को भी एक प्रकार का पत्र कहा जाता है। इस प्रकार एक पत्र शब्द पीढ़ी- परिवर्तन के साथ-साथ अपने मूल्य अर्थ पत्ते से चलकर चिट्ठी, पातर,पत्तर, समाचार का कागज आदि परिवर्तित अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

(2) परिवेश - बहुत से शब्दों के अर्थ परिवेश के परिवर्तन के कारण बदल जाते हैं। परिवेश के अंतर्गत भौगोलिक परिवेश, सामाजिक परिवेश एवं भौतिक परिवेश आते हैं, जो प्रायः अनेकानेक अर्थों में परिवर्तन प्रस्तुत किया करते हैं। जैसे

पहले, भौगोलिक परिवेश के कारण ही ठाकुर शब्द उत्तर प्रदेश में प्रदेश में क्षत्रिय का, बिहार में नाई का और बंगला में रसोइये का वाचक हो गया है। ऐसे ही ऋग्वेद में उष्ट्र शब्द भैंस के अर्थ का वाचक हैं परंतु बाद में भौगोलिक परिवेश के कारण यह जान पडता है कि जब तक आर्य लोग शीत प्रदेश में रहते थे, तब तक तो वे उष्ट्र का प्रयोग भैंस के लिए ही करते रहे किंतु जब वे उष्ण प्रदेश में आये और उन्हें ऊँट मिला, तो वे इसे उष्ट्र कहकर पुकारने लगे। ऐसे ही कार्न (corn) शब्द एकमात्र भौगोलिक परिवेश के कारण ही अंग्रेज़ी में गेंहूँ का, स्कॉच में बाजरे का और अमरीका में मक्का का वाचक हो गया है।

दूसरे, सामाजिक परिवेश के कारण भी अनेक शब्दों के अर्थ परिवर्तित हो जाते है। जैसे, पाठशाला, मदरसा, स्कूल, कालिज आदि शब्द पर्यायवाची हैं किंतु सामाजिक परिवेश के कारण पाठशाला का अर्थ संस्कृत का शिक्षालय, मदरसा का अर्थ उर्दू-फ़ारसी का शिक्षालय, स्कूल का अर्थ अंग्रेज़ी का शिक्षालय, और कॉलेज का अर्थ अंग्रेज़ी का शिक्षालय हो जाता है। ऐसे ही डॉक्टर, वैद्य, हकिम और कविराज शब्द भी एकार्थावाचक हैं किंतु सामाजिक परिवेश के कारण इनका अर्थ पृथक्-पृथक् हो जाता है और इन शब्दों से भिन्न- भिन्न चिकित्सकों का बोध होता है। ऐसे ही अंग्रेज़ी का सिस्टर शब्द है, जिसका अर्थ घर में बहिन होता है और अस्पताल में नर्स होता है। ऐसे ही बहिनजी और दीदी का अर्थ परिवार में बड़ी बहिन और स्कूल में अध्यापिका होता है। यही बात बाबूजी के बारे में दिखाई देती है, क्योंकि घर में इसका अर्थ पिताजी और दफ्तर में इसका अर्थ लिपिक हो जाता है।

तीसरे, भौतिक परिवेश के कारण भी अनेक शब्दों के अर्थ परिवर्तित हो जाते है। जैसे, शीशा शब्द एक ओर तो दर्पण के अर्थ में प्रयुक्त होता है, दूसरी ओर एक प्रकार की धातु के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है, जिससे छापे के अक्षर बनाते हैं और तीसरे काँच के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसी तरह गिलास शब्द का अंग्रेज़ी में अर्थ है काँच हिंदी में काँसा, चाँदी, पीतल, काँच, स्टेनलैस स्टील,प्लास्टिक आदि के बने हुए पात्र को भी गिलास कहते हैं। ऐसे ही भौतिक परिवेश के कारण लेखनी के लिए प्रयुक्त फाउन्टेन पैन, कलम, बालपेन आदि शब्द एकार्थवाचक होते हुए भी भिन्न-भिन्न अर्थ के द्योतक होते हैं। यही बात शरीर धारण किए जानेवाले वस्त्रों में दिखाई देती है, क्योंकि पहले तो सभी को अंगरखा कहा जाता था किंतु आजकल कमीज, कोट, कुर्ता,

बुशर्ट, पैंट, पैजामा, नैकर, बनियान, जाँघिया आदि शब्द एकार्थकवाची होते हुए भी केवल भौतिक परिवेश के कारण भिन्न-भिन्न अर्थों के द्योतक हो गये हैं।

(3) नम्रता- प्रदर्शन - बहुत से शब्दों का अर्थ शिष्टाचारवश नम्रता- प्रदर्शन के कारण परिवर्तित हो जाता है। जैसे, बहुत से लोग नम्रता के कारण ही अत्यंत संपन्न एवं धनाढ्य होते हुए भी अपने घर को गरीब-खाना और दूसरे दीन-हीन एवं गरीब व्यक्ति के घर को दौलतखाना कहा करते हैं। ऐसे ही नम्रता-प्रदर्शन के कारण ही बहुत से कंजूस व्यक्तियों को अन्नदाता, अधर्मी एवं पापी व्यक्तियों को भी धर्मावतार, कभी शरण न देनेवाले व्यक्तियों को भी जहाँपनाह, एक गज भर पृथ्वी का स्वामी न होने पर भी पृथ्वीनाथ, कभी दया न करनेवाले को भी दयानिधान, कभी किसी पर करुणा न दिखाने वाले को भी करुणासागर आदि कहा करते है| ऐसे ही शिष्टाचारवश कैसे स्मरण किया ?, किधर से रास्ता भूल पड़े ? आदि, नम्रता-प्रदर्शनकारी वाक्य ही अर्थ-परिवर्तन का कार्य करते हैं। ऐसे ही गुरूदेव, रघुवर, महोदय, महाशय, मान्यवर आदि शब्दों के प्रयोग भी नम्रता-प्रदर्शन के कारण ही किये जाते हैं, क्योंकि जिनके लिए ये शब्द प्रयुक्त होते हैं उनमें वे गुण वास्तव में नहीं होते।

(4) भावावेश - अनेक शब्दों में अर्थ भावावेश के कारण भी परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे, कभी-कभी माता-पिता नाराज होकर अपने बेटे को योग्य होते हुए भी नालायक, सीधा होने पर भी शैतान, समझदार होने पर भी बेहुदा, सभी होने पर भी बदतमीज, अच्छा होने पर भी पाजी, भला होने पर भी बदमाश आदि कहा करते हैं। ऐसे ही कॉलेजों में प्रायः विद्यार्थी आपस में एक-दूसरे को साले, बेटे, बच्चू आदि कहा करते हैं, जबकि उनमें से कोई भी न तो साला होता है, न बेटा होता है न छोटा-सा बच्चा होता है| ऐसे ही गाली देते समय सूअर, गधा आदि शब्दों का प्रयोग भी भावावेश का द्योतक होता है। कभी-कभी प्रेम के कारण भी बहुत से व्यक्ति आपस में एक-दूसरे को चचा, ताऊ, बाबा, बिया, बापू, दादा आदि कहकर पुकारा करते हैं। इन सभी शब्दों का अर्थ पारिवारिक संबंधी न होकर केवल संबोधन मात्र होता है, जो भावावेश के कारण अर्थ-परिवर्तन की ओर संकेत किया करते हैं।

(5) लाक्षणिकता एवं आलंकारिकता - बहुत से शब्दों का अर्थ लाक्षणिक एवं आलंकारिक प्रयोगों के कारण कुछ का कुछ हो जाता है। जैसे, किसी दुष्टा स्त्री को साँपिन कहना, अविवेक व्यक्ति को काठ का उल्लू कहना, नासमझ को गधा कहना, सीधे-साधे व्यक्ति को गऊ कहना, चालाक व्यक्ति को कौआ कहना, खतरनाक को काला नाग कहना, अधिक खुशामदी को चमचा कहाँ, मुर्ख एवं गंदे को सूअर कहना, बुद्धिमान को बैल कहना,अधिक लालची को कुत्ता कहना,

विद्वान को बृहस्पति कहना, सुन्दर को चन्द्रमा कहना आदि लाक्षणिक एवं आलंकारिक प्रयोग हैं, जिनमें स्पष्ट अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। ऐसे ही आरे के दाँत, घड़े का मुह, सुराहीदार गर्दन, नाव का पेट, नारियल की आँख, कुत्ते की पूंछ, ऊँट की टांग, सारंगी के कान, पत्थर का दिल, वज्र की छाती,बिल्ली के पाँव, भैंस का चोथ, सुई का मुँह आदि अलंकारिक प्रयोग भी अर्थ-परिवर्तन में सहायक होते हैं। ऐसे ही गहरी बात, सजीव चित्रण, मीठा बोल, रूखी हँसी, नीरस काव्य, सरस बात, कटु अनुभव, मधुर संगीत आदि प्रयोगों में भी लाक्षणिकता एवं आलंकारिकता के कारण अर्थ-परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

(6) व्यंग्य- बहुत से शब्दों के अर्थ-परवर्तन में व्यंग्य का अत्यधिक हाथ रहता है। व्यंग्य में उच्चरित शब्द केवल दूसरों पर आक्षेप ही नहीं करते, अपितु उस व्यक्ति के मर्म पर प्रहार भी करते हैं, जिनके लिए उनका उच्चारण किया जाता है। ये व्यंगपूर्ण शब्द प्रायः विपरीत अर्थ द्योतक होते हैं। जैसे, यदि अंधे को नैनसुख, कंजूस को दानवीर कर्ण, कुरूप को कामदेव, अत्याचारी को भगवान राम का अवतार, अधर्मी को साक्षात युधिष्ठिर या धर्मावतार, बुद्धिजीवि को बृहस्पति आदि कहें तो यहाँ सर्वत्र अर्थ-परिवर्तन के दर्शन होंगे। ऐसे ही यदि किसी देर से आनेवाले छात्र से अध्यापक बहुत जल्दी आये कहते है या किसी शरारती छात्र को वह बहुत सीधा लड़का है कहते है अथवा किसी चोर छात्र को वह बड़ा ईमानदार लड़का है आदि कहते है तो यहाँ भी व्यंग्य द्वारा अर्थ-परिवर्तन होता है।

(7) बल का अपसरण - बहुत से शब्दों का अर्थ इसलिए परिवर्तित हो जाता है कि उस शब्द का जो अर्थ निकालता था, उस प्रधान अर्थ से ध्यान हटकर कुछ दिनों में उससे मिलता-जुलता दूसरा गौण अर्थ प्रचलित हो जाता है और धीरे-धीरे लोग पुराने प्रधान अर्थ को भूल जाते हैं। इस प्रकार प्रधान अर्थ से हटकर गौण अर्थ पर बल प्रदान करने के कारण अनेक शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है, इसी को बल का अपसरण कहते है। जैसे, गोस्वामी शब्द का मूल अर्थ बहुत सी गयों का मालिक था और भारत में पहले गाय को श्रेष्ठ धन माना जाता था| अतः गोस्वामी किसी धनी-मानी एवं ऐश्वर्य- संपन्न धार्मिक व्यक्ति को ही कहा जाता था। कालांतर में मूल अर्थ तो लुप्त हो गया और गोस्वामी का दूसरा गौण अर्थ धनी-मानी एवं ऐश्वर्य-संपन्न अथवा माननीय धार्मिक व्यक्ति ही हो गया। ऐसे ही अंग्रेज़ी के कॉपी शब्द का मूल अर्थ था प्रतिलिपि| परन्तु प्रतिलिपि या नक़ल किसी न किसी कागज या कागजों की बनी कोरी पुस्तिका पर की जाती थी। कालांतर में कॉपी का पहला अर्थ तो लुप्त हो गया और दूसरे अर्थ पर ही अधिक बल दिया गया।

(8) सादृश्य - कुछ शब्दों के अर्थ सदृश्य के कारण भी बदल जाते हैं। जैसे, बहुत से लोग टिकट को टिक्क्स बोलते हैं और कुछ लोग टैक्स को टिक्क्स कहते हैं। इस तरह दोनों ही शब्द सादृश्य के आधार पर बन गए हैं और एक से होकर अलग-अलग अर्थ न देकर प्रायः टिकट के अर्थ में ही आते हैं ऐसे ही बहुत से लोग लाइब्रेरी को रायबरेली बोलते हैं और उनके लिए रायबरेली का अर्थ आज एक नगर विशेष न होकर पुस्तकालय ही होता है। ऐसे ही मद्रास में एक पुल का नाम पहले हैमल्टन ब्रिज रखा गया था, परन्तु सादृश्य के आधार पर वहाँ के लोग उसे अम्बट्टन ब्रिज कहने लगे और तमिल में अम्बट्टन का अर्थ होता हैं नाई। अतएव आजकल उसका नाम ही बारबर्स ब्रिज (नाइयों क पुल) हो गया है। ऐसे ही एक नगर में सैन्ड्रस्ट रोड थी। कुछ लोग शुद्ध उच्चारण न करने के कारण उसे संडास रोड कहने लगे और आज यही नाम अधिक प्रचलित है। इस प्रकार सादृश्य के कारण भी बहुत से शब्दों में अर्थ परिवर्तित हो जाते हैं।

(9) पुनरावृत्ति - कुछ शदों के अर्थ पुनरावृत्ति के कारण भी बदल जाते हैं। जैसे विंध्याचलका अर्थ है विंध्यपर्वत, किंतु आजकल विंध्याचल पर्वत कहने का रिवाज चल पड़ा है, जिसमें अचल और पर्वत में शब्द और अर्थ की पुनरावृत्ति हो रही है। यहाँ विंध्याचल उसके मूल नाम का द्योतक माना जाता है और पर्वत शब्द लगाकर उसक पूरा उच्चारण किया जाता है। ऐसे ही हिमगिरी पहाड़ तथा नीलगिरी हिल्स में भी पुनरावृत्ति ही अर्थ-परिवर्तन का कारण बन गई है। इसी प्रकार डबलरोटी को कुछ लोग पावरोटी कहते हैं, जबकि पाँव शब्द पुर्तगाली का है और इसका अर्थ रोटी होता है। यही बात गुलरोगन का तेल, गाँधी कैप टोपी, सनलाइट सोप साबुन, सज्जन व्यक्ति, दरहकीकत में आदि प्रयोगों में देखी जाती है, जहाँ पुनरावृत्ति के कारण ही अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

(10) विनम्रता प्रदर्शन -विनम्रता सामाजिक शिष्टाचार है। उसका प्रदर्शन भाषा में सर्वप्रथम होता है। जब हम किसी अफसर का घर पूछते हैं तो कहते हैं, सरकार का दौलतखाना कहाँ है तथा अपने घर का पता देते हैं, तो कहते हैं, कि खाकसार का गरीबखाना फलाँ जगह है| इसी तरह राजाओं के लिए अन्नदाता, दयानिधान, आलमपनाह, जहाँपनाह आदि शब्द प्रयोग मंृ ले जाते हैं। किसी से आने का कारण पूछने के लिए कहा जाता है कि कैसे कृपा की। इन सबसे स्पष्ट है कि शब्दों का अर्थ विनम्रता प्रदर्शन से भी परिवर्तित हो जाया करता हैं।

(11) सुश्रव्यता - प्रायः अशुभ सूचक बातों को गोल मोल शब्दों में प्रकट की जाती हैं| जैसे वैधव्य को चूड़ी फूटना कहते हैं। मर जाने को स्वर्गवास होना या पंचत्व को प्राप्त होना कहते हैं। गर्मी में जो बाल मुण्डाने होते हैं, उन्हें बाल बनवाना कहते हैं। उर्दू बोलने वाले सभ्य समाज में वह बीमार है न कहकर उनके दुश्मनों की तबीयत नासाज है, कहा जाता है, क्योंकि यह कहा भी नहीं जो सकता कि बीमारी जैसे अशुभ चीज उनके पास फटकी है। लाश को मिट्टी दैनिक

क्रिया विशेष के लिए दिशा, जंगल को इंग्लैंड आदि, सांप के लिए कीड़ा, रस्सी इत्यादि उक्तियों में भी अशुभ, लज्जाजनक या घृणास्पद बातों को घुमा फिर कर प्रकट करने की मनोवृत्ति है। स्त्रियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है क्योंकि उनके मुहँ से अशुभ बात बहुधा नहीं निकलती। लज्जाशील भारतीय ललना ही नहीं विदेशी ललना भी अपने पति का नाम नहीं लेती। गर्भिणी को प्रत्यक्षतया ऐसे न कहकर 'पाँव भारी हैं' कहाँ जाता है|

(12) भावात्मक बल - भावात्मक बल देने से भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। जैसे -राम-राम। इस वाक्य में राम-राम, धिक्कार का वाचक है।

(13) सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग - यह वस्तुतः अर्थ विस्तार का ही एक रूप है। कभी-कभी पूरे वर्ग के लिए एक वस्तु का प्रयोग किया जाता है। जैसे स्याही शब्द स्याह (काला) से बना है परन्तु उसका प्रयोग केवल काली रोशनाई के लिए नहीं होता, किसी भी रंग की रोशनाई, स्याही कहलाती है।

(14) अज्ञान अथवा भ्रान्ति - अज्ञानतावश गलत अर्थ में प्रयोग करने से भी शब्दों का अर्थ बदल जाता है। लोक भाषा में ऐसे उदाहारण बहुत मिलते हैं जो जैसे भोजपुरी के कलंक के लिए अकलंक, फजूल के लिए बेफजूल, गुजरती में जरूरत के लिए जरुर।

(15) शब्दार्थ की अंतर्निहित अनिश्चितता - किसी भाषा में बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जिनके अर्थ सुनिश्चित नहीं होते। अमूर्त भावों के वाचक शब्द प्रायः इसी कोटि में आते हैं। जैसे अनुकंपा, कृपा और दया में भेद कर पाना बहुत कठिन है।

(16) व्यक्ति के अनुसार शब्दों के प्रत्यय (concept) में भेद -डॉ देवेन्द्र नाथ शर्मा के अनुसार व्यक्तिगत संस्कार, परिवेश, शिक्षा, जीवन प्रणाली आदि के भेद से शब्दों के प्रत्यय मन में उत्पन्न होते है, वह भी भिन्न होता है। धर्म शब्द हिन्दू,मुसलमान और ईसाई के हृदय में विभिन्न भावनाएँ उत्पन्न करता है। अधर्म आदि की भी यही स्थिति है।

(17) शब्दार्थ के तत्व की प्रमुखता - कभी-कभी शब्द के अर्थ को पूरे ध्यान में न रखकर उसके किसी एक तत्व को ही प्रधानता देकर प्रयोग चल पड़ता है, जैसे पुलिस के लिए लाल पगड़ी।

(18) साहचर्य के कारण गौण अर्थ की प्रमुखता -वस्तुतः इसमें अर्थादेश होता है। उदहारणके लिए सिन्धु का अर्थ नदी या समुद्र था। आर्यों ने पंजाब की नदी विशेष को सिन्धु कहा। कालांतर में नदी के आस-पास की भूमि भी सिन्धु कही जाने लगी।

(19) ध्वनि विशेष - इस पर बल देने के कारण भी अर्थ ने परिवर्तन हो जाता है, क्योंकि बलहीन ध्वनियाँ इस स्थिति में स्वत: नष्ट हो जाती हैं। फलस्वरूप अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता

है। उदाहरण के लिए वेड में अरि शब्द शत्रु, घर, ईश्वर और धार्मिक अर्थ का परिचायक था। किंतु आज अरि शब्द केवल शत्रु का वाचक है।

(20) अनुकरण की अपूर्णता - मनुष्य अनुकरण प्रिय व्यक्ति है। किंतु अनुकरण सदा पूर्ण नहीं होता है, अर्थ में क्रमशः अंतर आ जाता जय। उदहारण के लिए पत्र शब्द पुस्तक के पृष्ठ, Letter आदि के लिए प्रयुक्त होता है| किंतु प्राचीन काल में लेखक कार्य पत्र पर होता था।

(21) अन्य भाषा के शब्द - दूसरी भाषा से शब्द जब प्रयोग में ले लिए जाते हैं तो उनका अर्थ कभी-कभी बदल जाता है। उदहारण के लिए मुर्ग फारसी में पक्षी मात्र के लिए किया जाता था। किंतु हिंदी में एक पक्षी विशेष के अर्थ का सूचक है।

(22) एक भाषा -भाषी लोगों के प्रवास के कारण भी अर्थ का विकास होता है जैसे संस्कृत का वाटिका शब्द उद्यान अर्थ का सूचक है किंतु बंगला में इस शब्द का अर्थ है घर।

(23) मनुष्य की सीमाएँ सीमित हैं अतः वह परिचित चीजों के आधार पर ही नयी-चीजों के नाम रखता है। अतः वस्तुओं के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए वेदों में सोम का विस्तार से वर्णन हैं किंतु वह अप्राप्य था। अतः एक तृण विशेष-पूतीकर्तृर को ही सोम कहा जाने लगा।

(24) एक शब्द के भिन्न रूपों का विभिन्न अर्थों में प्रयोग - ऐसा बहुत बार देखा जाता है कि किसी शब्द के तत्सम और तद्भव रूपों में अर्थ की दृष्टि से भेद होता है। जैसे - खाद्य-खाद, भद्र-भद्दा, श्रेष्ठ-सेठ इत्यादि। एक शब्द के अनेक तद्भव रूपों में भी अर्थ भेद की वृत्ति पाई जाती है। उदहारण पत्र शब्द से पत्ता,पत्ती, पत्तर, पत्तल इत्यादि।

(25) एक वर्ग के एक शब्द में परिवर्तन होने पर उस वर्ग के अन्य शब्दों के भी अर्थ परिवर्तित हो जाते हैं। उदहारण के लिए दुहिता शब्द लिया जा सकता है। इस शब्द का अर्थ है- गाय दुहने वाली। प्राचीन काल में दूध दुहने का कार्य प्रायः लड़कियाँ करती थीं, बाद में यह शब्द लड़की का वाचक हो गया।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त भी कारण अर्थ-परिवर्तन के हो सकते हैं। इन कारणों को सीमा रेखा में बांधना संभव नहीं है क्योंकि कारण इतने संश्लिष्ट होते हैं, की उनका पृथक-पृथक निर्देश करना संभव नहीं है|

8.4: पाठ सार

अर्थ भाषा की आत्मा है। जिस शास्त्र के अंतर्गत अर्थ का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है उसे अर्थ-विज्ञान कहते हैं। शब्द के उच्चारण से जिसकी प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है। किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि) को किसी भी इन्द्रिय

(प्रमुखत: कान, आँख) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है। अर्थ-विज्ञान के अन्य नाम है -'शब्दार्थ विज्ञान', 'अर्थ विचार', तथा 'अर्थातिशय'। अंग्रेज़ी में इसे सेमसोलाजी (Semasialogy), सेमेन्टिक्स (Semantique) कहते हैं।

अर्थ की प्रतीति दो प्रकार की होती हैं -(क) आत्म-अनुभव से (ख) पर-अनुभव से। (क) आत्म-अनुभव से-जहाँ स्वयं किसी वस्तु का अनुभव किया जाता है, जैसे- करेला कड़वा है में कड़वा का अर्थ-प्रतीति तब हो सकती है जब करेला स्वयं चखा जाए। ऐसे ही पानी, धुप, सर्दी, गर्मी की अर्थ-प्रतीति भी अनुभव से हो सकती है। (ख) पर-अनुभूति से-कई अर्थों की प्रतीति हमें दूसरों के अनुभव या ज्ञान के आधार पर हो सकती है। जैसे आत्मा, इश्वर, विष आदि अर्थ की प्रतीति का आधार आत्म अनुभव न होकर पर-अनुभव है।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध समझने के चार साधन है (1) उत्पत्तिवाद- जिसके अंतर्गत अर्थ से ही शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। (2) अभिव्यक्तिवाद- शब्द तथा अर्थ का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अभिव्यक्ति पर जोर दिया जाता है। जैसा शब्द सुना जायेगा, बुद्धि वैसा ही अर्थ ग्रहण करेगी। यथा -'गुलाब' कहने से गुलाब के फूल का बिम्ब मस्तिष्क ग्रहण कर लेता है। (3) ज्ञाप्तिवाद - इसके अनुसार शब्द अर्थ की ज्ञाप्ति कराता है। (4) प्रतीकवाद- इसके अंतर्गत शब्द तथा अर्थ का प्रतीकात्मक सम्बन्ध होता है।

समयानुसार अर्थ में परिवर्तन होता रहता हैं। यह परिवर्तन ही अर्थो का विकास कहलाता है और यह अर्थ-विकास कहीं अर्थ को विस्तार कर देता हैं, कहीं अर्थ का संकोच कर देता है और कहीं अर्थ को पूर्णतया बदल देता है। इसी कारण अर्थ-परिवर्तन की तीन दिशाएँ हैं - 1)अर्थ-विस्तार -जब शब्दों का अर्थ सीमित एवं संकुचित क्षेत्र से निकलकर अधिक विस्तृत एवं व्यापक हो जाता है, उसे अर्थ-विस्तार कहते हैं। 2) अर्थ-संकोच इसमें प्रायः किसी शब्द का प्रयोग विस्तृत या व्यापक अर्थ से हटकर विशिष्ट या सिमित अर्थ में होने लगता है। 3) अर्थादेश- इसमें किसी शब्द का मूल अर्थ पूर्णतया लुप्त हो जाता है। सुविधा की दृष्टि से अर्थादेश को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित कर सकते हैं-(क) अर्थापकर्ष, (ख) अर्थोत्कर्ष, (ग) अर्थ का मूर्तीकरण, (घ) अर्थ का अमूर्तीकरण।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। मानव के मन विचार और उनकी क्रियाओं में भी परिवर्तन होता है। विचारों के साथ भाषा में भी परिवर्तन होता है। इसके कारण शब्दों एवं अर्थों में परिवर्तन होता है अर्थ-परिवर्तन के आतंरिक और बाह्य, मानसिक और भौतिक अनेक संश्लिष्ट कारण होते हैं जो समष्टि रूप से प्रभावित करते हैं, जिसकी चरम परिणति अर्थ विकास में दृष्टिगत होती है। परिवर्तन के साथ प्राचीन शब्दों के स्थान पर नवीन शब्दों का प्रयोग होने

लगता है। अनेक शब्द लुप्त हो जाते हैं। ध्वनि और अर्थ की दृष्टि से भी शब्द नष्ट होते हैं। इसी प्रकार अर्थ परिवर्तन के निम्न मुख्य कारण हैं-पीढ़ी, परिवेश-भौतिक, भौगोलिक, सामाजिक,भावावेश, लाक्षणिक एवं आलंकारिक प्रयोगों के कारण, अर्थ पर बल प्रदान करने के कारण कुछ शब्दों के अर्थ सदृश्य के कारण, अज्ञानतावश गलत अर्थ में प्रयोग करने से, एक भाषा-भाषी लोगों के प्रवास के कारण भी अर्थ का विकास होता हैं। एक शब्द के भिन्न रूपों जैसे किसी शब्द के तत्सम और तद्भव रूपों में अर्थ की दृष्टि से भेद होता है। एक वर्ग के एक शब्द में परिवर्तन होने पर उस वर्ग के अन्य शब्दों के भी अर्थ परिवर्तित हो जाते हैं।

8.5: पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से अर्थ विज्ञान संबंधी निम्नलिखित अवधारणाओं की जानकारी प्राप्त हुई है-

1. अर्थ की अवधारणा।
2. शब्द और अर्थ का संबंध।
3. अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ।
4. अर्थ परिवर्तन के कारण।

8.6 : शब्द संपदा

1. विस्तार - बढ़ाना या फैलना
2. संकोच - सीकुड़ना या कम होना
3. अर्थादेश - नए अर्थ का प्रचलित होना
4. अपकर्ष - नीचे गिरना
5. उपकर्ष - ऊपर उठना
6. पुनरावृत्ति - दोहराना

8.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खण्ड (अ)

दीर्घ प्रश्न :

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए।

1. अर्थ परिवर्तन की दिशाओं पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

2. ध्वनि परिवर्तन के कारणों पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

खण्ड (ब)

लघु प्रश्न :

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250 शब्दों में लिखिए।

1. अर्थ की परिभाषा व स्वरूप क्या है ? अर्थ की प्रतीति को समझाइए।

2. शब्द व अर्थ का संबंध कैसे समझा जा सकता हैं ?

3. अर्थ-संकोच को सोदाहरण लिखिए।

4. अर्थादेश के प्रकार कौन-कौन से हैं ?

खण्ड (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. जिस शास्त्र के अंतर्गत अर्थ का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है उसे -कहते हैं।

(अ) ध्वनि विज्ञान (आ) अर्थ-विज्ञान (इ) लिपि विज्ञान (ई) वाक्य विज्ञान ( )

2. अज्ञानतावश गलत अर्थ में प्रयोग करने से भी शब्दों का क्या बदल जाता है।

(अ) भाव (आ) गुण (इ) अर्थ (ई) शैली ( )

3. "नित्याः शब्दार्थसम्बन्धः समाम्नाता महर्षिभिः। " उक्त परिभाषा किनकी है ?

(अ) भरतमुनि (आ) भोलानाथ तिवारी (इ) एलफ्रेड सिजविक (ई) भर्तृहरि ( )

4. निम्न में से 'दुहिता' शब्द का अर्थ कौनसा है ?

(अ) गाय दुहने वाली (आ) लड़की (इ) दूध (ई) दुखियाँ ( )

5. किसके अंतर्गत अर्थ से ही शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है ?

(अ) भाषा विज्ञान (आ) उत्पत्तिवाद (इ) अर्थ-संकोच (ई) अर्थ-विस्तार ( )

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. 'हृ' धातु में विविध प्रकार के उपसर्ग लगाकर उसके अर्थ को _________ कर देते है।

2. भाषा ______________ ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था हैं।

3. ______________ में किसी शब्द का मूल अर्थ पूर्णतया लुप्त हो जाता है।

4. बहुत से शब्दों का अर्थ _________ नम्रता- प्रदर्शन के कारण परिवर्तित हो जाता है।

5. संस्कृत का वाटिका शब्द उद्यान अर्थ का सूचक है किंतु __में इस शब्द का अर्थ है घर।

III. **सुमेल कीजिए।**

(अ)	**(ब)**
(i) अर्थ परिणामों पर आधारित है।	(अ) प्रतीकवाद
(ii) फटे-पुराने कपड़े	(आ) पुलिस
(iii) सामाजिक शिष्टाचार	(इ) एलफ्रेड सिजविक
(iv) लाल पगड़ी	(ई) कर्पट
(v) शब्द तथा अर्थ का प्रतीकात्मक सम्बन्ध	(उ) विनम्रता

8.8 : पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान - डॉ॰ भोलानाथ तिवारी
2. भाषा विज्ञान - डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. भाषा विज्ञान व हिंदी भाषा का इतिहास - डॉ॰ शीला मिश्र
4. शर्मा, रामकिशोर (2007). भाषाविज्ञान, हिंदी भाषा और लिपि
5. तिवारी, भोलानाथ. भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा
6. शर्मा, राजमणि (1996). आधुनिक भाषाविज्ञान
7. शर्मा, राजमणि (2010). हिंदी भाषा, इतिहास और स्वरूप

इकाई 9 : भाषा परिवार एवं भारतवर्ष की भाषाएँ

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 मूल पाठ : भाषा परिवार एवं भारतवर्ष की भाषाएँ

9.3.1 वर्गीकरण की आवश्यकता

9.3.2 वर्गीकरण के आधार

9.3.3 विश्व की भाषाओं के विभिन्न वर्ग

9.3.4 भारोपीय परिवार

9.3.5 भारोपीय परिवार की भाषाओं का परिचय

9.3.6 भारतवर्ष की भाषाएँ

9.4 पाठ सार

9.5 पाठ की उपलब्धियाँ

9.6 शब्द संपदा

9.7 परीक्षार्थ प्रश्न : एडिट

9.8 पठनीय पुस्तकें

9.1 : प्रस्तावना

भाषा को मनुष्य के विचारों, भावों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का प्रमुख और विलक्षण माध्यम माना जाता है। भाषा मनुष्य के सामाजीकरण और विकास का मूल आधार है। उसी ने मनुष्य को समूह में रहना सिखाया। भाषा के कारण ही आरंभिक कबीलाई समुदाय एकजुट हुए होंगे। भाषा की समानता एक साथ एकजुट होकर रहने की आदत के साथ जुड़ी है। एक दूसरे की सहायता की भावना के मूल में स्थित भाषा की सहायता से ही मनुष्य ने संगठन की नींव रखी। इस संगठन-भावना ने गाँव, नगर, प्रांत और देश को संभव बनाया। छोटी इकाई से बड़ी इकाई तक की इस यात्रा में भाषा के कार्य और प्रयोग की सीमा भी बढ़ी। उसी ने विचारधारा, धर्म, जाति, देश और महाद्वीपों आदि के स्तर पर विश्व मानव समुदाय को वर्गीकृत करने और जोड़े रखने की प्रेरणा का काम किया। इस पूरी प्रक्रिया में हजारों या उससे भी कहीं अधिक वर्ष का समय लगा होगा। लेकिन यह सब 'मानव-भाषा' के कारण ही संभव हुआ। संभवतः इसीलिए अनेक प्रकार की विभिन्नता और असमानता के बावजूद संसार की प्रमुख भाषाओं में कहीं न कहीं परस्पर संबद्धता के सूत्र मिल ही जाते हैं।

9.2 : उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करके आप-

- विश्व के भाषा परिवारों के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- भाषा परिवारों के वर्गीकरण के आधार एवं उसकी आवश्यकता को जान सकेंगे।
- विश्व के विभिन्न भाषा वर्गों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- भारोपीय परिवार के नामकरण, विशेषताओं और वर्गीकरण को रेखांकित कर सकेंगे।
- भारतवर्ष की भाषाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

9:3 : मूल पाठ : भाषा परिवार एवं भारतवर्ष की भाषाएँ

9.3.1 वर्गीकरण की आवश्यकता

दरअसल, भाषा के साथ समुदाय की भावना जुड़ी हुई है और भाषा मानव समुदाय का प्रतिनिधित्व करती है। यह अलग बात है कि किसी भाषा के लिए यह समुदाय छोटा हो सकता है तो किसी के लिए बड़ा। मनुष्य भाषा सीखने की प्रवृत्ति के साथ जन्म लेता है और समुदाय के बीच भाषा अको अर्जित करता है। यह अत्यंत स्वाभाविक है कि मानव मन में भाषाओं के बारे में तरह-तरह की जिज्ञासाएँ उठाती हैं। जैसे, भाषाएँ कैसी बनी? भाषाओं का मूल क्या है? भाषाओं का विकास परंपरा किस तरह बढ़ती है? संसार की अनेक भाषाओं में परस्पर क्या संबंध है? भाषाओं में साम्य और वैषम्य क्यों पाए जाते हैं - आदि। इन जिज्ञासाओं के समाधान के लिए भाषाविज्ञान इस विशिष्ट ज्ञान क्षेत्र का वैज्ञानिक विश्लेषण और विवेचन करता है। यह तभी संभव था, जब विश्व की जीवित भाषाओं की जानकारी हो। इस दिशा में पर्याप्त प्रयास किए गए तथा प्रमुख भाषाओं की खोज हूई, किंतु आज भी अनेक भाषाएँ भाषावैज्ञानिकों की पहुँच के बाहर हैं तथा वे अपने अध्ययन की प्रतीक्षा में हैं। साथ ही, भाषाओं के उद्भव, विकास और वर्गीकरण के बारे में सर्वमान्य, निर्विवाद सिद्धांत अभी भी प्रतिपादन होना शेष है। अब तक खोजी जा चुकी तथा वैज्ञानिक अध्ययन का केंद्र बनी विश्व की भाषाओं की विशेषताओं, परस्पर संबद्धता के ज्ञान तथा वैज्ञानिक अध्ययन के लिए एक मूल भाषा (प्रोटो स्पीच) से उत्पन्न विश्व की भाषाओं की परिकल्पना की गई और उनका परिवारों में वर्गीकरण किया गया। एक मूल भाषा से विविध भाषाओं की उत्पत्ति का यह विचार अधिकांश भाषा वैज्ञानिकों को स्वीकार्य नहीं हुआ। इसकी तुलना में विश्वभाषाओं की बहुस्रोतीय उत्पत्ति (POLYGENESIS OF HUMAN RACES AND THEIR LANGUAGES) के सिद्धांत को सस्यूर आदि का व्यापक समर्थन प्राप्त है।

9.3.2 वर्गीकरण के आधार

भाषाओं की उत्पत्ति एक स्रोत से हुई हो अथवा अनेक स्रोतों से, वर्तमान स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि वर्गीकरण का आधार किसे बनाया जाए? महाद्वीप, देश, धर्म, काल को आधार बनाकर किए गए वर्गीकरण को वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं कहा जा सकता। अतः भाषा की प्रकृति की समानता-असमानता को वर्गीकरण का आधार बनाना ही उचित प्रतीत होता है। भाषाओं में मिलने वाली समानताएँ मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं। (1) बाह्य संरचनात्मक समानताएँ तथा (2) आंतरिक अथवा प्रकृति प्रधान। जब भाषाओं को उनकी आकृति अर्थात बाह्य समानता के आधार पर अलग-अलग वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है, तब उसे आकृति मूलक वर्गीकरण कहते हैं और जब भाषाओं को उनकी आंतरिक संरचना के आधार पर विभिन्न समूहों में बाँटा जाता है तब इस प्रकार के वर्गीकरण को पारिवारिक या ऐतिहासिक वर्गीकरण कहा जाता है। आंतरिक समानताओं से युक्त भाषाओं को एक ही परिवार का माना जाता है। इस पद्धति के अनुसार उन भाषाओं को एक ही वर्ग में रखा जाता है, जिन भाषाओं में ऐतिहासिक संबंध रहता हैं। इसके विपरीत बाह्य रचनागत समानता के आधार पर जिन भाषाओं को एक ही समूह या वर्ग में रखा जाता है, उनके मध्य कोई नाता-रिश्ता नहीं होता; साथ ही संरचनागत समानताएँ प्रायः अस्थिर और परिवर्तनशील होती हैं और कभी-कभी लुप्त भी हो जाती हैं। उदहारण के लिए, आज की योगात्मक भाषाएँ कल अयोगात्मक हो सकती हैं। इसलिए बाह्य संरचना आधारित अर्थात आकृति मूलक वर्गीकरण न तो स्थायी वर्गीकरण हो पाता है और न ही भाषाओं की परस्पर ऐतिहासिक संबद्धता का प्रमाण ही बन पाता है जबकि वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य ही भाषाओं की परस्पर संबद्धता का ज्ञान है। इस उद्देश्य की सिद्धि तो केवल पारिवारिक वर्गीकरण द्वारा ही संभव है, जो स्थायी भी है।

(अ) आकृति मूलक वर्गीकरण

आकृति मूलक वर्गीकरण को रूपात्मक, रचनात्मक या पक्षात्मक वर्गीकरण भी कहते हैं। इसका आधार यह है कि शब्द की निष्पत्ति के लिए दो तत्व (प्रकृति और प्रत्यय) आवश्यक हैं और कभी-कभी एक तीसरा तत्व भी काम में लाया जा सकता है, जिसे उपसर्ग कहते हैं। प्रकृति मूलक तत्व है जो अर्थ का आधार है, प्रत्यय उसके व्यापार को स्पष्ट करने वाला अंश है और प्रकृति प्रत्यय के योग से उत्पन्न शब्द अर्थ का द्योतक है। उपसर्ग के पर्याय से नए शब्द बनकर नए अर्थों का द्योतन करने लगते हैं। इस तरह अधिकतर शब्दों की निष्पत्ति में इन तीनों का रहना आवश्यक होता है-

उपसर्ग + प्रकृति + प्रत्यय = शब्द

उयदहरण : प्र + चर् + घञ् (अ) = प्रचार

प्र + ह + घञ् (अ) = प्रहार

पद रचना और वाक्य रचना को आधार बनाकर जो वर्गीकरण होता है उसे आकृति मूलक वर्गीकरण कहते हैं। जिन भाषाओं में पदों या वाक्यों की रचना का ढंग एक जैसा होता है, उनमें आकृति मूलक साम्य रहता है और उन्हें एक वर्ग में रखा जाता है। इस वर्गीकरण का आधार है – 'आकृति साम्य'।

विश्व की भाषाओं का आकृति मूलक वर्गीकरण

आकृति अथवा रूपगत साम्य-वैषम्य को दृष्टि में रखते हुए विश्व भर की भाषाओं के 2 वर्ग बनाए हैं – (1) अयोगात्मक भाषाएँ और (2) योगात्मक भाषाएँ।

अयोगात्मक : अयोगात्मक, भाषा-वर्ग की भाषाओं में प्रत्येक शब्द का स्वतंत्र अस्तित्व और महत्व है। इनमें प्रकृति और प्रत्यय का योग नहीं होता। सुर के आधार पर अर्थ आदि का निर्णय किया जाता है। इसीलिए इन्हें अयोगात्मक, व्यास प्रधान अथवा निरवयव भाषा कहा जाता है।

इस वर्ग की भाषाओं में चीन, तिब्बत, बर्मा, थाईलैंड आदि देशों की भाषाएँ आती हैं। इनमें चीनी भाषा का स्थान प्रधान है। इस भाषा के वाक्यों में अर्थों का निर्धारण स्थान से ही होता है।

जैसे- 'ता लेन' = बड़ा आदमी।

'लेन ता' = आदमी बड़ा (है)।

'न्गो त नि' = मैं मारता हूँ तुमको।

'नि त न्गो' = तुम मारते हो मुझको।

स्मरणीय है कि अयोगात्मक भाषा के वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों पर न तो काल, लिंग या वचन का कोई प्रभाव पड़ता है और न ये कारक – रचना से ही प्रभावित होते हैं, अपितु उनका अर्थ बोध केवल स्थान भेद, निपात तथा सुर के कारण होता है।

योगात्मक : इस वर्ग की भाषाओं में प्रकृति-प्रत्यय के योग से शब्दों की निष्पत्ति होती है इसलिए इन्हें योगात्मक भाषा कहा जाता है। योगात्मक भाषाओं के तीन प्रमुख भेद हैं – अश्लिष्ट योगात्मक, प्रश्लिष्ट योगात्मक और श्लिष्ट योगात्मक।

अश्लिष्ट-योगात्मक (प्रत्यय प्रधान) : अशिलिष्ट योगात्मक भाषाओं को प्रत्यय प्रधान भाषा भी कहा जाता है। इनमें अर्थ तत्व के साथ रचना तत्व का योग तो होता है, किंतु दोनों की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देती है। इस वर्ग की प्रतिनिधि भाषा तुर्की है। तुर्की शब्दों के निष्पादक अवयवों का योग।

उदाहरण :

एव = घर (एक वचन)

एव देन = घर से एव-लेर-इम = मेरे घर एव-इम देन – मेरे घर से

एव लेर = कई घर, (बहुवचन) एव-लेर देन – घरों से एव-लेर-इम-देन = मेरे घरों से

प्रश्लिष्ट-योगात्मक (समास-प्रधान) : प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं को समास प्रधान भाषा भी कहा जाता है। इन भाषाओं के वाक्यों के अंतर्गत प्रयुक्त शब्दों में अर्थ-तत्व और संबंध-तत्व इतने घुल मिल जाते हैं कि पृथक दिखाई ही नहीं देते और संश्लिष्टता के कारण उन शब्दों का भेद करना भी सर्वथा कठिन होता है। संसार की इन भाषाओं में संबंध तत्व और अर्थ तत्व का योग इतना पूर्ण रहता है कि वाक्य लगभग एक ही शब्द बन जाता है। इन्हें समास प्रधान भाषा कहने का आधार यही तथ्य है। उदाहरण के लिए; दक्षिणी अमरीका की चेरोकी भाषा में 'नातेन' = लाओ, 'निन' = हम, 'अमोखोल' = नाव। इन शब्दों से वाक्य बनाने पर एक बड़ा शब्द बन जाता है, जैसे : नाधोलिनिन = हमारे पास नाव लाओ।

श्लिष्ट योगात्मक (विभक्ति प्रधान) : जिन भाषाओं में व्याकरणिक संबंध का बोध विभक्ति से होता है, उन्हें श्लिष्ट योगात्मक या विभक्ति प्रधान भाषा। इन भाषाओं में संबंध तत्व, प्रत्यय को जोड़ने के कारण अर्थ तत्व वाले भाग में भी कुछ विकार पैदा हो जाते हैं, परंतु संबंध-तत्व फिर भी अलग से पहचान जा सकता है, अर्थात रूप विकृत हो जाने पर भी संबंध तत्व छिपा नहीं रहता। जैसे अरबी में क़्-त् ल (मारना) धातु से क़त्ल = (ख़ून) क़ातिल (मारने वाला), क़िल्त (शत्रु) आदि। इसी प्रकार संस्कृत में वेद, नीति, इतिहास, भूगोल से वैदिक, नैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि। संस्कृत के उदाहरणों में स्पष्ट है कि अंत में 'इक' प्रत्यय लगा है, पर साथ ही आरंभ के 'वे', 'ने', 'ई', 'भू' में विकार आ गया है और वे 'वै', 'नै', 'ऐ', 'भौ' हो गए हैं। इस वर्ग की भाषाएँ संसार में सबसे अधिक उन्नत हैं। सामी, हामी और भारोपीय परिवार इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। अरबी, हिब्रू, लैटिन, अवेस्ता, ग्रीक आदि कुछ संश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के उदाहरण हैं।

(आ) पारिवारिक वर्गीकरण

भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण से पूर्व यह समझना जरूरी है कि भाषाओं के बीच कुछ अंतरंग संबंध भी प्राप्त होता है जो केवल बाह्य रचना तक सीमित नहीं, बल्कि अर्थ को भी आधार बनाकर चलता है। भाषा के संबंध में 'परिवार' लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त पद है। एक भाषा से दूसरी भाषा उत्पन्न होती है तो मूल भाषा को उसकी जननी मान लिया जाता है। ऐसी भाषाओं में प्रायः पर्याप्त ध्वनि साम्य दिखाई देता है। इस साम्य के आधार पर यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि जिन भाषाओं की शब्दावली में ऐसे साम्य विद्यमान हैं, वे निश्चय ही किसी एक वंश या परिवार की हैं और वे पारस्परिक ऐतिहासिक संबंध रखती हैं। ऐसी भाषाओं

का विकास भले ही विभिन्न स्थानों पर हुआ हो और उनमें स्थानीय भेद के कारण अब भले ही कुछ परिवर्तन दिखाई देता हो, किंतु आरंभ में वे किसी एक स्थान की ही भाषा से संबद्ध रही हैं। ऐसी विभिन्न भाषाओं के परिवारों का अनुसंधान करके विद्वानों ने संसार की भाषाओं को विविध परिवारों में विभक्त किया है। भाषाओं के इसी परिवार विभाजन को भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण कहते हैं।

भाषिक समानता : किन्हीं भाषाओं को एक परिवार के रूप में वर्गबद्ध करने के लिए उनमें पाँच प्रकार की भाषिक समानता हो सकती है – ध्वनि समानता, शब्द समानता, रूप रचना समानता, वाक्य रचना समानता, अर्थ समानता।

- ध्वनि समानता : एक परिवार की भाषाओं में ध्वनि की समानता तीन कारणों से हो सकती है – लोप के कारण, परिवर्तन के कारण, प्रभाव के कारण। उदाहरण के लिए : फारसी की क़, ख़, फ़ ध्वनियाँ हिंदी में निकटवर्ती क, ख, फ में परिवर्तित हो जाती हैं। परंतु यह भी विचारणीय है कि आर्यभाषाओं में वैदिक काल से पहले मूर्धन्य ध्वनियाँ नहीं भी बल्कि द्रविड भाषा के प्रभाव से आगे चलाकर विकसित हुईं – तथापि इन दोनों को अलग-अलग परिवारों में रखा जाता है।
- शब्द समानता : अन्य भाषाओं के प्रभाववश दिखाई देने वाली शब्दों की समानता के आधार पर भाषाओं को एक परिवार का नहीं माना जा सकता, बल्कि शब्द की समानता जिन कारणों से होती है वे हैं – एक परिवार की भाषा होने के कारण, ध्वनि परिवर्तन के समान होने के कारण, किसी अन्य भाषा से उन भाषाओं में आने के कारण, एक भाषा से दूसरी में जाने के कारण, संयोग के कारण। उदाहरण के लिए –

(1) एक परिवार की भाषा होने के कारण : जैसे संस्कृत पितृ, ग्रीक पैटर (pater), लैटिन पैटर (pater), फ्रेंच पेयर (pere), स्पैनिश पैड्रो (padro), जर्मन वैटर (vater), अंग्रेजी फादा (father), फारसी पिदर आदि।

(2) ध्वनि परिवर्तन के समान हो जाने के कारण : जैसे हिंदी 'आम' (संस्कृत आम्र) तथा अरबी 'आम'।

(3) किसी अन्य भाषा से उन भाषाओं में आने के कारण : जैसे अरबी शब्द 'इलाका' हिंदी और तमिल में भी प्रयुक्त है। अरबी शब्द 'शैतान' हिंदी में इसी रूप में प्रयुक्त है तथा तमिल में 'सैतान', तेलुगु में 'सैतानु' और मलयालम में 'चैतान' के रूप में प्रयुक्त है।

(4) एक भाषा में दूसरी भाषा में जाने कारण : तुर्की का शब्द 'चाकू' हिंदी में प्रयुक्त 'चाकू' तथा द्रविड भाषाओं में प्रयुक्त 'पिल्ला' और हिंदी में प्रयुक्त 'पिल्ला'।

- अर्थ समानता : अर्थ परिवर्तन भाषा की सहज विशेषता है। एक ही मूल के अनेक शब्द भिन्न भिन्न परिवेश में पड़ने के कारण भिन्न भिन्न अर्थ देने लगते हैं। इसके बावजूद अनेक ऐसे शब्द मिल जाते हैं जिनमें अर्थगत समानता होती है। समान अर्थ से युक्त दो या अधिक भाषाओं के एक परिवार से विकसित होने की कल्पना की जाती है। जैसे :
- रूप रचना की समानता : पारिवारिक वर्गीकरण के लिए रूप रचना की समानता को अत्यंत महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। उदाहरण के लिए तुलना का प्रत्यय 'तर' – उच्चतर (सं), बेहतर (फा), बेटर (अं) एक पारिवारिकता का स्पष्ट संकेत कर रहा है। यों तो तुर्की, फारसी, अरबी, हिंदी में इस तरह की समानता है किंतु ये भाषाएँ एक परिवार की नहीं हैं। रूप रचना में क्रिया रूप तथा सर्वनाम रूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इसके अंतर्गत मुख्य रूप से प्रत्यय और उपसर्ग होते हैं।
- वाक्य रचना समानता : वाक्य रचना में परिवर्तन बहुत होता है। इस पर दूसरी भाषाओं का प्रभाव भी काफी पड़ता है। फिर भी मूलभूत समानताएँ एक सीमा तक सुरक्षित रह जाती हैं। शब्दों में विभक्ति, प्रत्यय आदि लगाकर वाक्यों में प्रयुक्त होने योग्य बनाने की पद्धति शब्द विकार कहलाती है। जैसे – मैं > मैंने > मुझे > मेरा > मुझको।

स्थानीय या भौगोलिक समीपता : भाषाओं के परिवार निर्धारण में स्थानीय समीपता भी ध्यान रखने योग्य है। जैसे खड़ी बोली, बांगरू, बुंदेली, अवधी आदि हिंदी की क्षेत्रीय भाषाओं के समीप ही मैथिली, मराठी, गुजराती, राजस्थानी आदि अन्य भाषाएँ भी हैं और स्थान संबंधी समीपता के कारण बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है। ऐसे ही मलयालम, तमिल, कन्नड, तेलुगु आदि भी निकट हैं। अतः स्थानीय अथवा भौगोलिक समीपता को भी पारिवारिक वर्गीकरण का एक आधार माना जा सकता है। इस आधार पर विश्व की भाषाओं को यूरेशिया, अफ्रीका, प्रशांत महासागर और अमरीका के खंडों में बाँटा जाता है। पर इस वर्गीकरण को बहुत सीमा टाक वैज्ञानिक नहीं माना जाता। उदाहरणार्थ; हिंदी और मलयालम भौगोलिक समीपता के बावजूद भिन्न परिवारों की भाषाएँ मानी जाती हैं जबकि भारत और इंग्लैंड की भौगोलिक दूरी के बावजूद संस्कृत और अंग्रेजी एक ही परिवार में शामिल है।

9.3.3 विश्व की भाषाओं के विभिन्न वर्ग

संसार में निम्नलिखित भाषा परिवारों का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है –

(i) यूरेशिया भाषा खंड (यूरोप एवं एशिया) : भारोपीय परिवार, द्रविड परिवार, बुरुशस्की परिवार, यूराल अल्ताई परिवार, काकेशी परिवार, चीनी तिब्बती परिवार, जापानी कोरियाई परिवार, हाइपरबोरी परिवार, बास्क परिवार, थामी हामी परिवार

(ii) अफ्रीका भाषा खंड : सूडानी परिवार, बाँटू परिवार, होतेन्तोत बुशमैनी परिवार

(iii) प्रशांत महासागरीय भाषा खंड : मलय बहुद्वीपीय परिवार या मलय पालेनिशियन परिवार, पापुई परिवार, आस्ट्रेलियाई या आस्ट्रो एशियाटिक परिवार, दक्षिणपूर्व एशियाई परिवार

(iv) अमरीकी भाषा खंड : अमरीका के भाषा परिवार जिनमें लगभग 100 परिवारों की कल्पना की गई है।

विश्व की इन भाषाओं को आगे दिए जा रहे आरेख के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

भाषा खंड	परिवार
	भारोपीय
	द्रविड
	बुरुशस्की
	यूराल अल्ताई
यूरेशिया खंड	काकेशी
	चीनी तिब्बती
	जापानी कोरियाई
	हाइपरबोरी
	बास्क
	सामी हामी
सूदानी	
अफ्रीका खंड	बाँटू
	होतेन्तोत बुशमैनी
	मलय बहुद्वीपीय/ मलय पालेनिशियन
प्रशांत महासागरीय	पापुई
	आस्ट्रेलियाई/ आस्ट्रो एशियाटिक
	दक्षिणपूर्व एशियाई
अमरीकी	लगभग 100 परिवार

9.3.4 भारोपीय परिवार (भारत-यूरोपीय भाषा परिवार)

भारत-यूरोपीय अथवा भारोपीय भाषा परिवार भाषाओं का सबसे बड़ा समूह है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, जर्मन, अंग्रेजी, रूसी, फारसी, हिंदी, पंजाबी जैसी अनेक भाषाएँ इसमें शामिल हैं। दुनिया की कुल जनसंख्या के लगभग आधे लोग (45%) इस परिवार के भाषा प्रयोक्ता है। भारोपीय परिवार के अंतर्गत भारत, ईरानी, यूरोप की विविध भाषाएँ आती हैं। इस परिवार की भाषाओं में पर्याप्त समानता है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि ये सभी भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से विकसित हैं।

(i) नामकरण

इस परिवार के अनेक नाम सुझाए गए –

(अ) इंडो जर्मनिक : जर्मन विद्वानों ने भौगोलिक आधार पर यह नाम दिया है। परंतु इस नाम की यह सीमा है कि इटेलियन, फ्रांसीसी, स्पेनी, पुर्तगाली और रूमानियन जैसी भाषाएँ इससे बाहर रह जाती हैं।

(आ) आर्य : अंग्रेज विद्वानों के अनुसार दिया गया यह नाम जाति (रेस) पर आधारित है; है, जबकि इस परिवार की भाषा को अनेक ऐसी जाति के लोग भी बोलते हैं जो आर्य नहीं हैं।

(इ) जेफेटिक : सेमेटिक हेमेटिक के सादृश्य पर रखा गया नाम। लोकप्रिय नहीं हुआ।

(ई) भारोपीय : भारत-यूरोपीय। इसका आधार भौगोलिक है। पूरे भारत और यूरोप में बोली जाने वाली सभी भाषाएँ (जैसे द्रविड भाषाएँ) इस परिवार में नहीं आतीं। तथापि यही सर्वाधिक स्वीकृत है।

(उ) भारत-हित्ती : 1893 ई. में एशिया माइनर के बोगाजकोइ नामक स्थान की पुरातात्विक खुदाई में कुछ प्रमाण मिलने पर चेक विद्वानों ने वहाँ प्राप्त भाषा को हित्ताइत भाषा की संज्ञा दी और इस वर्ग को भारत-हित्ती भाषा परिवार कहा। यह नाम भी सवीकृति प्राप्त नहीं कर सका।

(ii) विशेषताएँ

जनसंख्या, व्यापकता, साहित्य, वैज्ञानिक प्रगति, राजनीतिक एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भारोपीय परिवार का महत्व इस प्रकार है -

(अ) भारोपीय परिवार महत्वपूर्ण परिवार है। यह बहुत बड़े भूभाग में फैला हुआ है। विश्व भर में इस परिवार की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है।

(आ) साहित्यिक दृष्टि से यह परिवार समृद्ध है। लैटिन, ग्रीक, संस्कृत, अंग्रेजी, हिंदी जैसी साहित्यिक दृष्टि से संपन्न भाषाएँ इस परिवार में शामिल हैं।

(इ) इस परिवार की भाषाओं में विद्यमान वैज्ञानिक साहित्य भी बेजोड़ है।

(ई) भारोपीय परिवार की भाषाओं के महत्व का प्रमुख कारण राजनीतिक प्रभुत्व भी है। भारत में अंग्रेजी का प्रवेश राजनीतिक सत्ता का परिणाम है।

(उ) भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी यह परिवार महत्वपूर्ण है। भाषाविज्ञान का आरंभ इस परिवार की भाषाओं के अध्ययन से हुआ। 1886 में बंगाल की रॉयल-एशियाटिक सोसाइटी के सम्मुख सर विलियम जोन्स ने ग्रीक और लैटिन से संस्कृत के घनिष्ठ संबंध को रेखांकित किया था। इसी से तुलनात्मक भाषाविज्ञान का आरंभ हुआ।

आप को यह जानकार विस्मय होगा कि मूल भारोपीय भाषा की लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के प्राचीनतम रूप के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा मूल भारोपीय भाषा की पुनःसंरचना का प्रयास किया गया है। कुछ विद्वान इसका मूल स्थान भारत मानते हैं तो यूरोपीय विद्वान यूरोप के किसी क्षेत्र को और एशिया के विद्वान एशिया के किसी स्थान को। माना जाता है कि मूल भारोपीय भाषा संस्कृत के आदिम रूप के समान थी।

भाषावैज्ञानिकों ने भारोपीय भाषा की ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणात्मक संरचना का परिचय दिया है-

(अ) ध्वन्यात्मक संरचना :

भारोपीय भाषा में निम्नलिखित स्वरों की कल्पना की गई –

मूल ह्रस्व : अ, इ, उ, ए, ओ

मूल दीर्घ : आ, ई, ऊ, ऐ, औ

संयुक्त ह्रस्व : अइ, अउ, अन, एउ

संयुक्त दीर्घ : आइ, आउ, आन, ऐउ

उदासीन अतिह्रस्व : अ

अर्धस्वर : य, व

स्वरवत प्रयुक्त : ऋ, लृ, म़, ऩ

भारोपीय भाषा के व्यंजन –

क्, ख्, ग्, घ् – कंठ्य

क्य्, ख्य्, ग्य्, घ्य् – कंठ + तालव्य

क्व्, ख्व्, ग्व्, घ्व् – कंठोष्ठ्य

संस्कृत में वर्ग (1) की ध्वनियाँ स, श, ष – ऊष्म ध्वनियों में विकसित हुईं, वर्ग (2) की ध्वनियाँ 'च' वर्ग की ध्वनियों च, छ, ज, झ में तथा वर्ग (3) की ध्वनियाँ 'क' वर्ग क, ख, ग, घ में विकसित हुईं।

'त' वर्ग – त्, थ्, द्, ध् – दंत्य

'प' वर्ग – प्, फ्, ब्, भ् – ओष्ठ्य

ऊष्म – स् (ज्)

अंतस्थ व्यंजन – य्, र्, ल्, व्, न्, म्

'ह्' के दो रूप – सघोष, अघोष।

(आ) व्याकरणात्मक संरचना :

भारोपीय भाषाओं की व्याकरणिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(1) भारोपीय भाषा श्लिष्ट और प्रश्लिष्ट योगात्मक के मध्य की थी। इसमें अर्थ तत्व और संबंध तत्व परस्पर घुले मिले रहते थे।

(2) प्रत्ययों की बहुलता थी।

(3) पद रचना जटिल थी।

(4) धातुओं से शब्द निष्पन्न होते थे।

(5) व्याकरणात्मक शब्द, संज्ञा, क्रिया एवं अव्यय अलग-अलग थे।

(6) सर्वनाम और विशेषण संज्ञा के ही अंश थे।

(7) शब्द रूपों में तीन पुरुष (अन्य, मध्यम और उत्तम), तीन लिंग (स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और नपुंसक लिंग), तीन वचन (एकवचन, द्विवचन और बहुवचन) एवं आठ कारकों का प्रयोग होता था।

(8) शब्दों की सामासिक रचना होती थी।

(9) व्याकरणात्मक संरचना में सुरों एवं स्वराघात का महत्व था।

(इ) वर्गीकरण

समस्त भारोपीय भाषाओं को केंटुम और शतम् वर्ग में विभाजित किया जाता है। केंटुम वर्ग में उन भाषाओं को रखा जाता है जिनमें कंठ्य ध्वनियाँ हैं। इस वर्ग में ग्रीक, इतालिक, केल्तिक, जर्मनिक, तोखारी और हित्ताइत भाषाएँ शामिल हैं। शतम् वर्ग के अंतर्गत वाल्तोस्लाविक, आर्मेनियन, अल्बेनियन, भारत ईरानी भाषाएँ समाहित हैं।

भारोपीय भाषा	केंटुम	ग्रीक, इतालिक, केल्तिक, जर्मनिक, तोखारी और हित्ताइत
	शतम्	बाल्तोस्लाविक, आर्मेनियन, अल्बेनियन, भारत ईरानी

9.3.5 भारोपीय परिवार की भाषाओं का परिचय

1. ग्रीक :

ग्रीक विश्व की अत्यंत प्राचीन भाषा है। इसका साहित्य और संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। इस भाषा के कवि होमर ने 'इलियड' और 'ओडिसी' की रचना की थी। इसी भाषा की वर्णमाला से समस्त यूरोप की लिपियों का विकास हुआ। प्लेटो, अरस्तू एवं सिकंदर ग्रीक भाषाभाषी थे।

विशेषताएँ :

(i) प्राचीन और आधुनिक ग्रीक में अंतर बहुत कम है।

(ii) संगीतात्मकता।

(iii) कर्ता, कर्म, संप्रदान एवं संबंध कारक हैं।

(iv) अव्ययों, उपसर्गों और क्रिया विशेषणों का बाहुल्य है।

(v) समास।

(vi) तीन लिंग हैं – स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और नपुंसकलिंग।

(vii) दो वचन – एकवचन और बहुवचन।

2. इटालिक :

इटालिक परिवार की सबसे प्रसिद्ध भाषा लैटिन है। मध्यकाल में लैटिन रोमन साम्राज्य की राजभाषा थी। लैटिन के अतिरिक्त फ्रांसीसी, इटालिक, स्पेनी, पुर्तगाली, रूमानी आदि भाषाएँ इस परिवार में सम्मिलित हैं।

विशेषताएँ :

(i) योगात्मकता से अयोगात्मकता की ओर उन्मुखता।

(ii) लैटिन में कारक विभक्तियों का प्रयोग होता है।

(iii) लैटिन में तीन लिंग थे किंतु अब दो ही लिंग हैं।

(iv) दो वचन।

(v) क्रिया रूपों की रचना में जटिलता।

3. जर्मनिक :

गाथिक इस परिवार की प्राचीन भाषा है। इस परिवार में सम्मिलित भाषाएँ हैं - जर्मन, डच, आइसलैंडी, डेनी, नोर्वेई, स्वीडी, अंग्रेजी, फ्लेमी।

विशेषताएँ :

(i) अयोगात्मकता।

(ii) ध्वनि परिवर्तन की दृष्टि से उल्लेखनीय।

4. केल्टिक :

इस शाखा की भाषाएँ आज पश्चिमी फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, स्काटलैंड, वेल्स, आयरलैंड तथा कार्नवाल में बोली जाती हैं। आइरिसिस और वेल्स इस परिवार की प्रमुख भाषाएँ हैं। इनके अतिरिक्त स्काच और ब्रिटेनी भी इस परिवार की उप-भाषाएँ हैं।

विशेषताएँ :

(i) केल्तिक अत्यंत कठिन और अस्पष्ट भाषा है।

(ii) परिवर्तन के कारण मूल शब्दों को पहचानना कठिन है।

(iii) जटिल वाक्य संरचना।

5. तोखारी :

मध्य एशिया में दूसरी सदी ई.पू. से 7वीं सदी तक तोखारी भाषा की सत्ता थी। इसका क्षेत्र एशिया (तुरफान) है।

विशेषताएँ :

(i) नौ कारक। कर्ता, कर्म और संबंध प्रधान।

(ii) तीन वचन।

(iii) जटिल क्रिया रूप।

6. हित्ताइत : तुर्की में ई.पू. 17 वीं – ई.पू. 12 वीं सदी में विद्यमान खत्ती या हित्ताइत साम्राज्य की भाषा को 'हित्ती' नाम से जाना जाता है। सुमेरियन और अक्केडियन भाषाओं के प्रभाव के कारण पहले इसे सेमेटिक परिवार की माना जाता था।

विशेषताएँ :

(i) दो लिंग – पुल्लिंग और नपुंसकलिंग।

(ii) स्त्रीलिंग का अभाव।

(iii) केवल छह कारक। अधिकरण उपेक्षित।

(iv) सरल क्रियाएँ।

(v) दो काल – वर्तमान और भूत काल।

7. बाल्तोस्लाविक :

दो उपशाखाओं बाल्तो और स्लाविक में विभक्त।

विशेषताएँ :

(i) बाल्तिक की उप-बोलियाँ हैं – लिथुआनी एवं लेती। (ii) स्लाविक पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी वर्गों में विभाजित हैं। (iii) पूर्वी स्लाविक में महारूसी, खेतरूसी, लघुरूसी (उक्रायनी); पश्चिमी में पोली चेक, स्लोवाक एवं दक्षिणी में बुलगाटी, सर्वोक्रोतों तथा स्लोवेनी बोलियाँ प्रयुक्त होती हैं। (iv) बुल्गारिया, पोलैंड और चेकोस्लाविया के क्षेत्रों में इस उप-परिवार की भाषाओं का प्रमुख रूप से प्रचलन है।

8. आर्मेनियन :

इस उप-परिवार की भाषा आरमीनी है। यह क्षेत्र ईरान से सटा हुआ है।

विशेषताएँ – (i) इस पर ईरानी भाषा का प्रभाव है। (ii) अनेक शब्द, प्रत्यय और उपसर्ग ईरानी के हैं। (iii) यह बाल्तोस्लाविक और आर्य भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी है।

9. अल्बेनियन :

(i) लोकगीतों की प्रधानता।

(ii) विदेशी शब्दों का बाहुल्य।

10. भारत ईरानी :

इसके दो वर्ग हैं – भारतीय उप-शाखा और ईरानी उप-शाखा।

विशेषताएँ :

भारतीय उप-शाखा को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है – प्राचीन भारतीय आर्य भाषा, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा और आधुनिक भारतीय आर्य भाषा। (i) ईरानी उप-शाखा के दो वर्ग हैं – पूर्वी और पश्चिमी। पूर्वी शाखा की भाषाएँ हैं - अवेस्ता, सोग्द्रियन। पश्चिमी शाखा की भाषाएँ हैं फारसी।

9.3.6 भारतवर्ष की भाषाएँ

भारतवर्ष की भाषाओं की प्रमुख शाखाएँ हैं – हिंद-आर्य भाषाएँ, द्रविड भाषाएँ, आस्ट्रो-एशियाई भाषाएँ और तिब्बती-बर्मी भाषाएँ।

(i) हिंद-आर्य भाषाएँ :

संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, मारवाड़ी, हिंदी, उर्दू, पंजाबी, राजस्थानी, सिंधी, कश्मीरी, मैथिली, भोजपुरी, नेपाली, मराठी, डोगरी, सादरी, कोंकणी, गुजराती, बंगाली, उड़िया और असमी।

(ii) द्रविड भाषाएँ :

तमिल, तेलुगू, कन्नड और मलयालम।

(iii) आस्ट्रो-एशियाई भाषाएँ :

संताली, हो।

(iv) तिब्बती-बर्मी भाषाएँ :

नेपाली, मणिपुरी, ख़ासी, मिज़ो, आओ, म्हार, नागा।

9.4: पाठ सार

अध्ययन की सुविधा के लिए सारी दुनिया की भाषाओं को कुछ वर्गों में विभक्त किया जाता है। इस वर्गीकरण का उचित आधार भाषाओं की प्रकृति की समानता-असमानता है। भाषाओं में मिलने वाली समानताएँ मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं - बाह्य संरचनात्मक समानताएँ तथा आंतरिक अथवा प्रकृति प्रधान समानताएँ। जब भाषाओं को उनकी आकृति अर्थात बाह्य समानता के आधार पर अलग-अलग वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है, तब उसे आकृति मूलक वर्गीकरण कहते हैं और जब भाषाओं को उनकी आंतरिक संरचना के आधार पर विभिन्न समूहों में बाँटा जाता है तब इस प्रकार के वर्गीकरण को पारिवारिक या ऐतिहासिक वर्गीकरण कहा जाता है।

आंतरिक समानताओं से युक्त भाषाओं को एक ही परिवार का माना जाता है। इस पद्धति के अनुसार उन भाषाओं को एक ही वर्ग में रखा जाता है, जिन भाषाओं में ऐतिहासिक संबंध रहता हैं। यहाँ 'परिवार' लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त पद है। एक भाषा से दूसरी भाषा उत्पन्न होती है तो मूल भाषा को उसकी जननी मान लिया जाता है। ऐसी भाषाओं में प्रायः पर्याप्त ध्वनि साम्य दिखाई देता है। इस साम्य के आधार पर यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि जिन भाषाओं की शब्दावली में ऐसे साम्य विद्यमान हैं, वे निश्चय ही किसी एक वंश या परिवार की हैं और वे पारस्परिक ऐतिहासिक संबंध रखती हैं। ऐसी भाषाओं का विकास भले ही विभिन्न स्थानों पर हुआ हो और उनमें स्थानीय भेद के कारण अब भले ही कुछ परिवर्तन दिखाई देता हो, किंतु आरंभ में वे किसी एक स्थान की ही भाषा से संबद्ध रही हैं। ऐसी विभिन्न भाषाओं के परिवारों का अनुसंधान करके विद्वानों ने संसार की भाषाओं को विविध परिवारों में विभक्त किया है। भाषाओं के इसी परिवार विभाजन को भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण कहते हैं।

संसार में 4 भाषा परिवारों का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है – 1.यूरेशिया भाषा खंड (यूरोप एवं एशिया) : भारोपीय परिवार, द्रविड परिवार, बुरुशस्की परिवार, यूराल अल्ताई परिवार, काकेशी परिवार, चीनी तिब्बती परिवार, जापानी कोरियाई परिवार, हाइपरबोरी परिवार, बास्क परिवार, थामी हामी परिवार। 2.अफ्रीका भाषा खंड : सूडानी परिवार, बाँटू परिवार, होतेन्तोत बुशमैनी परिवार। 3.प्रशांत महासागरीय भाषा खंड : मलय बहुद्वीपीय परिवार या मलय पालेनिशियन परिवार, पापुई परिवार, आस्ट्रेलियाई या आस्ट्रो एशियाटिक

परिवार, दक्षिणपूर्व एशियाई परिवार। 4.अमरीकी भाषा खंड : अमरीका के भाषा परिवार जिनमें लगभग 100 परिवारों की कल्पना की गई है।

भारतवर्ष की भाषाएँ इनमें से प्रथम खंड में आती हैं। भारतवर्ष की भाषाओं की 4 प्रमुख शाखाएँ हैं जिनका विवरण इस प्रकार है- 1. हिंद-आर्य भाषाएँ : संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, मारवाड़ी, हिंदी, उर्दू, पंजाबी, राजस्थानी, सिंधी, कश्मीरी, मैथिली, भोजपुरी, नेपाली, मराठी, डोगरी, सादरी, कोंकणी, गुजराती, बंगाली, उड़िया और असमी। 2. द्रविड भाषाएँ : तमिल, तेलुगू, कन्नड और मलयालम। 3. आस्ट्रो-एशियाई भाषाएँ : संताली, हो। 4.तिब्बती-बर्मी भाषाएँ : नेपाली, मणिपुरी, ख़ासी, मिज़ो, आओ, म्हार, नागा।

9.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन ससे निम्नलिखित विषय स्पष्ट हुए हैं –

1. भाषाओं के वर्गीकरण की आवश्यकता ।
2. भाषाओं के वर्गीकरण के आधार ।
3. विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण ।
4. भारोपीय परिवार की भाषाओं का परिचय ।
5. भारत वर्ष की भाषाएँ ।

9.6 : शब्द संपदा

1. अनुभूति : feeling
2. अभिव्यक्ति : expression
3. सामाजीकरण : socialization
4. कबीलाई समुदाय : tribal community
5. संगठन : organization
6. इकाई : unit
7. अर्जित : acquire
8. मूल भाषा : proto speech
9. परिकल्पना : hypothesis
10. बहुस्रोतीय : polygenesis
11. वर्गीकरण : classification

12.	संरचना	:	structure
13.	ऐतिहासिक	:	historical
14.	परिवर्तनशील	:	convertible
15.	प्रत्यय	:	prefix
16.	उपसर्ग	:	suffix
17.	सुर	:	tone
18.	प्रश्लिष्ट-योगात्मक	:	incorporating
19.	अशिलिष्ट-योगात्मक	:	simple agglutinative
20.	श्लिष्ट-योगात्मक	:	inflecting

9.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड – (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए ।

1. भाषा परिवार के वर्गीकरण के आधार पर प्रकाश डालिए।
2. भारोपीय परिवार की भाषाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. आकृति मूलक और पारिवारिक वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।
4. भारत-ईरानी परिवार के नामकरण एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

खंड – (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों में लिखिए ।

1. ग्रीक भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. भारोपीय परिवार की नामकरण संबंधी समस्या पर प्रकाश डालिए।
3. भारोपीय परिवार की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. भारोपीय परिवार की व्याकरणिक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
5. भाषा परिवार के वर्गीकरण की आवश्यकता को रेखांकित कीजिए।
6. विश्व की भाषाओं के विभिन्न वर्गों पर प्रकाश डालिए।

खंड – (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. इटालिक परिवार की सबसे प्रसिद्ध भाषा कौनसी हैं ?
   (A) लैटिन (B) ग्रीक (C) गाथिक (D) केल्टिक
2. भाषा-समुदाय का प्रतिनिधित्व करती है।
   (A) सामाजिक (B) राष्ट्रीय (C) मानव (D) जातिगत
3. पारिवारिक वर्गीकरण में भाषिक समानता कितने प्रकार की होती है ?
   (A) 2 (B) 3 (C) 4 (D) 5
4. द्रविड़ परिवार किस खंड के अंतर्गत आता है ?
   (A) यूरेशिया (B) अफ्रीका (C) प्रशांत महासागर (D) अमेरिका

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. रूपगत साम्य वैषम्य की दृष्टि से भाषाओं के _________वर्ग हैं ।
2. चेरोकी की भाषा ______________अमेरिका की है।
3. बाँटू परिवार ______________भाषा खंड में सम्मिलित है।

III. सुमेल कीजिए।

1. युरोशिया भाषा खंड	(अ) पापुई
2. अफ्रीका भाषा खंड	(आ) सूडानी
3. प्रशांत महासागरीय खंड	(इ) भारोपीय
4. अमेरिका भाषा खंड	(ई) 100 परिवार

9.8 : पठनीय पुस्तकें

1. शर्मा, राजमणि (2010 आवृत्ति). हिंदी भाषा : इतिहास और स्वरूप. नई दिल्ली : वाणी

2. शर्मा, रामविलास (2011 आवृत्ति). भाषा और समाज. नई दिल्ली : राजकमल

3. तिवारी, भोलानाथ (2007 आवृत्ति). भाषा विज्ञान. इलाहाबाद : किताब महल

इकाई 10 : भारतीय आर्य भाषाओं का विकास

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 मूल पाठ: भारतीय आर्य भाषाओं का विकास

10.3.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

10.3.2 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ

10.3.3 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

10.4 पाठ सार

10.5 पाठ की उपलब्धियाँ

10.6 शब्द संपदा

10.7 परीक्षार्थ प्रश्न

10.8 पठनीय पुस्तकें

10.1 : प्रस्तावना

भारत में पाए जाने वाली भाषाएँ कई वर्गों से संबंध रखती है। जैसे – हिंदू आर्य भाषाएँ, द्रविड़ भाषाएँ, आस्ट्रो एशियाई भाषाएँ और तिब्बती-बर्मी । इनमें से प्रथम हिंदी आर्य को भारतीय आर्य भाषा परिवार कहा जाता है । इसके अंतर्गत संस्कृत पाली, पाकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी आदि अनेक भाषाएँ सम्मिलित है । प्रस्तुत अध्याय में इन भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए इनके इतिहास और स्वरुप का परिचय दिया जा रहा है ।

10.2 : उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करके आप-

- भारतीय आर्य भाषा परिवार के विकास क्रम से परिचित हो सकेंगे।
- प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के बारे में जान सकेंगे।
- मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के उदय और विकास के बारे में जान सकेंगे।

10.3 : मूल पाठ : भारतीय आर्य भाषाओं का विकास

भारोपीय भाषा परिवार की एक प्रमुख शाखा का नाम है – भारतीय ईरानी शाखा। इस शाखा की ही एक उपशाखा है – भारतीय आर्य भाषा। इसे 'भारतीय उपशाखा' भी कहा जाता

है। भारतीय आर्य भाषाओं में आदिम भारोपीय भाषा के 'घ', 'ध' और 'फ' जैसे व्यंजन परिरक्षित हैं, जो अन्य शाखाओं में लुप्त हो गए हैं। संस्कृत, हिंदी, उर्दू, बांग्ला, कश्मीरी, सिंधी, पंजाबी, नेपाली, रोमानी, असमिया, गुजराती, मराठी आदि भाषाएँ इस समूह में शामिल हैं। इनमें संस्कृत प्राचीनतम है और प्रायः उसे अन्य भारतीय आर्यभाषाओं की जननी माना जाता है। इस विकास के तीन चरण माने जाते हैं –

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ (1500 ई.पू. – 500 ई.पू.)
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ (500 ई.पू. – 1000 ई.)
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ (1000 ई. – वर्तमान)

संस्कृत के दो रूप हैं –

1. वैदिक संस्कृत या छांदस और
2. लौकिक संस्कृत।

वैदिक संस्कृत को 1500 ई.पू. से 800 ई.पू. विद्यमान माना जाता है। इसका स्वरूप वेदों में सुरक्षित है। यह भी उल्लेखनीय है कि वेदों में ऋग्वेद के द्वितीय से आठवें मंडल तक की भाषा का काल ई.पू. 5000 वर्ष मान्य हो चुका है। अद्यतन भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से सिद्ध हो चुका है कि ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता आदि यूरोपीय भाषाएँ संस्कृत की परवर्ती और उससे प्रभावित है।

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के दो रूप वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत थे, उसी प्रकार मध्यकालीन आर्य भाषा के तीन रूप पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश हैं। सच यह है कि ये पाँचों रूप भारतीय आर्य भाषा परिवार के विकास के पाँच चरण हैं। छठा चरण है, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ।

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ, विशेषकर संस्कृत (दोनों रूप) और प्राकृत विश्व की भाषाओं के दिशा निर्देशक हैं। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के कारण भारतीय आर्य भाषा का महत्व नकारा गया, किंतु अब भाषावैज्ञानिक खोजों और सिद्धांतों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वैदिक संस्कृत या तो मूल भारोपीय भाषा है, अथवा उसके समकक्ष है।

10.3.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

1. वैदिक संस्कृत या छांदस (5000/1500 ई.पू. – 800 ई.पू.) : वेदों की भाषा
2. लौकिक संस्कृत (800 ई.पू. – 500 ई.पू.) : संस्कृत साहित्य की भाषा

यद्यपि प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में से वैदिक संस्कृत की उपस्थिति 5000 ई.पू. से प्राप्त होने लगती है तथापि निर्विवाद रूप से प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं का काल 1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक माना जाता है। इस काल में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के दो रूप मिलते हैं – वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत। उल्लेखनीय है कि ये दोनों ही भाषारूप परिनिष्ठित हैं अतः स्वाभाविक है कि इनका विकास किसी मूल भाषा से हुआ होगा जो मुख्यतः बोलचाल या दैनंदिन व्यवहार की भाषा रही होगी। उसे ही मूल या आदिम भारोपीय भाषा माना गया है जिसका ऋग्वेद की भाषा के काफी समीप होना स्वाभाविक है। वैदिक संस्कृत और लैकिक संस्कृत के बीच सीमारेखा खींचना कठिन है, क्योंकि वैदिक संस्कृत के समानांतर लोक बोलियों को आधार बनाकर लौकिक संस्कृत साहित्यिक भाषा का रूप वैदिक संस्कृत के साहित्यिक भाषा बनते समय से ही ले रही थी; जिसमें वैदिक संस्कृत के भाषिक तत्वों का समावेश, स्वाभाविक प्रक्रिया के तहत होता रहा। इसके अलावा यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि वैदिक संस्कृत न तो एक काल की भाषा है, और न ही एक स्थान की। उसमें भी विभिन्न स्थानीय तत्वों और काल के थपेड़ों में बदलते भाषिक रूपों का समावेश स्वाभाविक है। वैदिक और लौकिक संस्कृत की अत्यधिक समानता के बावजूद उनमें विभेदक तत्व भी हैं। लौकिक संस्कृत अपनी अधिक लोक सापेक्षता के कारण सरलीकरण की ओर अधिक उन्मुख है, साथ ही उसमें लोक तत्वों के अधिक समावेश से भाषिक विशृंखलन भी दिखाई देता है।

वैदिक संस्कृत के संदर्भ में यह तथ्य भी उजागर हो चुका है कि इसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद के दूसरे से लेकर आठवें मंडल (5000 ई.पू.) की भाषा का है और वेद एक काल, एक स्थान तथा एक लेखक की रचना न होकर, विभिन्न कालों, विभिन्न स्थानों तथा विभिन्न ऋषियों के सूक्तों के संग्रह हैं।

स्मरणीय है कि चारों वेदों के काल तक की भाषा वैदिक संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मणों, उपनिषदों और बाद के साहित्य (रामायण, महाभारत और पुरानों सहित) की भाषा लौकिक संस्कृत भाषा है। वैदिक संस्कृत की अपेक्षा लौकिक संस्कृत की भाषा में व्याकरणिक नियमों की अपेकषा, बोलचाल की प्रधानता दिखाई देती है। जैसा कि पहले भी कहा गया है, परिकल्पित भारोपीय मूल भाषा (Proto Speech) का पूर्ण आधार है – वैदिक संस्कृत। उल्लेखनीय है कि वैदिक संस्कृत की अधिसंख्य ध्वनियाँ परिकल्पित भाषा में स्थान पाती हैं, जबकि ग्रीक और लैटिन की केवल कुछ ध्वनियाँ ही उसमें उपस्थित हैं।

10.3.2 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ

पालि, प्राकृत और अपभ्रंश मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ हैं।

(i) पालि (500 ई.पू. से ईसा की पहली शताब्दी) – बौद्ध साहित्य

(ii) प्राकृत (दूसरी से छठी शताब्दी ईस्वी तक) – जैन साहित्य

(iii) अपभ्रंश (सातवीं शती से ग्यारहवीं शती ईस्वी तक)

पालि :

इसे 'प्रथम प्राकृत' भी कहा जाता है। ई.पू. 500 एक ऐसा बिंदु है, जहाँ भाषा परिवर्तन को स्पष्ट रूप से इंगित किया जा सकता है। इस समय तक प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की 'ऋ', 'लृ' ध्वनियाँ लुप्त हो गई थीं और अन्य कई ध्वनियों ने अपना औच्चारणिक तथा व्याकरणिक स्वरूप बदला लिया था। ध्वनि एवं शब्द रचना के धरातल पर सरलीकरण की प्रवृत्ति ने भाषा को इस प्रकार के बदलाव के लिए विवश किया। इस समय भगवान बुद्ध विद्यमान थे। उन्होंने अपना संदेश जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए संस्कृत की अपेक्षा पालि को चुना। पालि भाषा के विकास एवं विश्लेषण की सामग्री बौद्ध साहित्य तथा अशोक के शिलालेखों में प्राप्त होती है। बुद्ध के उपदेशों का संग्रह 'त्रिपिटक' है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति पंक्ति के वाचक लोकभाषा के किसी शब्द से मानी जाती है और इसे बुद्ध-वाचन का प्रतिमान माना जाता है। अट्ठकथा, विसुद्धिमग्ग, दीपवंस एवं मिलिंदपन्नहों जैसे बौद्ध धर्म संबंधी ग्रंथों का भी प्रणयन हुआ। बौद्ध धर्म के विकास के साथ-साथ उसकी भाषा पालि का भी विकास और प्रसार हुआ। भारत के अलावा लंका, बर्मा, स्याम, चीन और जापान आदि देशों में इस भाषा का प्रसार हुआ। इन देशों में पालि भाषा में ग्रंथ भी लिखे गए किंतु उनकी लिपि स्थानीय ही रही।

वास्तव में, पालि उस मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का एक रूप है जिसका विकास लगभग ई.पू. छठी शती से माना जाता है। वैदिक भाषा परिवर्तन की प्रक्रिया के तहत संस्कृत द्वारा उपेक्षित ध्वनियों, उच्चारण तत्वों एवं रूपों को पालि ने पुनः ग्रहण किया, संस्कृत के अनेक तत्व पालि में लुप्त भी हुए। मुख-सुख और उच्चारण की सुविधा की दृष्टि से कुछ ध्वनियाँ परिवर्तित भी हुईं। परिवर्तन की यह प्रक्रिया लौकिक संस्कृत में ही प्रारंभ हो गई थी, जो सामान्य भाषिक बदलाव की प्रक्रिया भी है।

यहाँ हम संस्कृत और मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के बीच मुख्य अंतरों की चर्चा ज़रूरी समझते हैं।

(i) ध्वनि के स्तर पर

(अ) ध्वनियों में ऋ, लृ और ऐ स्वरों का अभाव,

(आ) ए और ओ की ह्रस्व ध्वनियों का विकास,

(इ) श्, ष्, स् - इन तीनों ऊष्मों के स्थान पर किसी एकमात्र का तथा सामान्यत: ‘स’ का प्रयोग,

(ई) विसर्ग का सर्वथा अभाव तथा असवर्ण संयुक्त व्यंजनों को असंयुक्त बनाने अथवा सवर्ण संयोग में परिवर्तित करने की प्रवृत्ति।

(ii) व्याकरण की दृष्टि से

(अ) संज्ञा एवं क्रिया के रूपों में द्विवचन का अभाव,

(आ) पुल्लिंग और नपुंसक लिंग में अभेद,

(इ) कारकों एवं क्रियारूपों में संकोच,

(ई) हलंत रूपों का अभाव।

ये विशेषताएँ मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं के सामान्य लक्षण हैं और उन लोकभाषाओं में पाए जाते हैं जिनका प्रचार कोई दो हजार वर्ष तक रहा और जिनका बहुत सा साहित्य भी उपलब्ध है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का भाषाविकास संस्कृत से मानना भ्रामक है। असल में, वैदिककाल से ही साहित्यिक भाषा के साथ साथ उससे मिलती जुलती लोकभाषा ने देश एवं कालभेद के आनुसार साहित्यिक प्राकृत भाषाओं का रूप धारण किया है। इनमें प्रथम प्राकृत को पालि कहा गया। वह अपनी पूरी विरासत संस्कृत से नहीं लेती, क्योंकि उसमें अनके शब्दरूप ऐसे पाए जाते हैं जिनका मेल साहित्यिक संस्कृत से नहीं, किंतु वेदों की भाषा से बैठता है। पालि के ग्रंथों तथा अशोक की प्रशस्तियों से पूर्व का प्राकृत (लोकभाषाओं) में लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है तथा प्राकृत वैयाकरणों ने अपनी सुविधा के लिए संस्कृत को प्रकृति मानकर प्राकृत भाषा का व्याकरणात्मक विश्लेषण किया है और इसीलिए यह भ्रांति उत्पन्न हो गई है कि प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति संस्कृत से हुई। पालि के कच्चान, मोग्गल्लान आदि व्याकरणों में यह दोष नहीं पाया जाता, क्योंकि वहाँ भाषा का वर्णन संस्कृत को प्रकृति मानक नहीं किया गया।

प्राकृत :

‘प्राकृत’ का अर्थ है जो अपने प्रकृत (सहज अथवा प्राकृतिक) रूप में हो। अर्थात जिसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता न हो। संभवतः यह शब्द वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के समानांतर चला। एक संस्कार संपन्न भाषा (संस्कृत) तथा दूसरी सहज – प्रकृत भाषा (प्राकृत)। अर्थात जन साधारण के बीच अपने स्वाभाविक रूप में विद्यमान भाषा प्राकृत कहलाई। इस अर्थ में पालि भी प्राकृत ही है; इसलिए उसे ‘प्रथम प्राकृत’ भी कहा जाता है। दूसरी से छठी शती में जनसाधारण के बीच विद्यमान जनभाषा – प्राकृत – साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो

गई। यद्यपि प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के काल से ही प्राकृत भाषा के साहित्यिक प्रयोग मिलते हैं, पालि में तो इसकी भरमार है, किंतु ई.पू. दूसरी शती से दूसरी ईस्वीं तक के बीच इसका प्रयोग और बढ़ा। इस काल की भाषा में छिटपुट साहित्य भी मिलता है। परंतु समग्र रूप में मध्यकालीन भाषा रूप की प्रभावी भूमिका निभाने वाली विद्यमान प्राकृत दूसरी से छठी शती तक ही साहित्यिक भाषा का स्थान पा सकी। फलस्वरूप अलंकार शास्त्रियों और वैयाकरणों द्वारा उल्लिखित और काव्य और नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा के लिए 'प्राकृत' शब्द रूढ़ हो गया। प्राकृत के अंतर्गत जैन आगमों की प्राकृत, साहित्यिक एवं नाटकीय प्राकृतें (अश्वघोष के नाटक, अशोक के शिलालेख, प्राकृत धम्मपद, अन्य प्राकृत साहित्य) सम्मिलित की जाती हैं।

प्राकृत के पाँच मुख्य भेद माने जाते हैं – शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री और पैशाची।

1) शौरसेनी – शौरसेनी प्राकृत, शूरसेन प्रदेश (मथुरा के आसपास) की भाषा रही है। संस्कृत नाटकों में गद्य भाषा के रूप में स्त्री और विदूषक पात्रों द्वारा इसका प्रयोग देखा जा सकता है। मध्यप्रदेश की भाषा होने के कारण यह संस्कृत के अधिक निकट रही।

2) मागधी – प्राच्य देश (मगध) की जन साधारण (लोक) की भाषा होने के कारण अन्य प्राकृतों की अपेक्षा इसके रूपों में अधिक परिवर्तन हुआ है। संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा इसके प्रयोग का विधान था। कालांतर में पालि को इसने सर्वाधिक प्रभावित किया।

3) अर्धमागधी – कोसल प्रदेश की भाषा थी। जैन आचार्यों ने शास्त्रों की रचना के लिए इसी भाषा को चुना। वे इसे 'आर्षी' कहते थे और आदि भाषा मानते थे। मध्य एशिया से प्राप्त अश्वघोष के नाटक 'सारिपुत्र प्रकरण' में अर्धमागधी का प्रयोग संस्कृत नाटकों में इस भाषा के प्रयोग का प्रमाण है। जैन ग्रंथों में तो यह उल्लिखित है कि भगवान महावीर के उपदेशों की भाषा अर्धमागधी थी, किंतु इसका प्रमाण उपलब्ध नहीं है। श्वेतांबर आगम ग्रंथों की अर्धमागधी का रूप नौवीं शती का प्रतीत होता है, किंतु गद्य की तुलना में पद्य की भाषा अधिक पुरानी प्रतीत होती है। अर्धमागधी में 18 देशी भाषाओं का मिश्रण माना जाता है। इस पर मुंडा का प्रभाव इस बात का प्रमाण है कि अर्धमागधी इस क्षेत्र की भाषा थी। वस्तुतः बौद्ध काल में यह भाषा समूचे उत्तर भारत की संपर्क भाषा थी, फलस्वरूप आवश्यकतानुसार इसने अन्य भाषा के भाविक रूपों को आत्मसात किया। अर्धमागधी पूर्व और पश्चिम की भाषा को एक रूप में जोड़ने का काम करती है। इसलिए यदि इस पर पूर्वी (मागधी) और पश्चिमी (शौरसेनी) के रूप गठन का प्रभाव है तो दूसरी तरफ पूर्वी-पश्चिमी भाषाएँ भी इससे प्रभावित हैं।

4) महाराष्ट्री - प्राकृत के इस भेद को 'प्राकृत वैयाकरण' ने आदर्श प्राकृत की संज्ञा से विभूषित किया है। यह सत्य है कि साहित्यिक प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत सर्वाधिक विकसित और संपन्न भाषा है। संस्कृत नाटकों में आए पद्य अंश इसी प्राकृत में हैं। इसमें महाकाव्य औ खंडकाव्य भी

मिलते हैं। 'सेतुबंध' (प्रवर सेन) तथा 'गौडवहो' (वाक्यतिराज) हाल की 'गाहा सप्तसती' तथा 'वज्जालग्ग' जैसी श्रेष्ठ काव्यात्मक रचनाओं की भाषा महाराष्ट्री ने दक्षिण में पहुँचकर स्थानीय लोक भाषा के प्रभावों को आत्मसात किया। दक्षिण से यह भाषा पुनः उत्तर की ओर काव्यभाषा के रूप में आई। उज्जैन तक फैली पुरानी कोसली ने भी इसे प्रभावित किया, स्वयं भी प्रभावित हुई। हिंदी के विकास में इस प्राकृत का महत्वपूर्ण अवदान है।

स्वर मध्य स्पर्श व्यंजनों का लोप इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है। यथा – लोक > लोअ, सागर > सायर। तात्पर्य यह कि क्, त्, य्, ग्, द्, व् पूर्णतया लुप्त हुए और ख्, फ्, घ्, ध्, भ् के स्थान पर केवल प्राणध्वनि 'ह्' बची। साधु > साहु, नाथ > नाह। शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृत की प्रमुख भिन्नता का आधार यही ध्वन्यात्मक परिवर्तन है, अन्यथा शौरसेनी महाराष्ट्री प्राकृत के अत्यधिक निकट है।

5) पैशाची – प्राकृत के इस भेद का व्यवहार पश्चिमोत्तर पंजाब और अफगानिस्तान में होता था (ग्रियर्सन)। कुछ लोग इसकी उत्पत्ति कैकेय प्रदेश में मानते हैं। चीनी, तुर्किस्तान के शिलालेखों तथा कुवलयमाल में प्राप्त रूपों के आधार पर इसे प्राकृतों में प्राचीनतम माना गया है। बाणभट्ट इसे भूत भाषा मानते हैं। इसकी कोई साहित्यिक रचना आज उपलब्ध नहीं है। हाँ, कुछ लोगों की मान्यता है कि गुणाढ्य की बड्डकहा (वृहत्कथा) मूलतः पैशाची में लिखी गई थी।

अपभ्रंश :

दरअसल पालि-प्राकृत-अपभ्रंश भाषा-परिवर्तन की क्रमिकता और फिर उसके धीरे-धीरे स्थिर होने की प्रक्रिया का परिणाम है। शब्द के धरातल पर अपभ्रंश की उपस्थिति पालि काल से ही दिखाई देने लगती है, जो पालि, प्राकृत से चलकर अपभ्रंश की भाषा का बाना पहनती है। भरत के नाट्यशास्त्र में भी अपभ्रंश के उदाहरण मिल जाते हैं। यह उकार-बहुला थी। भरत ने इसे आभीरोक्ति कहा। अपभ्रंश ने संस्कृत और प्राकृत से अलग अपनी सत्ता और साख साहित्यिक भाषा के रूप में छठी से सातवीं शती के बीच स्थापित कर ली थी। नौवीं शती में रुद्रट ने संस्कृत-प्राकृत के साथ अपभ्रंश का उल्लेख करते हुए देश भेद से इसके अनेक भेद कहे हैं, जिससे अपभ्रंश के विस्तार का पता चलता है। राजशेखर (10वीं शती) ने भी इसका उल्लेख किया है। 11वीं शती में प्राकृत वैयाकरण पुरुषोत्तम ने अपभ्रंश को शिष्ट वर्ग की भाषा स्वीकार किया। 12वीं शती में आचार्य हेमचंद्र ने अपभ्रंश का व्याकरण लिखा।

अपभ्रंश साहित्यिक दृष्टि से संस्कृत के पश्चात सर्वाधिक संपन्न और विस्तृत क्षेत्र की भाषा है। यह छठी शती तक साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी और इसमें उच्च स्तरीय काव्य रचनाएँ प्रारंभ हो चुकी थी। यह क्रम पंद्रहवी-सोलहवीं शती तक चला।

अपभ्रंश में वियोगात्मक प्रवृत्ति मुखर है। अपभ्रंश में प्राकृत की स्वर और व्यंजन सभी ध्वनियाँ विद्यमान हैं। 'ए', 'ओ' ह्रस्व ध्वनियों के लिए अपभ्रंश में नवीन लेखन चिह्न न बनाकर प्राकृत और संस्कृत की अनुलेखन पद्धति का अनुगमन किया गया। उत्तर भारत के लेखक ह्रस्व 'ए', 'ओ' के लिए 'इ', 'उ' का व्यवहार करते रहे। 'अ' के संवृत्त एवं विवृत्त भेदों की भिन्नता प्रदर्शन हेतु भी कोई चिह्न नहीं है। संस्कृत और प्राकृत की अपेक्षा 'अ' का उच्चारण भिन्न था। लुप्त मध्य व्यंजन के स्थान पर कहीं 'अ' मिलता है और कहीं 'य' श्रुति का समावेश है।

10.3.3 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

आधुनिक भाषाओं में उन भाषाओं को इंगित किया जाता है जिनका बीजवपन तो प्राकृत काल में ही हुआ था, किंतु उन्हें विकास का अवसर साहित्यिक पद से अपभ्रंश के हट जाने के बाद मिला। विभिन्न प्राकृतों से अंकुरित ये भाषाएँ अपभ्रंश काल में स्वतंत्र भाषिक स्वरूप प्राप्त कर लेती हैं। अपभ्रंश तक दक्षिण को छोड़कर शेष भारत में भाषिक ऐक्य की स्थिति थी। यह वह क्षेत्र था, जिसमें कभी संस्कृत, कभी पालि या कभी अपभ्रंश व्यापक संप्रेषण का माध्यम थी। भाषिक एकरूपता शासन सत्ता के एकीकरण या समन्वय का भी प्रमाण है। अपभ्रंश के ह्रास के साथ-साथ-साथ प्रांतीयता और क्षेत्रीयता का विकास हुआ और हर प्रांत या क्षेत्र की भाषा स्वतंत्र रूप से विकसित हुई। इन पर पूर्ववर्ती भाषाओं का भी प्रभाव है और समकालीन बोलियों का भी। फलस्वरूप स्वतंत्र रूप से विकसित ये भाषाएँ एक दूसरे के बहुत निकट हैं। भाषाओं का यह विकास लोकतांत्रिक भावना का भी परिचायक है। तात्पर्य यह कि संस्कृत, पालि, प्राकृत या अपभ्रंश क्षेत्र की वे बोलियाँ जो अपभ्रंश के ह्रास के पश्चात भाषा के रूप में उठ खड़ी होती है, वे आधुनिक भारतीय भाषाएँ कहलाई। निश्चय ही साहित्य के इतिहास या इतिहास के आधुनिक काल की अपेक्षा भारत के संदर्भ में यह भाषाओं का आधुनिक काल हैं। इन आधुनिक आर्य भारतीय आर्य भाषाओं के विकास के पीछे अपभ्रंश के विविध रूप विद्यमान हैं। जैसे –

अपभ्रंश	आधुनिक भारतीय भाषाएँ
शौरसेनी	पश्चिमी हिंदी (ब्रजभाषा, खड़ी बोली, बांगरु, कन्नौजी, बुंदेली)
राजस्थानी (मेवाती, मारवाड़ी, मालवी, जयपुरी)	
गुजराती	
अर्धमागधी	पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी)
मागधी	बिहारी (भोजपुरी, मैथिली, मगही)
बांग्ला	
उड़िया	
असमिया	

खस	पहाड़ी हिंदी
पैशाची	लहंदा
पंजाबी	
ब्राचड़	सिंधी
महाराष्ट्री	मराठी

(i) वर्गीकरण

भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण एक आधुनिक प्रयास है। इस वर्गीकरण का सर्वप्रथम प्रयत्न करने वाले भाषाविदों में डॉ. ग्रियर्सन, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी तथा डॉ. धीरेंद्र वर्मा प्रमुख हैं।

ग्रियर्सन का वर्गीकरण

19वीं शताब्दी के अंत में डॉ. सर जार्ज ग्रियर्सन नामक अंग्रेज़ भारत में प्रशासनिक सेवा में थे। उन्होंने भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण के आधार पर 12 भागों में 'भारतीय भाषा सर्वेक्षण' (A Linguistic Survey of India) नामक बृहत ग्रंथ प्रस्तुत किया है। उस ग्रंथ में उन्होंने सारी भारतीय भाषाओं की शब्दावली, रूपरचना आदि व्याकरणिक विशेषताओं के विश्लेषण के आधार पर भारतीय आर्य भाषाओं को विभिन्न परिवारों में और परिवार के भीतर समूहों या वर्गों में विभाजित किया।

ग्रियर्सन भारतीय आर्य भाषाओं को दो चरणों में वर्गीकरण करते हैं। पहले वे इन भाषाओं को बाहरी, मध्य तथा भीतरी नामक तीन उपशाखाओं में बाँटते हैं, फिर इन उपशाखाओं के भीतर मिलती-जुलती भाषाओं को रखते हैं। ग्रियर्सन का वर्गीकरण इस प्रकार हैं–

(अ) बाहरी उपशाखा

बाहरी उपशाखा के तीन समुदाय हैं – उत्तरी-पश्चिमी समुदाय, दक्षिणी समुदाय और पूर्वी समुदाय। उत्तरी-पश्चिमी समुदाय के अंतर्गत लहंदा अथवा पश्चिमी पंजाबी और सिंधी समाहित हैं तो दक्षिणी समुदाय के अंतर्गत मराठी और पूर्वी समुदाय के अंतर्गत ओड़िया, बिहारी, बांगला, असामिया सम्मिलित हैं।

(आ) मध्य उपशाखा

यह शाखा बीच के समुदाय के रूप में वर्गीकृत है जिसके अंतरगत पूर्वी हिंदी समाहित है।

(इ) भीतरी उपशाखा

इस उपशाखा के अंतर्गत दो समुदाय हैं – केंद्रीय अथवा भीतरी समुदाय और पहाड़ी समुदाय। केंद्रीय अथवा भीतरी समुदाय के अंतर्गत पश्चिमी हिंदी, पंजाबी, गुजराती, भीली, खानदेशी और राजस्थानी निहित हैं तथा पहाड़ी समुदाय के अंतर्गत पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली, मध्य या केंद्रीय पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी समाहित हैं।

भारतीय आर्य भाषाएँ

बाहरी उपशाखा　　मध्य उपशाखा　　भीतरी उपशाखा

उत्तरी-पश्चिमी समुदाय (लहंदा अथवा पश्चिमी पंजाबी, सिंधी)

बाहरी उपशाखा　　दक्षिणी समुदाय (मराठी)

पूर्वी समुदाय (ओड़िया, बिहारी, बांग्ला, असमिया)

मध्य उपशाखा　　बीच का समुदाय (पूर्वी हिंदी)

केंद्रीय अथवा भीतरी समुदाय

(पश्चिमी हिंदी, पंजाबी, गुजराती, भीली, खानदेशी, राजस्थानी)

भीतरी उपशाखा

पहाड़ी समुदाय

(पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली, मध्य या केंद्रीय पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी)

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का वर्गीकरण

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अपने 'बांगला भाषा का उद्गम और विकास' शीर्षक शोध ग्रंथ में ग्रियर्सन के वर्गीकरण का खंडन करते हुए अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार हैं –

	उदीच्य (उत्तरी)	सिंधी, लहंदा, पूर्वी पंजाबी
आधुनिक	मध्यदेशीय	पश्चिमी हिंदी
भारतीय	प्रतीच्य (पश्चिमी)	गुजराती, राजस्थानी
आर्यभाषा	प्राच्य (पूर्वी)	कोसली या पूर्वी हिंदी,
		मागधी प्रसूत (बिहारी, ओडिया, बांग्ला, असमिया)
	दाक्षिणात्य (दक्षिणी)	मराठी

डॉ. धीरेंद्र वर्मा का वर्गीकरण

डॉ. धीरेंद्र वर्मा का वर्गीकरण उपर्युक्त दोनों वर्गीकरण की व्यावहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखकर किया गया वर्गीकरण है। डॉ. ग्रियर्सन तथा डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के वर्गीकरणों की तुलना करने पर सबसे पहले यह विसंगति उभरती है कि दोनों में भाषाओं की संख्या असमान है। ग्रियर्सन 17 भाषाओं का उल्लेख करते हैं तो चटर्जी 12 भाषाओं का। सुनीति कुमार चटर्जी ने पहाड़ी भाषाओं को छोड़ दिया। ग्रियर्सन के वर्गीकरण का केंद्रीय तथा मध्य पहाड़ी भाषा समूह वास्तव में बोलियों का समूह है। पर चटर्जी इन्हें भाषा नहीं मानते। इसी प्रकार बिहारी या राजस्थानी किसी भाषा का नाम न होकर किन्हीं बोलियों या भाषाओं का समूह है जबकि सिंधी, लहंदा, असमिया, ओड़िया, गुजराती या पंजाबी भाषाएँ हैं – समूह नहीं। आज के विचार से ये सब (पहाड़ी, बिहारी, राजस्थानी) हिंदी भाषा के क्षेत्रीय रूप हैं। अतः इन्हें एक समुदाय या समूह में रखना जरूरी है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के वर्गीकरण की त्रुटि को सुधारते हुए केवल हिंदी क्षेत्र को एक वर्ग में जोड़ दिया है। यथा-

	उत्तरी वर्ग	सिंधी, लहंदा, पंजाबी
आधुनिक	मध्यदेशीय वर्ग	राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी, पहाड़ी
भारतीय	पश्चिमी वर्ग	गुजराती
आर्यभाषा	पूर्वी वर्ग	ओडिया, बांग्ला, असमिया
	दक्षिणी वर्ग	मराठी

(ii) संक्षिप्त परिचय

(अ) लहंदा :

पंजाबी भाषा की पश्चिमी उपभाषाओं को 'लहंदा' कहा जाता है। इस शब्द का अर्थ है 'उतरता' या 'लता हुआ।' यह पश्चिम का संकेतक है क्योंकि सूर्य पश्चिम में ढलता है। पंजाब के पश्चिमी क्षेत्र (वर्तमान पाकिस्तान) में बोली जाने के कारण इसका नाम 'लहंदा' पड़ा। इसे पश्चिमी पंजाबी भी कहा जाता है। इसका परिनिष्ठित रूप शाहपुर जिले में मिलता है। हिंदको, पोठोहारी और सराइकी इसकी मुख्य उपभाषाएँ हैं। पोहवारी, अवाणकारी, पुंछी, चिमाली आदि इसकी बोलियाँ हैं। कुछ विद्वान पंजाबी से समानता के कारण इसे पंजाबी की उपभाषा भेए मानते हैं; पर यह स्वतंत्र भाषा है। इस भाषा पर सिंधी और कश्मीरी का भी पर्याप्त प्रभाव है। लहंदा में अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य है। सिंधी की तरह क्रिया में सार्वनामिक प्रत्ययों का प्रयोग होता है। इसकी लिपि फारसी भी है और गुरुमुखी भी। गुरुनानक, संत फरीद, वारिसशाह की रचनाएँ लहंदा में ही है इसमें 14वीं शती से साहित्य मिलने लगता है।

(आ) सिंधी :

सिंधी भाषा के पश्चिमी हिस्से और मुख्य रूप से गुजरात और पाकिस्तान के सिंध प्रांत में बोली जाने वाली एक प्रमुख भाषा है। माना जाता है कि इसका विकास ब्राचड़ अपभ्रंश से हुआ। सिंध का संबंध संस्कृत 'सिंधु' शब्द से है, जिससे हिंद, हिंदू, हिंदी शब्द बने। विभाजन के पूर्व यह मुख्य रूप से सिंध प्रांत की भाषा थी परंतु आज यह क्षेत्र पाकिस्तान का अंग है। विभाजन के बाद अनके हिंदी भाषाभाषी भारत के विभिन्न भागों में आकर बस गए और उन्होंने अपने साथ इस भाषा को भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैलाया। परंतु यह भाषा केवल समुदाय विशेष से जुड़कर उनके घरों की भाषा बनकर रह गई। न तो उसके साहित्य का विकास हुआ और न ही वह व्यापक संपर्क का माध्यम बन पाई। इसकी छह उपभाषाएँ मानी जाती हैं – सिदाकी, विचोली, लाडी, थरेली, लासी और कच्छी। विचोली इसकी परिनिष्ठित उपभाषा है। अंतःस्फोटक ध्वनियाँ (ब्, ज्, ड्, ग्) सिंधी की ध्वन्यात्मक संरचना की मुख्य विशेषता है। सभी शब्द स्वरांत हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश के प्रभाव के कारण इसकी पुल्लिंग संज्ञाएँ अकारांत तथा ओकारांत हैं। लिंग और वचन दो हैं। सर्वनाम में हिंदी से भिन्नता है। 'मैं' के लिए 'माँ', 'आऊँ' तथा 'अपने' के लिए 'पंहाजे' का प्रयोग होता है। अवधी की भाँति क्रिया के साथ सार्वनामिक प्रत्यय का प्रयोग होता है। सिंधी में अरबी-फारसी के बहुत से शब्द हैं। पहले अरबी की ही लिपि का प्रयोग सिंधी के लेखन के लिए होता था किंतु अब देवनागरी और गुरुमुखी लिपि में भी लिखी जा रही है। इसके प्रमुख कवि हैं शाह अब्दुल लतीफ़ सचल, साई, दलपत वेवसि अजीज। कलीच बेग, भेरूमल, लालचंद, अमर डिनोमल, जेठामल इसके उल्लेखनीय गद्य लेखक हैं। सिंधी सूफियों के दोहे प्रसिद्ध हैं।

(इ) पंजाबी :

यह पूर्वी पंजाब (भारत) तथा पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) की भाषा है। इस क्षेत्र में पाँच नदियाँ – रावी, सतलज, व्यास, चेनाब और झेलम हैं इसीलिए उसे पंजाब कहा जाता है – पंच (पाँच) + आब (नदियाँ)। इसकी डोगरी आदि कुछ उपभाषाएँ जम्मू क्षेत्र तक फैली हैं। माझी, डोगरी, मालबाई, राठी, मट्टियानी इसकी प्रमुख बोलियाँ हैं। पंजाबी की लिपि गुरुमुखी तथा डोगरी की टाकरी है। पंजाबी बोलने वाले सिक्खों की प्रधानता के कारण इसे 'सिक्खी' भी कहा जाता है। इस भाषा का निखरा रूप अमृतसर के आसपास मिलता है। तेरहवीं शताब्दी से इसका साहित्य मिलता है। गुरुनानक एवं अन्य गुरुओं तथा संतों की वाणी का संग्रह 'गुरु ग्रंथ साहिब' पंजाबी का प्रसिद्ध एवं प्राचीन धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथ है। पंजाबी की लोक साहित्य परंपरा समृद्ध है। नानक, वारिसशाह, मोहनसिंह, अमृता प्रीतम इसके प्रमुख साहित्यकार हैं। स्टेशन को सटेशन, मित्र को मित्तर, पुत्र को पुत्तर आदि कहना पंजाबी की विशेषता है। पंजाबी स्त्रीलिंग

विशेषणों का आवश्यकतानुसार वचन परिवर्तित हो जाता है। सर्वनाम रचना भी अलग है। हिंदी के हम, तुम पंजाबी में अस्सी, तुस्सी बन जाते हैं।

(ई) गुजराती :

गुजरात की भाषा। गुजरात क्षेत्र में 'गुर्जर' जाति का प्रभुत्व था। गुर्जर से ही गुजरात और इसीसे गुजराती बना। महाराष्ट्र और गुजरात के रूप में मुंबई के विभाजन के बाद गुजरात के राजकाज की भाषा बनी। मुंबई में गुजराती बोलने वालों की संख्या पर्याप्त है। इसकी प्रमुख उपभाषाएँ हैं - कालवाड़ी, सोरठी, गोहिलावाड़ी, काठियावाड़ी। अहमदाबाद के आसपास की गुजराती परिनिष्ठित और साहित्यिक गुजराती है। नागरी, बंबइयाँ, गासडिया, सूरती, पाटीदारी, बड़ोदरी, पट्टनी आदि इसकी उपबोलियाँ हैं।

गुजराती साहित्य बारहवीं शती के आसपास से प्राप्त होता है। हेमचंद्र के व्याकरण में प्राचीन गुजराती के उदाहरण मिलते हैं। नरसी मेहता, प्रेमानंद, सामल भट्ट, रेवाशंकर, गोवर्धनराम त्रिपाठी, नानालाल, कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी, रमणलाल देसाई, काका कालेलकर, उमाशंकर जोशी आदि प्रमुख साहित्यकार हैं। गुजराती की अपनी लिपि है जो देवनागरी से समानता रखती है। यह लिपि कैथी लिपि से मिलती जुलती है।

नागर अपभ्रंश से विकसित गुजराती में हिंदी के समान ही मध्यकालीन भाषा के संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर पूर्व स्वर की क्षतिपूर्ति के लिए दीर्घीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान है। बोलचाल में 'क्', 'ख्', 'ग्' ध्वनियाँ 'च्', 'छ्', 'ज्' में बदल जाती हैं। जैसे : लाग्यो – लाज्यो। दंत्य और मूर्धन्य ध्वनियाँ आपस में बदल जाती हैं। जैसे : दीढ़ो – डीढ़ो। वचन दो और लिंग तीन हैं। हिंदी परसर्ग 'का', 'के', 'की' और 'लिए' गुजराती में क्रमशः 'नो', 'तो', 'नी' और 'मारे' बन जाते हैं।

(उ) मराठी :

महाराष्ट्र की भाषा। इसमें विदर्भ, मराठवाडा, कोंकण आदि प्रदेश शामिल हैं। मुंबई, पूना और नागपुर मराठी के केंद्र हैं। मराठी की कई बोलियाँ हैं लेकिन पूना के पास बोली जाने वाली मराठी परिनिष्ठित मराठी है। कोंकणी बोली द्रविड भाषाओं से प्रभावित है। मराठी की मूल लिपि 'मोडी' है। साहित्य और राजकाज में प्रयुक्त मराठी के लिए देवनागरी लिपि ही मान्य है। यह माना जाता है कि मराठी का विकास महाराष्ट्री प्राकृत से हुआ लेकिन यह विवादास्पद है। महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी की परवर्ती मध्यक्षेत्र की परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा थी। यह दक्षिण से होकर उत्तरी क्षेत्र में आई। मुकुंद राय मराठी के आदिकवि हैं। नामदेव, ज्ञानदेव, तुकाराम, रामदास, श्रीधर, एकनाथ, रामजोशी, हरीनारायण आप्टे, विजय तेंदुलकर आदि मराठी के

प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। ज्योतिबा फुले, दया पवार, शरण कुमार लिंबाले, शांताबाई कांबले, बेबी कांबले आदि ने मराठी साहित्य को समृद्ध किया।

(ऊ) बांग्ला :

'बांग्ला' मागधी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से विकसित है। बांग्ला अविभाजित बंगाल की भाषा है। इसके दो रूप हैं – पूर्वी और पश्चिमी। पूर्वी का केंद्र ढाका है जो बांग्लादेश की राजधानी है और पश्चिमी का कोलकाता। बांग्ला के मौखिक और लिखित रूपों में ही नहीं, नागर और ग्रामीण रूपों में भी अंतर पाया जाता है। पश्चिमी साहित्य के संपर्क में सबसे पहले बांग्ला भाषा ही आई, फलस्वरूप अनेक नवीन साहित्यिक विधाओं का सूत्रपात पहले पहल बांग्ला में ही हुआ। भक्त कवि चंडीदास एवं चैतन्य महाप्रभु बांग्ला के प्राचीन साहित्यकार हैं। आधुनिक काल के प्रमुख साहित्यकारों में राजा राममोहन राय, माइकेल मधुसूदन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, बंकिमचंद्र, रवींद्रनाथ ठाकुर, विजेंद्रलाल राय, शरतचंद्र, तारा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी बांग्ला साहित्य का प्रारंभ 950 ई. से मानते हैं। साहित्यिक बांग्ला संस्कृत के तत्सम शब्दों से भरी पड़ी है। बांग्ला में आ-ओ (जल-जोल, कवि-कोवि), य-ज (योग-जोग) हो जाते हैं।

(ऋ) असमी :

असमी (असमिया) असम की भाषा है। यह मागधी प्राकृत के पूर्व रूप से विकसित हुई हैं। सांस्कृतिक चेतना और जनजागृति के कारण असम में असमी के प्रचार-प्रसार के लिए आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। नवलेखन का प्रचार-प्रसार बढ़ा। असमी पर चीनी-तिब्बती परिवार की कुछ भाषाओं का प्रभाव है। हेम सरस्वती को असमी साहित्य का कवि माना जाता है। क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से असमिया के कई उपरूप मिलते हैं। इनमें से दो मुख्य हैं - पूर्वी रूप और पश्चिमी रूप। साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से पूर्वी रूप को ही मानक माना जाता है। पूर्वी की अपेक्षा पश्चिमी रूप में बोलीगत विभिन्नताएँ अधिक हैं। असमिया के इन दो मुख्य रूपों में ध्वनि, व्याकरण तथा शब्दसमूह की दृष्टि से काफी अंतर हैं। असमिया के शब्दसमूह में संस्कृत तत्सम, तद्भव तथा देशज के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं। असमी भाषा में सामान्यत: तद्भव शब्दों की प्रधानता है। हिंदी-उर्दू के माध्यम से फारसी, अरबी तथा पुर्तगाली और कुछ अन्य यूरोपीय भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं।

भारतीय आर्यभाषाओं की शृंखला में पूर्वी सीमा पर स्थित होने के कारण असमिया कई आर्येतर भाषापरिवारों से घिरी हुई है। इस स्तर पर सीमावर्ती भाषा होने के कारण उसके शब्दसमूह में इन भाषाओं के कई स्रोतों के लिए हुए शब्द मिलते हैं। जैसे (1) ऑस्ट्रो एशियाटिक- (अ) खासी, (आ) कोलारी, (इ) मलायन (2) तिब्बती-बर्मी-बोडो(3) थाई-अहोम।

आर्येतर भाषाओं के प्रभाव को असम के अनेक स्थाननामों में भी देखा जा सकता है। ऑस्ट्रिक, बोडो तथा अहोम के बहुत से स्थान नाम ग्रामों, नगरों तथा नदियों के नामकरण की पृष्ठभूमि में मिलते हैं। अहोम के स्थान नाम प्रमुखत: नदियों को दिए गए नामों में हैं।

(ए) ओड़िया :

मागधी के दक्षिणी रूप से विकसित भाषा। तमिल एवं मराठी के शब्द भी इस भाषा में मिल जाते हैं। ओड़िया का प्राचीन साहित्य कृष्ण भक्ति का साहित्य है। बलरामदास, जगन्नाथ, दीनकृष्ण, गोपालकृष्ण आदि मध्यकाल के प्रमुख कवि हैं। आधुनिक काल के कवियों में फकीर मोहन सेनापति, गंगाधर, गोपालचंद्र, नंदकिशोर, कुंतनकुमारी, नीलकंठ दास आदि उल्लेखनीय हैं। गोपीनाथ महंति, दीप्तिरंजन पटनायक आदि गद्य लेखक हैं। इसकी लिपी का विकास भी नागरी लिपि के समान ही ब्राह्मी लिपि से माना जाता है। अंतर केवल इतना है कि नागरी लिपि की ऊपर की सीधी रेखा ओड़िया लिपि में वर्तुल हो जाती है और लिपि के मुख्य अंश की अपेक्षा अधिक जगह घेर लेती है। विद्वानों का कहना है कि ओड़िया में पहले तालपत्र पर लौह लेखनी से लिखने की रीति प्रचलित थी और सीधी रेखा खींचने में तालपत्र के कट जाने का डर था। अत: सीधी रेखा के बदले वर्तुल रेखा दी जाने लगी।

(ऐ) नेपाली :

यह पहाड़ी का पूर्वी रूप है तथा नेपाल की राजभाषा है। थरूहरी और डोटाल इसकी दो प्रमुख बोलियाँ हैं। इसके उच्चारण में अनुनासिकता अधिक है। लिंग भेद की विचित्रता के लिए प्रसिद्ध है। नेपाली भाषा या खस कुरा नेपाल की राष्ट्रभाषा था। यह भाषा नेपाल की लगभग 44% लोगों की मातृभाषा भी है। यह भाषा नेपाल के अतिरिक्त भारत के सिक्किम, पश्चिम बंगाल, उत्तर-पूर्वी राज्यों (आसाम, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय) तथा उत्तराखण्ड के अनेक भारतीय लोगों की मातृभाषा है। भूटान, तिब्बत और म्याँमार के भी अनेक लोग यह भाषा बोलते हैं।

(ओ) सिंहली :

प्रमुख क्षेत्र दक्षिणी लंका है। सिंहली भाषा श्रीलंका में बोली जाने वाली सबसे बड़ी भाषा है। सिंहली के बाद श्रीलंका में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा तमिल है। सिंहल द्वीप की यह विशेषता है कि उसमें बसने वाली जाति भी "सिंहल" कहलाती चली आई है और उस जाति द्वारा व्यवहृत होने वाली भाषा भी 'सिंहल'। उत्तर भारत की एक से अधिक भाषाओं से मिलती-जुलती सिंहल भाषा का विकास उन शिलालेखों की भाषा से हुआ है जो ई. पू. दूसरी-तीसरी शताब्दी के बाद से लगातार उपलब्ध है। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के दो सौ वर्ष बाद सम्राट अशोक के पुत्र महेंद्र सिंहल द्वीप पहुँचे, तो 'महावंश' के अनुसार उन्होंने सिंहल द्वीप के लोगों को

द्वीप भाषा में ही उपदेश दिया था। महामति महेंद्र अपने साथ "बुद्धवचन" की जो परंपरा लाए थे, वह मौखिक ही थी। वह परंपरा या तो बुद्ध के समय की 'मागधी' रही होगी, या उनके दो सौ वर्ष बाद की कोई ऐसी "प्राकृत" जिसे महेंद्र स्वयं बोलते रहे होंगे। सिंहल इतिहास की मान्यता है कि महेंद्र स्थविर अपने साथ न केवल त्रिपिटक की परंपरा लाए थे, बल्कि उनके साथ उसके भाष्यों अथवा उसकी अट्ठकथाओं की परंपरा भी। उन अट्ठकथाओं का बाद में सिंहल अनुवाद हुआ।

(औ) मैथिली :

मैथिली भारत के उत्तरी बिहार और नेपाल के तराई क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा है। यह हिंद आर्य परिवार की सदस्य है। इसका प्रमुख स्रोत संस्कृत भाषा है जिसके शब्द "तत्सम" वा "तद्भव" रूप में मैथिली में प्रयुक्त होते हैं। यह भाषा बोलने और सुनने में बहुत ही मोहक लगता है। मैथिली भारत में मुख्य रूप से दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, समस्तीपुर, मुंगेर, मुजफ्फरपुर, बेगूसराय, पूर्णिया, कटिहार, किशनगंज, शिवहर, भागलपुर, मधेपुरा, अररिया, सुपौल, वैशाली, सहरसा, रांची, बोकारो, जमशेदपुर, धनबाद और देवघर जिलों में बोली जाती है| पहले इसे मिथिलाक्षर तथा कैथी लिपि में लिखा जाता था जो बांग्ला और असमिया लिपियों से मिलती थी पर कालान्तर में देवनागरी का प्रयोग होने लगा। मिथिलाक्षर को तिरहुता या वैदेही लिपी के नाम से भी जाना जाता है। यह असमिया, बांगला व उड़िया लिपियों की जननी है। उड़िया लिपी बाद में द्रविड़ भाषाओं के संपर्क के कारण परिवर्तित हुई। मैथिली साहित्य का अपना समृद्ध इतिहास रहा है और चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी के कवि विद्यापति को मैथिली साहित्य में सबसे ऊँचा दर्जा प्राप्त है। विद्यापति के बाद के काल में गोविंद दास, चंदा झा, मनबोध, पंडित सीताराम झा, जीवनाथ झा (जीवन झा) प्रमुख साहित्यकार माने जाते हैं। भारत की साहित्य अकादमी द्वारा मैथिली को साहित्यिक भाषा का दर्जा पंडित नेहरू के समय 1965 से हासिल है। 22 दिसंबर 2003 को भारत सरकार द्वारा मैथिली को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल किया गया है और नेपाल सरकार द्वारा मैथिली को नेपाल में दूसरे स्थान में रखा गया है।

(क) हिंदी और उसकी उपभाषाएँ : हिंदी एक स्थल की भाषा नहीं, बल्कि पाँच उपभाषाओं एवं 21 बोलियों का समूह है। पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी पाँच उपभाषाएँ हैं। इनका विवरण इस प्रकार है -

उपभाषाएँ	बोलियाँ अथवा हिंदी और उसकी उपभाषाएँ

पश्चिमी हिंदी कौरवी या खड़ी बोली, बाँगरू या हरियाणवी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, दक्खिनी

पूर्वी हिंदी अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी

राजस्थानी मारवाड़ी(पश्चिमी राजस्थानी), जयपुरी या ढुँढाड़ी(पूर्वी राजस्थानी), मेवाती (उत्तरी राजस्थानी), मालवी(दक्षिणी राजस्थानी),

बिहारी भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका, बज्जिका

पहाड़ी कुमांऊनी, गढवाली, नेपाली

10.4 : पाठ सार

विश्व भर की भाषाओं का सबसे बड़ा परिवार है - भारोपीय भाषा परिवार। इसकी एक प्रमुख शाखा है – भारतीय ईरानी शाखा। भारतीय आर्य भाषा इसकी एक उपशाखा है जिसमें संस्कृत, हिंदी, उर्दू, बांग्ला, कश्मीरी, सिंधी, पंजाबी, नेपाली, रोमानी, असमिया, गुजराती, मराठी आदि भाषाएँ शामिल हैं। इनमें संस्कृत प्राचीनतम है और प्रायः उसे अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की जननी माना जाता है। इस विकास के तीन चरण माने जाते हैं –

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (5000/1500 ई.पू. – 500 ई.पू.)
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा (500 ई.पू. – 1000 ई.)
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा (1000 ई. – वर्तमान)

संस्कृत प्राचीन आर्य भाषा है। इसके दो रूप हैं – वैदिक संस्कृत या छांदस और लौकिक संस्कृत। वैदिक संस्कृत को प्रायः1500 ई.पू. से 800 ई.पू. तथा लौकिक संस्कृत को 800 ई.पू. – 500 ई.पू. की अवधि में विद्यमान माना जाता है। वैदिक संस्कृत वेदों की भाषा है और नई खोजों के अनुसार ऋग्वेद के द्वितीय से आठवें मंडल तक की भाषा का काल ई.पू. 5000 वर्ष मान्य हो चुका है। अतः वैदिक संस्कृत का काल 5000 ई.पू. - 500 ई.पू. मानना उचित है। आगे 3 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ प्राप्त होती हैं- पालि (500 ई.पू. से ईसा की पहली शताब्दी), प्राकृत (दूसरी से छठी शताब्दी ईस्वी तक) – जैन साहित्य और अपभ्रंश (सातवीं शती से ग्यारहवीं शती ईस्वी तक)।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में उन भाषाओं को शामिल किया जाता है जिनका बीजवपन तो प्राकृत काल में ही हुआ था, किंतु उन्हें विकास का अवसर साहित्य की भाषा के पद से अपभ्रंश के हट जाने के बाद मिला। विभिन्न प्राकृतों से अंकुरित ये भाषाएँ अपभ्रंश काल में स्वतंत्र भाषिक स्वरूप प्राप्त कर लेती हैं।शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिंदी (ब्रजभाषा, खड़ी

बोली, बांगरु, कन्नौजी, बुंदेली और दक्खिनी), राजस्थानी (मेवाती, मारवाड़ी, मालवी, जयपुरी) और गुजराती का विकास हुआ। अर्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी) तथा मागधी अपभ्रंश से बिहारी (भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका, बज्जिका), बांग्ला, उड़िया और असमिया भाषाएँ विकसित हुईं। खस अपभ्रंश से पहाड़ी हिंदी का, पैशाची अपभ्रंश से लहंदा और पंजाबी का, ब्राचड़ अपभ्रंश से सिंधी का, महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी का विकास हुआ। जॉर्ज ग्रियर्सन, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने अपने-अपने ढंग से इन भाषाओं का वर्गीकरण किया है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा द्वारा किया गया वर्गीकरण सर्व समावेशी है जो इस प्रकार है-

	उत्तरी वर्ग : सिंधी, लहंदा, पंजाबी
आधुनिक	मध्यदेशीय वर्ग : राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी, पहाड़ी
भारतीय	पश्चिमी वर्ग : गुजराती
आर्यभाषा	पूर्वी वर्ग : ओडिया, बांग्ला, असमिया
	दक्षिणी वर्ग : मराठी।

10.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित तथा स्पष्ट हुए है –

1. भारतीय आर्यभाषा परिवार अत्यंत विस्तृत और व्यापक है ।
2. संस्कृत अपने वैदिक और लौकिक भेड़ों सहित प्राचीन भारतीय आर्य भाषा मानी जाती है ।
3. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के अंतर्गत पाली, पाकृत और अपभ्रंश के विभिन्न रूपों का समावेश है।
4. हिंदी सहित विभिन्न आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास 10 वीं शताब्दी के बाद हुआ ।

10.6 : शब्द संपदा

1. वैदिक संस्कृत = वेदों की भाषा
2. लौकिक संस्कृत = संस्कृत साहित्य की भाषा
3. पालि = बौद्धों की साहित्यिक भाषा
4. त्रिपिटक = बौद्ध उपदेशों का संग्रह
5. प्राकृत = जैनों की साहित्यिक भाषा

10.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्निखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए.

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के संबंध में संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिए।
3. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा 'प्राकृत' की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
4. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
5. ग्रियर्सन और सुनीति कुमार चटर्जी के भारतीय भाषा वर्गीकरण पर चर्चा कीजिए।

खंड – (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250 शब्दों में लिखिए।

1. सुनीति कुमार चटर्जी के भारतीय भाषा वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
2. पालि की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
3. अपभ्रंश की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. मैथिली भाषा की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
5. सिंधी भाषा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
6. गुजराती की विशेषताओं का परिचय दीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं का काल है ______।

   (अ)1500 ई. पू – 500 ई. पू. (आ) 1000 ई - वर्तमान (इ) 500ई. - 1000 ई

2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का काल है ।

   (अ)1500 ई. पू – 500 ई. पू. (आ) 1000 ई - वर्तमान (इ) 500ई. - 1000 ई

3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का काल है ।

   (अ)1500 ई. पू – 500 ई. पू. (आ) 1000 ई - वर्तमान (इ) 500ई. - 1000 ई

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. संस्कृत साहित्यिकी भाषा को __________संस्कृत कहा जाता है।
2. पैशाची _______________एक प्रकार है।
3. भारतीय भाषा सर्वेक्षण _______________भागों वाला बृहत ग्रंथ है ।

III. सुमेल कीजिए।

1. पश्चिमी हिंदी	(अ) खड़ी बोली
2. पूर्वी हिंदी	(आ) छत्तीसगढ़ी
3. राजस्थानी	(इ) मैथिलि
4. बिहारी	(ई) नेपाली
5. पहाड़ी	(उ) मारवाड़ी

10.8 : पठनीय पुस्तकें

1. शर्मा, राजमणि (2010 आवृत्ति). हिंदी भाषा : इतिहास और स्वरूप

2. शर्मा, रामविलास (2011 आवृत्ति). भाषा और समाज

3. तिवारी, भोलानाथ (2007 आवृत्ति). भाषा विज्ञान

इकाई 11: हिंदी की बोलियाँ

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 मूल पाठ: हिंदी की बोलियाँ

11.3.1 हिंदी भाषा समाज की बहुबोलीयता

11.3.2 उपभाषाएँ और बोलियाँ

11.3.3 पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी

11.3.4 खड़ीबोली / कौरवी

11.3.5 ब्रजभाषा

11.3.6 अवधी

11.3.7 दक्खिनी हिंदी

11.3.8 हिंदी : नामकरण और व्याप्ति क्षेत्र

11.3.9 हिंदी भाषा का उद्भव तथा विकास

11.3.10 हिंदी भाषा का शब्द समूह

11.4 पाठ सार

11.5 पाठ की उपलब्धियाँ

11.6 शब्द संपदा

11.7 परीक्षार्थ प्रश्न: एडिट

11.8 पठनीय पुस्तकें

11.1 : प्रस्तावना

मानवों के ऐसे समुदाय को किसी भाषा का भाषा समाज या भाषा समुदाय कहा जाता है जिसके सदस्य एक समान वाक् संकेतों का प्रयोग करते हैं। वाक् संकेतों की व्यापक समानता के बावजूद कोई भी भाषा समाज समरूपी नहीं होता। कहने का अभिप्राय यह है कि एक भाषा समाज में कई प्रकार के वाक् आचरण अलग-अलग बोलियों के रूप में विद्यमान रहते हैं। यहाँ तक कि इन बोलियों के व्याकरण भी एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। “इसलिए भाषा समुदाय की भाषा एकरूपी न होकर विषमरूपी होती है। यद्यपि ये भिन्नताएँ इतनी अधिक नहीं होतीं कि

समीप की बोलियों की पारस्परिक बोधगम्यता में बाधा पड़े।" (श्रीवास्तव, रवींद्रनाथ (1990 तृतीय संशोधित संस्करण). हिंदी का सामाजिक संदर्भ. आगरा : केंद्रीय हिंदी संस्थान, पृ. 23)।

11.2 : उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करके आप-

- हिंदी भाषा समाज की बहुबोलीयता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी की उपभाषाओं और बोलियों के वर्गिकरण को समझ सकेंगे।
- हिंदी भाषा के उद्भव, विकास, नामकरण तथा व्याप्ति क्षेत्र के बारे में जान सकेंगे।
- हिंदी भाषा के शब्द समूह की प्रकृति को समझ सकेंगे।

11.3 : मूल पाठ : हिंदी की बोलियाँ

11.3.1 हिंदी भाषा समाज की बहुबोलीयता

किसी भाषा समाज में उपलब्ध विभिन्न वाक् आचरणों को उस भाषा समाज में प्रचलित विभिन्न 'कोड' के रूप में पहचाना जाता है। उदाहरण के लिए : हिंदी के भाषा समाज को देखा जा सकता है। यह एक बहुबोली समुदाय है जिसमें ब्रज, अवधी, बुंदेली, बघेली, मारवाड़ी और खड़ीबोली आदि भिन्न भिन्न बोलियाँ या वाक् आचरण विद्यमान है। इनमें से ही एक बोली (खड़ीबोली) सम्मानित बनकर समुदाय की भाषा बनी है जो अपने बोली क्षेत्र की सीमाओं को तोड़कर अन्य बोली क्षेत्रों तक फैली हुई है।

भौगोलिक दृष्टि से हिंदी के भाषा समाज का विस्तार बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र तक व्याप्त है। (इसे राजभाषा नियम के अंतर्गत 'क' क्षेत्र कहा गया है।) इसके अंतर्गत काफी बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो प्रायः केवल अपनी-अपनी स्थानीय या क्षेत्रीय बोलियाँ और उपबोलियाँ ही बोलते हैं। इन बोलियों में खड़ीबोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुंदेली, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, नेपाली, कुमाऊँनी, गढ़वाली, मैथिली, भोजपुरी, मगही, अंगिका और बज्जिका नामक बोलियाँ सम्मिलित हैं। (स्मरणीय है कि वर्तमान में मैथिली और नेपाली को भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में भाषा के रूप में स्थान प्राप्त है। परंतु भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिए इन्हें हिंदी भाषा समाज की बोलियों के रूप में ही यहाँ ग्रहण किया जा रहा है।)। इस भाषा समाज में पाई जाने वाली उपबोलियों में शामिल हैं - ब्रजभाषा की मथुरही, भरतपुरी, कठेरिया; कन्नौजी की तिरहारी, संडीली, पचरुआ; बुंदेली की पंवारी, भदावरी, बनाफरी तथा खड़ीबोली की पश्चिमी और पूर्वी हिंदी। इस रूप में हिंदी की उपबोलियों की संख्या दो सौ से

ऊपर है। इन लोगों से काफी कम संख्या ऐसे लोगों की हैं जो औपचारिक स्थितियों में हिंदी का प्रयोग करते हैं तथा अनौपचारिक स्थितियों में अपनी-अपनी बोलियों और उपबोलियों का। सबसे कम संख्या ऐसे लोगों की है जो अपनी बोलियों-उपबोलियों का प्रयोग अपने परिवार के लोगों तथा अन्य अत्यंत घनिष्ठ लोगों के साथ करते हैं तथा अन्य लोगों के साथ अनौपचारिक परिस्थितियों में हिंदी तथा औपचारिक परिस्थितियों में अंग्रेज़ी का प्रयोग करते हैं। अभिप्राय यह है कि हिंदी भाषा-भाषी समाज बहुत विस्तृत और विषमरूपी है।

11.3.2 उपभाषाएँ और बोलियाँ

हिंदी के वर्तमान स्वरूप के निर्माण में बोलियों का योगदान अति महत्वपूर्ण है। हिंदी भाषा क्षेत्र के अंतर्गत विभिन्न बोलियों के बोलने वाले लोगों की उपस्थिति द्वारा ही हिंदी ने अपना क्षेत्र-विस्तार पाया है। इसमें संदेह नहीं, 'बोलियाँ' ही भाषा की संरक्षक होती हैं। 'हिंदी भाषा क्षेत्र' में हिंदी भाषा के जो प्रमुख क्षेत्रगत रूप बोले जाते हैं उनकी संख्या 20 हैं। इन्हें ही हिंदी की प्रमुख बोलियाँ माना जाता है।

दरअसल, हिंदी भाषा क्षेत्र 1000 ई. से पूर्व यहाँ प्रचलित प्राकृतों के भेदों के अनुसार विभाजित है जिसके आधार पर इसकी 20 मुख्य बोलियों को पाँच उपभाषाओं के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्राकृत आधारित उपभाषाओं के 5 वर्ग इस प्रकार हैं-

1. माध्यमिक शौरसेनी वर्ग – पश्चिमी हिंदी
2. पश्चिमी शौरसेनी वर्ग – राजस्थानी
3. अर्धमागधी वर्ग – पूर्वी हिंदी
4. मागधी वर्ग – बिहारी
5. उत्तरी शौरसेनी वर्ग – पहाड़ी

इन पाँच उपभाषा वर्गों के अंतर्गत सम्मिलित बोलियाँ हैं –

1. पश्चिमी हिंदी - खड़ीबोली या कौरवी, बाँगरू या हरियाणवी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली। (इसी वर्ग में 'दक्खिनी' हिंदी को भी रखा जा सकता है।)
2. पूर्वी हिंदी - अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।
3. राजस्थानी - मेवाती (उत्तरी राजस्थानी), मालवी (दक्षिणी राजस्थानी), जयपुरी (पूर्वी राजस्थानी), मारवाड़ी (पश्चिमी राजस्थानी)।
4. बिहारी - भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका, बज्जिका। (अब मैथिली को संविधान की अष्टम अनुसूची में 'भाषा' के रूप में शामिल किया जा चुका है।)

5. पहाड़ी - कुमाऊँनी, गढ़वाली, नेपाली। (नेपाली को अब संविधान की अष्टम अनुसूची में 'भाषा' का दर्जा मिल चुका है।)

11.3.3 पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी

पश्चिमी हिंदी वर्ग

ग्रियर्सन ने पश्चिमी हिंदी की पाँच बोलियों का उल्लेख किया था – खड़ीबोली, बाँगरू (हरियाणवी), ब्रजभाषा, कन्नौजी तथा बुंदेली। पश्चिमी हिंदी की खड़ीबोली से ही आज की परिनिष्ठित हिंदी विकसित हुई है। साथ ही, दक्खिनी हिंदी भी इसीके अंतर्गत आती है। संस्कृत के तत्सम शब्दों से संपन्न यही परिनिष्ठित या मानक हिंदी आज की साहित्यिक हिंदी है, जिसकी लिपि देवनागरी है। पश्चिमी हिंदी की इन सभी बोलियों में साहित्यिक दृष्टि से ब्रज, खड़ीबोली तथा दक्खिनी हिंदी का विशेष महत्व है।

पूर्वी हिंदी वर्ग

हिंदी प्रदेश के पूर्वी भाग की भाषा को ग्रियर्सन ने पूर्वी हिंदी नाम दिया। इस वर्ग की बोलियों के अंतर्गत उत्तर प्रदेश में लखनऊ और उसके पूर्व का संपूर्ण क्षेत्र, मध्यप्रदेश में रीवाँ, दमोह, जबलपुर आदि का क्षेत्र तथा जयपुर का कुछ भाग सम्मिलित है। यह क्षेत्र चारों ओर पश्चिमी हिंदी, नेपाली, बिहारी, उडिया, मराठी तथा राजस्थानी वर्ग की भाषाओं से घिरा है। ग्रियर्सन ने इस वर्ग में दो बोलियों – अवधी और छत्तीसगढ़ी – को शामिल किया। उन्होंने बघेली को अवधी के अंतर्गत ही स्थान दिया था। यदि बघेली को अवधी से अलग स्वतंत्र माना जाए तो पूर्वी हिंदी की तीन बोलियाँ मानी जा सकती हैं – अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। इनमें भी साहित्यिक दृष्टि से अवधी का विशेष महत्व है। अलग छत्तीसगढ़ राज्य बन जाने के बाद से अब वहाँ के निवासी छत्तीसगढ़ी के प्रति अधिक सजग हो गए हैं।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी में अंतर

पश्चिमी हिंदी के एक ओर पंजाबी, राजस्थानी, पहाड़ी, पूर्वी हिंदी तथा मराठी भाषाओं का क्षेत्र विद्यमान है। इस कारण पश्चिमी हिंदी में इन भाषाओं की न्यूनाधिक विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। इसी प्रकार पूर्वी हिंदी का क्षेत्र भी पहाड़ी, बिहारी, ओड़िया, पश्चिमी हिंदी और मराठी आदि भाषाओं के क्षेत्र से घिरा हुआ है। इस कारण पूर्वी हिंदी इन भाषाओं की कुछ विशेषताओं को लिए हुए है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है जबकि पूर्वी हिंदी अर्धमागधी से विकसित है इसलिए इन दो उपभाषाओं में क्रमशः शौरसेनी और अर्धमागधी की विशेषताएँ मिलती हैं। इस प्रकार भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टियों से पश्चिमी और पूर्वी हिंदी में पर्याप्त अंतर है। इन

दोनों उपभाषाओं में ध्वनि, परसर्ग, मूल रूप, सर्वनाम एवं क्रिया रूपों में बहुत से अंतर देखे जा सकते हैं। विद्वानों के अनुसार ये अंतर इस प्रकार हैं -

ध्वनि के स्तर पर :

(i) 'अ' के उच्चारण की दृष्टि से दोनों में बहुत अंतर है। बांग्ला आदि पूर्वी भाषाओं के प्रभाव के कारण पूर्वी हिंदी का 'अ' आ के उच्चारण के अधिक समीप है। उसमें संवृत्तता तथा ओष्ठवृत्ता है जबकि पश्चिमी हिंदी का 'अ' अधिक विवृत्त है।

(ii) पश्चिमी हिंदी में उच्चरित ह्रस्व इ, उ पूर्वी हिंदी वालों को दीर्घ ई, ऊ जैसे सुनाई पड़ते हैं तथा पूर्वी हिंदी के ह्रस्व इ, उ इतने ह्रस्व हैं कि पश्चिमी हिंदी वालों को 'अ' जैसे सुनाई पड़ते हैं।

(iii) पूर्वी हिंदी में, पश्चिमी हिंदी की अपेक्षा दो स्वरों के एक साथ आने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। जैसे – पश्चिमी हिंदी में कौन, और, ऐसा, भैंस, बैल, मौत आदि रूप बनते हैं तो पूर्वी हिंदी में कउन, अउर, अइसा, भइंस, बइल, मउत आदि दो स्वरों वाले रूप बनते हैं।

(iv) पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वर, ऐ, औ अब मूल स्वर के रूप में विकसित होते जा रहे हैं। जैसे – बैल, मौत। किंतु पूर्वी हिंदी में इनका उच्चारण अइ, अउ रूप में संयुक्त स्वरों की तरह होता है।

(v) पश्चिमी हिंदी के 'यहाँ', 'वहाँ' आदि शब्द पूर्वी हिंदी में इहाँ, उहाँ (य, व के स्थान पर इ, उ) रूप में उच्चरित होते हैं।

(vi) पश्चिमी हिंदी की ड़, ढ़ ध्वनियाँ कतिपय अपवादों को छोड़कर पूर्वी हिंदी में (भोजपुरी में भी) 'र' 'रह' में परिवर्तित हो जाती हैं।

(vii) पश्चिमी हिंदी की 'ल' ध्वनि पूर्वी हिंदी और भोजपुरी में प्रायः 'र' में बदल जाती है। जैसे पश्चिमी हिंदी में हल, हल्दी, गाली शब्द पूर्वी हिंदी में हर, हरदी, गारी आदि में बदल जाते हैं।

परसर्ग के स्तर पर :

पश्चिमी तथा पूर्वी हिंदी के परसर्गों में कर्ता कारक की दृष्टि से बहुत अंतर यह है कि पश्चिमी हिंदी की बोलियों में ने, नै, नें आदि का प्रयोग होता है, जबकि पूर्वी हिंदी में इनके स्थान पर कोई भी परसर्ग नहीं आता। खड़ीबोली में - उसने मारा, ब्रज में - वाने मारयौ आदि रूपों का प्रयोग होता है, जबकि अवधी में – ऊ मारिस, बघेली में – वो मारिस आदि का प्रयोग होता है।

मूल रूप के स्तर पर :

पश्चिमी हिंदी में शब्दों के मूल रूपों में एकरूपता रहती है, जबकि पूर्वी हिंदी में 'वा', 'वना' आदि जोड़कर उनसे दीर्घ और दीर्घतर रूप भी बनाए जाते हैं, जैसे – पश्चिमी हिंदी में 'लड़का' शब्द के पूर्वी हिंदी में 'लरिका', लरिकवा, लरिकवना आदि अनेक रूप बनते हैं।

सर्वनाम के स्तर पर :

पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी के सर्वनाम रूपों में काफी अंतर है। यथा :

पश्चिमी हिंदी	पूर्वी हिंदी
मैं, में, हौ, हऊँ	महँ, में
मेरा, मेरो, तेरा, तेरो	मोर, तोर
हमारा, हमारो, म्हारा	हमार
तुम्हारा, तुम्हारो, तिहारो	तुम्हार, तोहार
उस	उइ, उओ

क्रिया रूप के स्तर पर :

क्रिया रूपों की दृष्टि से भी पश्चिमी और पूर्वी हिंदी में पर्याप्त अंतर है। जैसे –

(i) क्रियार्थक संज्ञा – पश्चिमी हिंदी में चलना, देखना आदि।
पूर्वी हिंदी में चलब, देखब।

(ii) पश्चिमी हिंदी में भविष्यत काल के रूप चलेगा, होगा के स्थान पर पूर्वी हिंदी में चली है, होई है (चलते हैं) रूप बनते हैं।

(iii) पश्चिमी हिंदी के वर्तमान काल में सहायक क्रियाओं में 'ह' वाले रूप आते हैं। जैसे – है, हैं, हूँ, हो आदि किंतु पूर्वी हिंदी में 'ह' वाले रूपों के साथ-साथ 'वाट' वाले रूप भी आते हैं। जैसे – कहाँ जात वाट (कहाँ जा रहे हो), हम खात वाट (मैं खा रहा हूँ)।

(iv) भूतकाल में पश्चिमी हिंदी में 'थ' तथा 'हत' (था, थे, थी, हतो, हते, हती) वाले रूप आते हैं, किंतु पूर्वी हिंदी में 'रह' वाले रूप (रहौ, रहै, रहन आदि) प्रयुक्त होते हैं।

अंततः, यहाँ यह कहना आवश्यक है कि भूत और भविष्यत के क्रिया रूपों के स्तर पर पूर्वी हिंदी का स्थान शौरसेनी और मागधी के बीच का है। पूर्वी और पश्चिमी हिंदी में ध्वनि की दृष्टि से भी पर्याप्त अंतर है। पूर्वी हिंदी के संज्ञा और सर्वनाम मागधी के अधिक निकट हैं।

11.3.4 खड़ीबोली/ कौरवी

खड़ीबोली शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है – एक तो साहित्यिक हिंदी खड़ीबोली के अर्थ में और दूसरे दिल्ली-मेरठ के आस-पास की लोक बोली के अर्थ में। यहाँ दूसरे अर्थ में ही इस

शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। इसी अर्थ में 'कौरवी' का भी प्रयोग कुछ लोग करते हैं। 'खड़ीबोली' में 'खड़ी' शब्द का अर्थ विवादास्पद है। कुछ लोगों ने 'खड़ी' का अर्थ 'खरी' (Pure) अर्थात शुद्ध माना है, तो दूसरों ने 'खड़ी' (Standing)। कुछ अन्य लोगों ने इसका संबंध खड़ीबोली में अधिकता से प्रयुक्त खड़ी पाई तथा उसके ध्वन्यात्मक प्रभाव कर्कशता से जोड़ा है। अभी तक यह एक अनिर्णीत मुद्दा है कि इस नामकरण (खड़ीबोली) का आधार क्या है!

खड़ीबोली या कौरवी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है तथा इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, दिल्ली का कुछ भाग, बिजनौर, रामपुर तथा मुरादाबाद है। लोक साहित्य की दृष्टि से खड़ीबोली बहुत संपन्न है और इसमें पवाड़ा, नाटक, लोककथा, लोकगीत आदि पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। परिनिष्ठित हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी तथा दक्खिनी बड़ी सीमा तक खड़ीबोली पर आधारित हैं।

मानक भाषा के रूप में खड़ीबोली का महत्व

आप जानते ही हैं कि प्रत्येक भाषा क्षेत्र में किसी क्षेत्र विशेष के भाषिक रूप के आधार पर उस भाषा का मानक रूप विकसित होता है। इसका उस भाषा-क्षेत्र के सभी क्षेत्रों के पढ़े-लिखे व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं। मानक हिंदी अथवा परिनिष्ठित हिंदी का प्रयोग संपूर्ण हिंदी भाषा क्षेत्र में व्याप्त है। प्रत्येक हिंदी भाषी व्यक्ति शिक्षित, सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित तथा स्थानीय क्षेत्र से इतर अन्य क्षेत्रों के व्यक्तियों से वार्तालाप करने के लिए इसी को आदर्श, श्रेष्ठ एवं मानक मानता है।

हिंदी भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस कारण इसकी क्षेत्रगत भिन्नताएँ भी बहुत अधिक हैं। 'खड़ीबोली' हिंदी भाषा का उसी प्रकार एक क्षेत्रीय भेद है, जिस प्रकार हिंदी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रगत भेद हैं। परंतु परिनिष्ठित खड़ीबोली का पूरे देश में प्रसार होने के कारण इसका स्वरूप 'अक्षेत्रीय' हो गया है। औपचारिक अवसरों पर तथा अंतर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर खड़ीबोली के 'मानक भाषा रूप' (परिनिष्ठित रूप) अथवा 'व्यावहारिक हिंदी' का प्रयोग प्रचलन में है। स्मरण रहे कि मानक हिंदी का विकास अवश्य ही खड़ीबोली के आधार पर हुआ है किंतु खड़ीबोली ही मानक हिंदी नहीं है। बल्कि मानक हिंदी, खड़ीबोली के आधार पर विकसित सार्वदेशिक और अक्षेत्रीय भाषा रूप है।

11.3.5 ब्रजभाषा

ब्रजभाषा पश्चिमी हिंदी उपभाषा वर्ग की भाषा है। हिंदी की समस्त बोलियों में ब्रज अत्यंत प्रमुख बोली है। ब्रज का पुराना अर्थ 'पशुओं' या 'गौओं का समूह' या 'चरागाह' आदि है। पशुपालन के आधुनिक महत्व के कारण यह क्षेत्र ब्रज कहलाया और इसी आधार पर इसकी बोली ब्रजभाषा कहलाई। यह ब्रजमंडल अर्थात मथुरा-वृंदावन क्षेत्र की बोली है। पर इसका क्षेत्र

एटा, मैनपुरी, बदायूँ, बरेली, बुलंदशहर, फर्रूखाबाद, भरतपुर, आगरा तक फैला हुआ है। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग एक करोड़ पचास लाख हैं। इस बोली का साहित्यिक महत्व है। चौदहवीं शताब्दी से ही ब्रजभाषा का प्राचीन साहित्य मिलता है। भक्तिकालीन साहित्यिक कृतियों में अवधी और ब्रजभाषा का ही प्रयोग प्रमुख है। लगभग सारा रीतिकालीन साहित्य भी इसी में रचा गया है। इसी कारण इसे भाषा (ब्रजभाषा) की संज्ञा दी जाती है। आधुनिक काल (भारतेंदु युग, द्विवेदी युग) में भी ब्रजभाषा में काफी साहित्य-सृजन हुआ है।

ब्रजभाषा की विशेषताएँ

जनपदीय जीवन के प्रभाव से ब्रजभाषा के कई रूप दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु थोड़े से अंतर के साथ उनकी एकरूपता को पहचाना जा सकता है। ब्रजभाषा की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. **औकारांतता -** ब्रजभाषा की अपनी रूपगत प्रकृति औकारांत है अर्थात इसकी एकवचनीय पुल्लिंग संज्ञाएँ तथा विशेषण प्राय: औकारांत होते हैं; जैसे खुरपौ, यामरौ, माँझौ आदि संज्ञा शब्द औकारांत हैं। इसी प्रकार कारौ, गोरौ, साँवरौ आदि विशेषण पद औकारांत है। क्रिया का सामान्य भूतकालिक एकवचन पुल्लिंग रूप भी ब्रजभाषा में प्रमुख रूप से औकारांत ही रहता है। यह बात अलग है कि उसके कुछ क्षेत्रों में 'य्' श्रुति का आगम भी पाया जाता है। जिला अलीगढ़ की तहसील कोल की बोली में सामान्य भूतकालीन रूप 'य्' श्रुति से रहित मिलता है, लेकिन जिला मथुरा तथा दक्षिणी बुलंदशहर की तहसीलों में 'य्' श्रुति अवश्य पाई जाती है। जैसे :

'कारौ छोरा बोलौ' - (कोल, जिला अलीगढ़)।

'कारौ छोरा बोल्यौ' - (माट जिला मथुरा)।

'कारौ लौंडा बोल्यौ' - (बरन, जिला बुलंदशहर)।

2. कन्नौजी से समीपता - कन्नौजी की अपनी प्रकृति ओकारांत है। संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूपों में ब्रजभाषा जहाँ औकारांतता लेकर चलती है वहाँ कन्नौजी ओकारांतता का अनुसरण करती है। जिला अलीगढ़ की जनपदीय ब्रजभाषा में यदि हम कहें कि- 'कारौ छोरा बोलौ' (काला लड़का बोला) तो इसे ही कन्नौजी में कहेंगे कि –'कारो लरिका बोलो।' भविष्यत्कालीन क्रिया कन्नौजी में तिङंतरूपिणी होती है, लेकिन ब्रजभाषा में वह कृदंतरूपिणी पाई जाती है। यदि हम 'लड़का जाएगा' और 'लड़की जाएगी' वाक्यों को कन्नौजी तथा ब्रजभाषा में रूपांतरित करके बोलेंगे तो निम्नांकित रूप पाए जाएँगे :

कन्नौजी में - (1) लरिका जइहै। (2) बिटिया जइहै।

ब्रजभाषा में - (1) छोरा जाइगौ। (2) छोरी जाइगी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा के सामान्य भविष्यत काल रूप में क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार परिवर्तित होती है, जब कि कन्नौजी में एकरूप रहती है।

3. विवृति का अभाव तथा संधिगत रूप - यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि कन्नौजी में अवधी की भाँति विवृति (Hiatus) की प्रवृत्ति भी पाई जाती है जिसका ब्रजभाषा में अभाव है। कन्नौजी के संज्ञा, सर्वनाम आदि वाक्यपदों में संधिराहित्य प्राय: मिलता है, किंतु ब्रजभाषा में वे पद संधिगत अवस्था में मिलते हैं। उदाहरण:

(1) कन्नौजी – 'बउ गओ' (= वह गया)।

(2) ब्रजभाषा – 'बो गयौ' (= वह गया)।

उपर्युक्त वाक्यों के सर्वनाम पद 'बउ' तथा 'बो' में संधिराहित्य तथा संधि की अवस्थाएँ दोनों भाषाओं की प्रकृतियों को स्पष्ट करती हैं।

11.3.6 अवधी

अवधी पूर्वी हिंदी उपभाषा वर्ग की बोली है। इस बोली का केंद्र अयोध्या है। अयोध्या से ही 'अवध' शब्द बना है। इस बोली क्षेत्र के भीतर लखीमपुर, बाराबंकी, उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली, फैजाबाद, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, फ़तेहपुर आदि जिले आते हैं। अवधी बोलने वालों की संख्या लगभग एक करोड़ अस्सी लाख है। पूर्वी हिंदी की बोलियों में अवधी महत्वपूर्ण साहित्यिक भाषा है। बारहवीं शताब्दी से इसमें रचा गया साहित्य मिलता है। मुल्ला दाऊद का 'चंदायन', तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' तथा जायसी का 'पद्मावत' अवधी में लिखी गई प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ हैं।

अवधी की विशेषताएँ

(i) अवधी के पुल्लिंग संज्ञा शब्दों में 'वा' प्रत्यय लगता है। जैसे घोर (घोड़ा) + वा ='घोरवा'। यह रूप अविकारी होता है, जैसे 'घोरवा के' (घोड़े के)।

(ii) पुल्लिंग शब्दों के विकारी एवं अविकारी दोनों रूपों में 'न' प्रत्यय लगता है। जैसे घोड़वन (घोड़े या घोड़ों)।

(iii) ज़्यादातर भविष्यकाल का रूप 'ह' प्रत्यय से बनता है। जैसे करिहौं (करूँगा)।

(iv) भविष्यकाल का एक रूप 'ब' प्रत्यय से भी बनता है। जैसे करीबा (करेंगे), खाईबा (खाएँगे)।

(v) दोनों लिंगों के लिए क्रिया का रूप समान होता है। जैसे चलेऊँ (चला/ चली), तोर (तेरा/ तेरी), मोर (मेरा/ मेरे) आदि।

(vi) भूतकाल का रूप 'इस', 'इसी' प्रत्यय लगाने से बनता है। जैसे कहिस/ कहिसि (कहा)।

(vii) अवधी में 'ने' प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता। जैसे ऊ कहिसि (उसने कहा)।

(viii) अवधी में ऐ/ ओ मूल स्वर नहीं हैं। इसमें ह्रस्व ए/ ओ ध्वनियाँ हैं।

11.3.7 दक्खिनी हिंदी

दक्खिनी हिंदी मूलतः हिंदी का ही पूर्व रूप है जिसका विकास ईसा की चौदहवीं शती से अठारहवीं शती तक दक्खिन के बहमनी, क़ुतुब शाही और आदिल शाही आदि राज्यों के सुल्तानों के संरक्षण में हुआ था। इसके अन्य नाम हैं - 'हिंदी', 'हिंदवी', 'दकनी', 'दखनी', 'देहलवी', 'गूजरी', 'हिंदुस्तानी', 'ज़बाने हिंदुस्तानी', 'दक्खिनी उर्दू', 'मुसलमानी'। विद्वानों ने इसकी ऐतिहासिक और भाषिक विशेषताएँ संक्षेप में इस प्रकार बताई हैं -

- इसका मूल आधार, दिल्ली के आसपास प्रचलित 14वीं-15वीं सदी की 'खड़ीबोली' है।
- मुसलमानों ने भारत में आने पर इस बोली को अपनाया था।
- मसऊद, इब्नसाद, खुसरो तथा फरीदुद्दीन शकरगंजी आदि ने अपनी हिंदी कविताएँ इसी में लिखी थीं।
- 15वीं-16वीं सदी में फ़ौज, फ़कीरों तथा दरवेशों के साथ यह भाषा दक्षिण भारत में पहुँची और वहाँ प्रमुखत: मुसलमानों में, तथा कुछ हिंदुओं में जो उत्तर भारत के थे, प्रचलित हो गई। इसके क्षेत्र प्रमुखत: दक्षिण भारत के बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर आदि और मुंबई तथा मध्य प्रदेश आदि हैं।
- ग्रियर्सन इसे हिंदुस्तानी का बिगड़ा रूप न मानकर उत्तर भारत की 'साहित्यिक हिंदुस्तानी' को ही इसका बिगड़ा रूप मानते हैं।
- डॉ. चटर्जी इसे हिंदुस्तानी नहीं, तो उसकी सहोदरा भाषा अवश्य मानते हैं।
- डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार भाषावैज्ञानिक दृष्टि से, दक्खिनी मूलत: 'प्राचीन खड़ीबोली' है, जिसमें पंजाबी, हरियाणी, ब्रज, मेवाती तथा अवधी के कुछ रूप भी हैं।
- दक्षिण में जाने के बाद इस पर कुछ गुजराती-मराठी का भी प्रभाव पड़ा है।
- उत्तरी भारत की पंजाबी, हरियाणी, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं के रूपों के मिलने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि यह एक प्रकार की मिश्रित भाषा थी। सभी बोलियों का स्पष्ट अलग-अलग विकास नहीं हुआ था।
- कबीर ने भी इसी मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है।

- ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार, दक्खिनी बोलने वालों की संख्या लगभग साढ़े छत्तीस लाख थी। आज भी उस क्षेत्र में, दक्खिनी उर्दू नाम से बोली जाती है, यद्यपि यह भाषा कई दृष्टियों से बदल गई है।
- परिवर्तन की दृष्टि से तीन बातें उल्लेखनीय हैं -

1. उर्दू भाषा का उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ गया है।
2. कुछ पुराने रूप विकसित होकर कुछ-के-कुछ हो गए हैं।
3. शब्द-समूह के क्षेत्रानुसार तमिल, तेलुगु, कन्नड आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है।

- 15वीं से 18वीं सदी तक दक्खिनी को बहमनी वंश के तथा अन्य राजाओं का आश्रय प्राप्त रहा और इसमें पर्याप्त साहित्य रचना हुई। इसमें गद्य- साहित्य भी पर्याप्त प्राचीन मिलता है। खड़ीबोली गद्य का प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ दक्खिनी में ही मिलता है। इस गद्य-ग्रंथ का नाम 'मिराजुल आशिकीन' है, जिसके लेखक ख्वाजा बंदानवाज़ (1318- 1430) हैं। दक्खिनी के साहित्यकारों में अब्दुल्ला, वजही, निजामी, गवासी, ग़ुलामअली तथा बेलूरी आदि प्रमुख हैं।
- उर्दू साहित्य का आरंभ भी वस्तुत: दक्खिनी से ही हुआ है। उर्दू के प्रथम कवि वली (रचनाकाल 1700ई. के लगभग) ही दक्खिनी के अंतिम कवि वली औरंगाबादी हैं। इस प्रकार दक्खिनी को एक प्रकार से उर्दू की जननी कह सकते हैं, यद्यपि भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से दोनों में आकाश-पाताल का अंतर है।
- दक्खिनी की केवल लिपि ही फ़ारसी (या प्रचिलित शब्दावली में उर्दू) है, अन्यथा इसकी भाषा में सामान्य हिंदी की भाँति ही, भारतीय परंपरा के शब्द पर्याप्त हैं। अरबी-फ़ारसी शब्द उर्दू की तुलना में बहुत ही कम हैं। इसका क्षेत्र दक्षिण में होने के कारण ही इसका नाम दक्खिनी है। आज हिंदी वाले, इसे 'हिंदी' या 'दक्खिनी हिंदी' कहकर, इसे अपनी भाषा और इसके साहित्य को अपने साहित्य का अंग मान रहे हैं।
- वस्तुत: न केवल दक्खिनी भाषा, अपितु उसका साहित्य भी हिंदी से निकट है। अपवादों को छोड़कर, उर्दू के विरुद्ध, दक्खिनी भाषा और साहित्य की आत्मा पूर्णतया भारतीय है।
- कुछ शब्द उदाहरण के लिए देखे जा सकते हैं: प्रकार, संचित, इंद्रिय, अलिप्त, स्थूल, कल्पित (बुरहानुद्दीन में); गगन, कला, पवन, नीर, अधर, यौवन (कुली कुतुबशाह में); गंभीर, अनुप, भाल, जीव (वजही में)। यों उर्दू भी हिंदी की एक शैली ही है, बहुत सशक्त एवं सजीव शैली। ऐसी स्थिति में 'दक्खिनी हिंदी' हिंदी ही है। किसी भी दक्खिनी गद्य लेखक या कवि ने

उसके लिए 'उर्दू' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। ऐसी स्थिति में किसी भी रूप में, उर्दू नाम का प्रयोग, उसके लिए बहुत उचित नहीं कहा जा सकता।

- दक्खिनी के लिए प्राचीन नाम हिंदी (यों मैं हिंदवी कर आसान- शेख अशरफ़ (1503 नौसरहार) में मिलते हैं, जिसका आशय यह कि उत्तर भारत से, भाषा के साथ भी गए थे। बाद में संभवतः सत्रहवीं सदी के अंतिम चरण में 'दक्खिनी' नाम प्रचिलित हुआ। इसका प्रथम प्रामाणिक प्रयोग कदाचित् 'वजही' में है। वे अपनी 'कुतुबमुश्तरी' (1938 ई.) में लिखते हैं - दखिन में जो दखिनी मीठी बात का। कुछ उर्दू लेखकों ने लिखा है कि दक्खिनी को बाद में 'रेख़्ता' भी कहने लगे थे।
- वस्तुत: बात ऐसा नहीं है। दक्खिनी के अंतिम काल के कवियों (जैसे वली आदि) ने 'रेख्ता' का काव्य की एक विशेष शैली के लिए ही प्रयोग किया है। यह दक्खिनी का नाम नहीं है। इसका मूल आधार 14-15वीं सदी की (फ़ौज, फ़कीर दरवेश) दिल्ली-आगरा की खड़ीबोली है।
- मुसलमानों के साथ यह आगे चलकर कर्नाटक, आंध्र, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात में फैल गई। स्वभावत: इस पर इन सभी मध्यकाल में काफ़ी रचनाएँ हुईं जो दक्खिनी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध हैं।
- अब इन क्षेत्रों में जो साहित्य रचना होती है वह दक्खिनी में न होकर प्राय: मानक हिंदी या उर्दू में होती है।
- इसकी वर्तमान उपबोलियों में मुख्य मैसूरे, गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी, हैदराबादी आदि हैं।

11.3.8 हिंदी : नामकरण और व्याप्ति क्षेत्र

'हिंदी' भाषा के नामकरण के संबंध में रोचक तथ्य यह है कि यह नाम इसे विदेशियों ने दिया। 'हिंदी' शब्द का संबंध संस्कृत शब्द 'सिंधु' से माना जाता है। 'सिंधु' सिंध नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आसपास की भूमि को 'सिंधु' कहने लगे। यह 'सिंधु' शब्द ईरानी में जाकर 'हिंदू' और फिर 'हिंद' हो गया और इसका अर्थ हुआ 'सिंध प्रदेश'। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा 'हिंद' शब्द धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी में ईरानी का 'ईक' प्रत्यय लगने से 'हिंदीक' बना जिसका अर्थ है 'हिंद का'। यूनानी शब्द 'इंदिका' या अंग्रेज़ी शब्द 'इंडिया' आदि इस 'हिंदीक' के ही विकसित रूप हैं। 'हिंदी' भी 'हिंदीक' का ही परिवर्तित रूप है और इसका मूल अर्थ है 'हिंद का' अर्थात 'भारतीय'। इस प्रकार यह विशेषण है, किंतु भाषा के अर्थ में संज्ञा

हो गया है। हिंदी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज़्दी के 'ज़फ़रनामा' (1424) में मिलता है।

'हिंदी' शब्द का प्रयोग आज मुख्य रूप से तीन अर्थों में हो रहा है –

(1) **व्यापक अर्थ :** 'हिंदी' शब्द अपने विस्तृत अर्थ में हिंदी प्रदेश में बोली जाने वाली 5 उपभाषाओं की समस्त 21 बोलियों का द्योतक है। हिंदी साहित्य के इतिहास में 'हिंदी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है, इसीलिए इसके अंतर्गत अवधी, डिंगल, मैथिली, खड़ीबोली आदि प्रायः सभी में लिखित साहित्य का विवेचन किया जाता है। यही मत अधिक मान्य है।

(2) **सीमित अर्थ** : भाषाविज्ञान में प्रायः 'हिंदी' को 'पश्चिमी हिंदी' और 'पूर्वी हिंदी' तक ही सीमित कर दिया जाता है। ग्रियर्सन ने इसी आधार पर हिंदी प्रदेश की अन्य उपभाषाओं को राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी कहा था जिनमें 'हिंदी' शब्द का प्रयोग नहीं है, किंतु अन्य दो को हिंदी मानने के कारण 'पश्चिमी हिंदी' तथा 'पूर्वी हिंदी' नाम दिया था। इस प्रकार इस अर्थ में 'हिंदी' खड़ीबोली या कौरवी, बांगरू या हरियाणवी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, दक्खिनी, अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी का सामूहिक नाम है।

(3) **संकुचित अर्थ :** 'हिंदी' शब्द का संकुचित अर्थ है खड़ीबोली साहित्यिक हिंदी, जो आज हिंदी प्रेदेशों की सरकारी भाषा है, पूरे भरत की राजभाषा है, समाचार पत्रों और फिल्मों में जिसका प्रयोग होता है, जो हिंदी प्रदेश में शिक्षा का माध्यम है और जिसे परिनिष्ठित हिंदी, मानक हिंदी आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है।

11.3.9 हिंदी भाषा का उद्भव तथा विकास

खड़ीबोली हिंदी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है, किंतु यदि हिंदी को पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी की सभी बोलियों का प्रतिनिधि मानें तो कहना होगा कि इसका उद्भव शौरसेनी तथा अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। इसी प्रकार यदि साहित्यिक दृष्टि से विस्तृत अर्थ को स्वीकार करते हुए 'हिंदी' को 5 उपभाषाओं/ 21 बोलियों का प्रतिनिधि मानें तो यह कहना उचित होगा कि हिंदी का उद्भव शौरसेनी, अर्धमागधी तथा मागधी अपभ्रंश से हुआ है। यही मत अधिक मान्य और संगत प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की बात करें तो, हिंदी भाषा के कुछ व्याकरणिक रूप पालि में ही मिलने लगते हैं। प्राकृत काल में उनकी संख्या और भी बढ़ गई। अपभ्रंश काल में ये रूप प्रायः चालीस प्रतिशत से भी ऊपर हो गए। किंतु हिंदी भाषा का वास्तविक आरंभ 1000 ई. के आसपास से माना जाता है। इस तरह हिंदी के विकास का इतिहास एक हजार वर्षों से कुछ अधिक है।

हिंदी भाषा का विकास मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं – पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के क्रमशः जनभाषा से परे होते जाने पर उस काल की विभिन्न जनभाषाओं के आधार पर हुआ है। अपभ्रंश भाषा लगभग 10वीं शताब्दी तक आते-आते सामान्य प्रचलन से बाहर हो गई। 10वीं शताब्दी के बाद मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के अंतिम रूप अपभ्रंश भाषाओं ने धीरे-धीरे आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के लिए रास्ता छोड़ दिया। और इसी समय से अर्थात लगभग 11वीं शताब्दी के प्रारंभ काल से हिंदी के विकास की भी कहानी आरंभ होती है। गंगा की घाटी में प्रयाग या काशी तक बोली जाने वाली शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से हिंदी तथा उसके अन्य सभी रूपों का विकास हुआ है। प्रारंभिक हिंदी भाषा के रूप पर प्राकृत-अपभ्रंश का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उस प्रारंभिक भाषा रूप में प्राकृत-अपभ्रंश शब्दावली की भरमार रही। आगे चलकर हिंदी के इसी रूप में विकास हुआ और उसकी बोलियाँ भी विकसित हुईं। भारत में मुस्लिम शासन के कारण हिंदी भाषा पर अरबी-फ़ारसी का प्रभाव पड़ा। 16वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते, हिंदी भाषा प्राकृत-अपभ्रंश के प्रभाव से तो मुक्त हो गई, पर अरबी-फ़ारसी शब्दावली से भरी हुई एक शैली 'उर्दू' के नाम से विकसित हुई। इसके साथ ही इन्हीं मुस्लिम शासकों के भारत के दक्षणी राज्यों में पहुँचने पर वहाँ भी दक्षिण भारत की भाषाओं के संपर्क तथा प्रभाव से हिंदी भाषा दक्खिनी हिंदी के रूप में विकसित हुई। 19वीं शताब्दी में मुद्रण कला का विकास और नवजागरण आंदोलन के प्रसार के फलस्वरूप अन्य बोलियों की तुलना में खड़ीबोली का महत्व बढ़ गया। इसी के बाद से खड़ीबोली हिंदी का विकास समुचित ढंग से आरंभ हुआ। ये सब हिंदी के विकास के विभिन्न सोपान हैं।

काल विभाजन

हिंदी के 1000 वर्ष के इतिहास का अध्ययन निम्नलिखित तीन चरणों/ सोपानों में विभाजित करके किया जा सकता है –

(1) हिंदी भाषा का आदिकाल (1000 ई. – 1500 ई.)

(2) हिंदी भाषा का मध्य काल (1500 ई. - 1800 ई.)

(3) हिंदी भाषा का आधुनिक काल (1800 ई. - वर्तमान)

स्मरणीय है कि यह काल विभाजन 'हिंदी भाषा' के इतिहास का है; उसे 'हिंदी साहित्य' के इतिहास के काल विभाजन, तिथि निर्णय और नामकरण से भिन्न समझना चाहिए।

(1) हिंदी भाषा का आदिकाल (1000 ई. – 1500 ई.)

अपने आरंभकाल या आदिकाल में हिंदी भाषा सभी बातों में अपभ्रंश के बहुत निकट थी, क्योंकि उसी के आधार पर जनभाषा के परिवर्तन से हिंदी का उद्भव हुआ था। आदिकालीन

हिंदी में मुख्यतः उन्हीं ध्वनियों (स्वरों-व्यंजनों) का प्रयोग मिलता है, जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थीं। विद्वानों ने अपभ्रंश और आदिकालीन हिंदी में निम्नलिखित अंतर परिलक्षित किए हैं -

(i) अपभ्रंश में केवल आठ स्वर थे (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ)। ये आठों ही स्वर मूल स्वर थे। आदिकालीन हिंदी में दो नए स्वर ऐ, औ विकसित हो गए जो संस्कृत स्वर थे।

(ii) च, छ, ज, झ संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे, किंतु आदिकालीन हिंदी में आकर ये स्पर्श संघर्षी हो गए।

(iii) न, र, ल, स संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में दंत्य ध्वनियाँ थीं। आदिकालीन हिंदी में ये वर्त्स्य हो गईं।

(iv) अपभ्रंश में ड़, ढ़ व्यंजन नहीं थे। आदिकालीन हिंदी में इनका विकास हुआ।

(v) न्ह, म्ह, ल्ह पहले संयुक्त व्यंजन थे, अब वे क्रमशः न, म, ल के महाप्राण रूप हो गए। अर्थात संयुक्त व्यंजन न रह कर मूल व्यंजन हो गए।

(vi) संस्कृत, फ़ारसी आदि से कुछ शब्दों के आ जाने के कारण कुछ नए संयुक्त व्यंजन हिंदी में आ गए, जो अपभ्रंश में नहीं थे। कुछ अपभ्रंश शब्दों के लोप के कारण कुछ ऐसे संयुक्त व्यंजनों, स्वर-अनुक्रमों तथा व्यंजन-अनुक्रमों के लोप की भी संभावना हो सकती है, जो अपभ्रंश में विद्यमान थे।

(vii) अपभंश काफी हद तक संयोगात्मक भाषा थी। क्रिया तथा कारकीय रूप संयोगात्स्क होते थे, लेकिन आदिकालीन हिंदी में वियोगात्मक रूपों का प्राधान्य हो चला। सहायक क्रियाओं तथा परसर्गों (कारक चिह्नों) का काफी प्रयोग होने लगा।

(viii) नपुंसक लिंग एक सीमा तक अपभ्रंश में था। आदिकालीन हिंदी प्रयोगों में नपुंसक लिंग का प्रयोग पूर्णतः समाप्त हो गया।

(ix) हिंदी वाक्य रचना में शब्दक्रम धीरे-धीरे निश्चित होने लगा।

(x) भक्ति आंदोलन के कारण तत्सम शब्दावली बढ़ने लगी।

(xi) मुसलमानों के आगमन से कुछ शब्द पश्तो, फ़ारसी तथा तुर्की भाषाओं से हिंदी में आए।

इस काल के साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित रूपों का प्रयोग मिलता है। इस युग के प्रमुख हिंदी साहित्यकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह, चंदबरदाई, कबीर आदि हैं। (संदर्भ : नगेंद्र [सं], हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 13)।

हिंदी भाषा का मध्यकाल (1500 ई. – 1800 ई.)

मध्यकाल तक पहुँचते-पहुँचते हिंदी ने स्वरूपगत दृढ़ता प्राप्त कर ली। अपभ्रंश के प्रभाव से प्रायः संपूर्ण रूप से मुक्त होने पर मध्यकाल में ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द भंडार के क्षेत्र में निम्नलिखित परिवर्तन घटित हुए –

(i) फ़ारसी की शिक्षा की कुछ व्यवस्था तथा दरबार में फ़ारसी का प्रयोग होने से उच्च वर्ग में फ़ारसी का प्रचार हुआ, जिसके कारण उच्च वर्ग के लोगों की हिंदी में क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ये पाँच नए व्यंजन आ गए।

(ii) शब्दांत का 'अ' कम-से-कम मूल व्यंजन के बाद आने पर लुप्त हो गया अर्थात 'राम' का उच्चारण 'राम्' होने लगा। किंतु 'भक्त' जैसे शब्दों में, जहाँ 'अ' के पूर्व संयुक्त व्यंजन था, 'अ' बना रहा। कुछ स्थितियों में अक्षरांत 'अ' का भी लोप होने लगा। उदाहरण के लिए आदिकालीन 'जपता' का अब उच्चारण 'जप्ता' हो गया।

(iii) 'ह' के पहले का 'अ' कुछ स्थितियों में 'ए' जैसा उच्चरित होने लगा था (अहमद > एहमद)

(iv) इस काल में व्याकरण के क्षेत्र में हिंदी पूरी तरह से अपभ्रंश से अलग हो गई।

(v) आदिकालीन हिंदी की तुलना में मध्यकाल की हिंदी और भी वियोगात्मक हो गई।

(vi) उच्च वर्ग में फ़ारसी का प्रचार होने के कारण हिंदी वाक्य रचना भी फ़ारसी से प्रभावित होने लगी।

(vii) इस काल में आते-आते काफी शब्द फ़ारसी (लगभग 3500), अरबी (लगभग 2500), पश्तो (लगभग 50) तथा तुर्की (लगभग 125) से हिंदी में आ गए।

(viii) भक्तिकालीन आंदोलन के चरम बिंदु पर पहुँचने के कारण तत्सम शब्दों का अनुपात भाषा में और भी बढ़ गया।

(ix) यूरोप से संपर्क होने के कारण कुछ पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी शब्द भी हिंदी में आ गए।

इस काल धर्म की प्रधानता के कारण राम-जन्मस्थान की भाषा अवधी तथा कृष्ण-जन्मस्थान की भाषा ब्रज में ही विशेष रूप से साहित्य रच गया। यों दक्खिनी, उर्दू, डिंगल, मैथिली और खड़ीबोली में भी साहित्य रचना हुई। इस काल के प्रमुख साहित्यकार जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, देव हैं। (संदर्भ : नगेंद्र [सं], हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 14)

हिंदी भाषा का आधुनिक काल (1800 ई. - वर्तमान)

18वीं सदी के प्रारंभ से हिंदी भाषा के स्वरूप में नए परिवर्तन दिखाई देने लगे। इसका काफी श्रेय उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों को भी जाता है। सामाजिक-राजनैतिक जागरण और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का दबाव होने के कारण पहले गद्य और बाद में पद्य की भी भाषा के रूप में खड़ीबोली को मान्यता मिली।

ध्वनि, व्याकरण, शब्द भंडार और साहित्य रचना की दृष्टि से आधुनिक कालीन हिंदी में निम्नलिखित विशेषताएँ उभर कर सामने आईं –

(i) फ़ारसी से स्वीकार क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियों का प्रचलन हिंदी में समाप्त हुआ।

(ii) अपवादस्वरूप कहीं-कहीं ज़ और फ़ ध्वनि शेष बची।

(iii) क़, ख़, ग़ ध्वनियाँ क, ख, ग में बदल गईं।

(iv) अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार के कारण 'ऑ' (कॉलेज, डॉक्टर, ऑफिस, कॉफी आदि में) ध्वनि का भी हिंदी में समावेश हुआ।

(v) अंग्रेज़ी शब्दों के प्रचार के कारण कुछ नए संयुक्त व्यंजन (जैसे ड्र) भी हिंदी में प्रयुक्त होने लगे।

(vi) अब हिंदी में उच्चारण में कोई भी शब्द अकारांत नहीं है।

(vii) मीडिया, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण आदि के प्रभाव से हिंदी व्याकरण का स्वरूप काफी स्थिर हो गया है। कुछ अपवादों को छोडकर हिंदी व्याकरण का मानक रूप सुनिश्चित हो चुका है। व्याकरण के इस स्थिरीकरण में महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका उल्लेखनीय है।

(viii) आधुनिक काल में अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रसार फ़ारसी की तुलना में अधिक हुआ है। परिणामस्वरूप हिंदी वाक्य संरचना अंग्रेज़ी से प्रभावित हुई।

(ix) इधर कुछ वर्षों से 'कीजिए' के लिए 'करिए', 'मुझे' के लिए 'मेरे को', 'मुझको' के लिए 'मेरे से', 'तुझ में' के लिए 'तेरे में', 'नहीं जाता है' के स्थान पर 'नहीं जाता' 'नहीं जा रहा है' के स्थान पर 'नहीं जा रहा' जैसे नए रूपों तथा नई वाक्य रचना का प्रचार कुछ क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है। अर्थात हिंदी भाषा अकी रूप रचना तथा वाक्य रचना में परिवर्तन हो रहा है। (संदर्भ : नगेंद्र [सं], हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 15)

(x) अंग्रेज़ी ने विराम चिह्नों के माध्यम से भी हिंदी को प्रभावित किया है।

(xi) छायावादी युग में तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ा। कुछ पुराने तद्भव शब्द परिनिष्ठित हिंदी से निकल गए। प्रगतिवादी आंदोलन के कारण कुछ तद्भव शब्दों के प्रयोग में पुनः वृद्धि हुई।

(xii) अनेक पुराने शब्द नए अर्थों में प्रचलित हो गए। उदाहरण के लिए 'सदन' शब्द का प्रयोग अब राज्यसभा और लोकसभा (दोनों सदनों) के लिए होता है।

(xiii) आवश्यकता के अनुसार कुछ नए नए शब्द हिंदी में आए। यथा : फिल्माना, घुसपैठिया, क्षणिका।

(xiv) पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता पड़ने पर नए शब्द गढ़े गए।

अंततः डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में यह कहना उचित होगा कि "किसी भाषा के प्रचार क्षेत्र में जैसे-जैसे विस्तार होता है, उसके एकाधिक रूप विकसित होने लगते हैं। आज इंग्लैंड, अमरीका, ऑस्ट्रेलिया की अंग्रेज़ी ध्वनि व्यवस्था, रूप रचना, वाक्य गठन तथा शब्द भंडार किसी भी दृष्टि से पूर्णतः एक नहीं है। हिंदी के साथ भी वही स्थिति होती जा रही है। संविधान के 351वें अनुच्छेद के अनुसार संपर्क भाषा के रूप में जिस हिंदी का विकास होना है, वह कम-से-कम शब्द भंडार के क्षेत्र में भारत की प्रायः सभी भाषाओं से कुछ-न-कुछ ग्रहण करेगी। इस प्रकार राष्ट्रभाषा के बारे में उसका स्वरूप एक प्रकार से सार्वदेशिक होगा। नागपुर में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन (1975) में इस दिशा में स्वदेश-विदेश के हिंदी विद्वानों ने यथेष्ट विचार-विमर्श के उपरांत उपर्युक्त निष्कर्ष से ही सहमति प्रकट की और हिंदी को राष्ट्रभाषा के साथ ही विश्व की एक प्रमुख भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का संकल्प विकत किया।" (संदर्भ : नगेंद्र [सं], हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 16)।

11.3.10 हिंदी भाषा का शब्द समूह

भाषा परिवर्तनशील होती है अर्थात देश और काल के आधार पर उसमें बदलाव आता रहता है। यह भाषिक बदलाव भाषा के शब्द समूह द्वारा भी अभिव्यक्त होता है। भाषा के अध्ययन में शब्द एक महत्वपूर्ण पक्ष है। किसी भी भाषा के शब्द समूह के विकास के लिए प्रमुख रूप से चार आधार हो सकते हैं –

(i) मूल भाषा के शब्दों से अन्य शब्दों का विकास,

(ii) सांस्कृतिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक कारणों से विदेशी भाषाओं के संपर्क से ग्रहण किए गए विदेशी शब्द,

(iii) देशी भाषाओं से ग्रहण किए गए शब्द,

(iv) नए विचारों तथा वैज्ञानिक आविष्कारों आदि के कारण नव-निर्मित शब्द।

हिंदी का अपना शब्द समूह मुख्यतः संस्कृत, अपभ्रंश और बोलियों से निर्मित है। साथ ही बड़ी संख्या में आगत शब्द भी हिंदी में घुलमिल गए हैं। हिंदी में आगत शब्दावली विदेशी भाषाओं के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष संपर्क से आई है। मध्यकाल में मुस्लिम शासन होने और ईरान के साथ प्राचीन संबंधों के कारण हिंदी भाषा में फ़ारसी, अरबी, तुर्की, पश्तो आदि भाषाओं के शब्द पर्याप्त मात्रा में आए। इसी तरह अंग्रेज़ों के आने तथा भारतवर्ष पर शासन करने के कारण हिंदी

भाषा में अंग्रेज़ी की शब्दावली भी जुड़ गई। आज भी अंतरराष्ट्रीय संपर्क के कारण नित्य नए शब्द हिंदी में आ रहे हैं। हिंदी के इस समस्त शब्द समूह का स्रोतगत वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है –

(i) संस्कृत परंपरा से आगत 'तत्सम' शब्द

(ii) संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा से विकसित 'तद्भव' शब्द

(iii) पारंपरिक रूप से प्रचलित 'देशज' शब्द

(iv) हिंदी में आगत 'विदेशी' शब्द

(v) 'संकर' शब्द

तत्सम शब्द

हिंदी के संस्कृत की परंपरा से विकसित भाषा होने के कारण हिंदी में अनेक शब्द सीधे इसी परंपरा से हैं जिन्हें 'तत्सम' शब्द कहते हैं। 'तत्सम' शब्द का अर्थ है – 'तत्' (वह) और 'सम' (समान) – अर्थात 'संस्कृत शब्द के समान'। उदाहरण के लिए - ऋषि, अग्नि, नृप, कृष्ण, क्षेत्र, जल, तीव्र, पुरातन, मित्र, युवा, वायु, सूर्य, श्वेत, हस्त, अक्षि, उष्ट्र, कर्म, घृत, दधि, जिह्वा, सर्प, दंत, दुग्ध, सौभाग्य, वधू, मुख, मेघ, चंद्र, कार्य, गृह, पक्ष आदि शब्द तत्सम हैं। संधि, समास, उपसर्ग, प्रत्यय आदि की सहाता से मुख्यतः तत्सम शब्दों से ही नए-नए शब्द गढ़े जाते हैं। अतः यह स्रोत अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

तद्भव शब्द

हिंदी भाषा में तद्भव शब्दों की संख्या अधिक है। ये संस्कृत शब्दों से उत्पन्न हुए हैं। 'तद्भव' का अर्थ है – 'तत्' (वह) और 'भव' (उत्पन्न) अर्थात 'संस्कृत शब्द से पैदा हुए शब्द'। ये शब्द वस्तुतः संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा से विकसित, परिवर्तित या विकृत शब्द हैं। ये परिवर्तन मुख्य रूप से ध्वनि परिवर्तन हैं। अतः जो शब्द ध्वनि परिवर्तन के द्वारा संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा से हिंदी में विकसित अथवा परिवर्तित हुए हैं, उन्हें तद्भव शब्द कहते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं –

आँख (अक्षि), आग (अग्नि,), ऊँट (उष्ट्र), काम (कर्म), खेत (क्षेत्र), घर (गृह), घी (घृत), चाक (चक्र), जीभ (जिह्वा), दही (दधि), दाँत (दंत), दूध (दुग्ध), बहू (वधू), मुँह (मुख), मेह (मेघ), हाथ (हस्त), होंठ (ओष्ठ), साँप (सर्प), सुहाग (सौभाग्य), सूरज (सूर्य) आदि।

देशज शब्द

देशज शब्द उन शब्दों को कहा जाता है जो संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश से आए हैं, और न ही किसी विदेशी स्रोत से। ये शब्द हिंदी भाषा में बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। जैसे कोल्हू, घपला,

पेड़, खाँसी, खिड़की, चंपत, चूहा, ठेस, झंडा, डंगर, तेंदुआ, थैला, पेट, धब्बा, लड़का, घोटाला आदि। बहुत से देशज शब्द अनुकरणात्मक होते हैं। किसी विशिष्ट ध्वनि के अनुकरण और पुनरावृत्ति से निर्मित होते हैं। जैसे - काँव-काँव, चूँ-चूँ, म्याऊँ-म्याऊँ, फ़टफटिया, चिपचिपा, गोलमटोल, पिलपिला आदि। देशज शब्द न तत्सम होते हैं, न तद्भव, न ही विदेशी। इनका स्रोत लोक प्रचलित अनेक बोलियाँ हैं।

विदेशी शब्द

ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक संपर्कों के कारण हिंदी में अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी, तुर्की, पश्तो, डच, पुर्तगाली, जर्मन, स्पेनी, इतालवी, रूसी, चीनी, जापानी आदि अनेक भाषाओं के शब्द आए हैं। मूल रूप से किसी विदेशी भाषा से हिंदी में आए हुए शब्दों को विदेशी या गृहीत शब्द कहा जाता है। कहना न होगा कि हिंदी में गृहीत अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी तथा तुर्की शब्दों का प्रचलन काफी है क्योंकि अंग्रेज़ी और फ़ारसी भारत की राजभाषाएँ रही हैं और भारत के अनेक भागों पर तुर्क सरदारों का भी प्रभाव रहा है। लंबे काल तक मुस्लिम शासन होने के कारण अरबी शब्दों से भी संपर्क रहा है। हिंदी समाज का एक वर्ग हिंदी के साथ-साथ अंग्रेज़ी या अरबी-फ़ारसी का भी प्रयोग करता रहा है जिसके परिणामस्वरूप कुछ शब्द हिंदी में अपनी प्रकृति के अनुरूप ढल कर आ गए हैं।

अंग्रेज़ी : बटन, फ़ोस, पिन, पेट्रोल, पुलिस, पेंसिल, बूट, निब, कैमरा, फोटो, रेडियो, सिनेमा, साइकल, कैलेंडर, फ्रेम, पैंट, जींस, लेंस, नाइट्रोजन, डॉक्टर, कॉलेज, ऑफिस, कॉल, कॉन्फ्रेंस, टॉफी, टॉकीज, पोलिश, फॉर्म, फुटबाल, मनीआर्डर, हॉल, ऑक्सीज़न आदि।

अरबी : कब्र, ख़राब, कागज़, कानून, अल्लाह आदि।

फ़ारसी : कमर, कम, ख़ाक, गुम, वापस, खुदा आदि।

तुर्की : चाकू, तोप, लाश, उर्दू (छावनी), जैसे :- उर्दू बाज़ार =छावनी, मोरी (घोड़ा), उदाहरण – मोरी गेट, तमगा, चकमक आदि।

पुर्तगाली : (अधिकतर गुजराती, मराठी के माध्यम से) अलमारी, कमीज़, कमरा, मेज़, इस्पात, तौलिया, नीलाम, पादरी, काजू आदि।

फ्रांसीसी : कारतूस, अंग्रेज़ (<आंग्लिस), ऐडवोकेट, मेयर, लैंप, वारंट, सूप, कूपन आदि।

स्पेनी : सिगार, सिगरेट, कार्क, पीउन आदि।

जर्मन : ट्रेन, सेमिनार आदि।

जापानी : रिक्शा, जूड़ो आदि।

रूसी : सोवियत, स्पुतनिक, जार आदि।

इतालियन : लॉटरी, कारटून, रॉकेट, गज़ट, सोनेट, मलेरिया, स्टूडियो, पियानो, वायलिन आदि।

हिंदी में प्रयुक्त भारतीय भाषाओं के शब्द

मराठी : बाजू, लागू, चालू आदि।

बांग्ला : रसगुल्ला, चमचम, उपन्यास, गल्प, आपत्ति आदि।

पंजाबी : सिक्ख, खालसा, भांगड़ा आदि।

ओडिया : अटका आदि।

द्रविड परिवार की भाषाओं के शब्द

संताली : कोड़ी, गंडा, गाही आदि।

गुजराती : हड़ताल, गरबा आदि।

(संदर्भ : देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण (2016). नई दिल्ली : केंद्रीय हिंदी निदेशालय)

संकर शब्द

मिश्रित या मिली हुई शब्दावली को संकर शब्दावली कहते हैं। इस शब्दावली में उन सभी सामासिक शब्दों को रखा जा सकता है जिनका निर्माण दो या दो से अधिक भाषा परिवारों से लिए गए शब्दों से किया गया है। संकर शब्दों के निर्माण की मुख्यतः दो पद्धतियाँ हैं – (1) दो विभिन्न भाषाओं के शब्दों का समास द्वारा जुड़ कर एक हो जाना, और (2) एक भाषा का पूरा शब्द और दूसरी भाषा के उपसर्ग या प्रत्यय का जुड़कर एक हो जाना। जैसे

समास द्वारा संकर शब्द का निर्माण

खेल-तमाशा (हिं +अ)

थका-मांदा (हिं + फा)

बारूद-खाना (तु + फा)

माल-गाड़ी (अ + हिं)

रेल-गाड़ी (अं + हिं)

एक भाषा का उपसर्ग + दूसरी भाषा का शब्द

फ़ारसी उपसर्ग ‘बे’ = बिना/ बगैर/ सिवाय

बे + अदब (अ) = बेअदब

बे + आबरू (फा) = बेआबरू

बे + काबू (तु) = बेकाबू

बे + घर (हिं) = बेघर

एक भाषा का शब्द + दूसरी भाषा का प्रत्यय

फ़ारसी प्रत्यय ‘दार’ = रखने वाला/ से युक्त

(हिं) काँटे + दार = काँटेदार

(अ) तहसील + दार = तहसीलदार

(हिं) फल + दार = फलदार

संकर शब्द निर्माण के अन्य उदाहरण –

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो उपसर्ग और प्रत्यय की तरह शब्दों के प्रारंभ और अंत में जुड़ कर नए समास शब्द बनाते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी शब्द 'चोर' लिया जा सकता है –

चोर + बाजार (फा) = चोरबाजार — (अ) कफन + चोर = कफनचोर

चोर + रास्ता (फा) = चोररास्ता — (हिं) काम + चोर = कामचोर

चोर + ताला (हिं) = चोरताला — (अं) टैक्स + चोर = टैक्सचोर

इसी प्रकार निम्नलिखित कुछ अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं –

खून-पसीना (फा+हिं), अज़ाबघर (अ+हिं), तोपगाड़ी (तु+हिं), टिकटघर (अं+हिं), चमकदार (हिं+फा), गोताखोर (अ+फा), बावर्चीखाना (तु+फा), डबलरोटी (अं+hin), खुश-किस्मत (फा+अ), बेटिकट (फा+अं), लाठी-चार्ज (हिं+अं)

11.4 : पाठ का सार

'हिंदी भाषा समुदाय' मूलतः बहुबोली समुदाय है जिसमें ब्रज, अवधी, बुंदेली, बघेली, मारवाड़ी और खड़ीबोली आदि भिन्न भिन्न बोलियाँ या वाक् आचरण विद्यमान हैं। इनमें से ही एक बोली (खड़ीबोली) सम्मानित बनकर समुदाय की भाषा बनी है जो अपने बोली क्षेत्र की सीमाओं को तोड़कर अन्य बोली क्षेत्रों तक फैली हुई है। भौगोलिक दृष्टि से हिंदी के भाषा समाज का विस्तार बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र तक व्याप्त है। इसके अंतर्गत काफी बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो प्रायः केवल अपनी-अपनी स्थानीय या क्षेत्रीय बोलियाँ और उपबोलियाँ ही बोलते हैं। इन बोलियों में खड़ीबोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुंदेली, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, नेपाली, कुमाऊँनी, गढ़वाली, मैथिली, भोजपुरी, मगही, अंगिका और बज्जिका नामक बोलियाँ सम्मिलित हैं। इसमें संदेह नहीं कि 'बोलियाँ' ही भाषा की संरक्षक होती हैं।

हिंदी की बोलियों को 5 वर्गों या उपभाषाओं में वर्गीकृत किया जाता है। इनमें पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी प्रमुख हैं। पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है जबकि पूर्वी हिंदी अर्धमागधी से विकसित है इसलिए इन दो उपभाषाओं में क्रमशः शौरसेनी और अर्धमागधी की विशेषताएँ मिलती हैं। इस प्रकार भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टियों

से पश्चिमी और पूर्वी हिंदी में पर्याप्त अंतर है। इन दोनों उपभाषाओं में ध्वनि, परसर्ग, मूल रूप, सर्वनाम एवं क्रिया रूपों में बहुत से अंतर देखे जा सकते हैं।
आज जिस भाषा रूप को परिनिष्ठित या मानक हिंदी कहा जाता है, उसका आधार मुख्यतः खड़ीबोली है। खड़ीबोली या कौरवी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है तथा इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, दिल्ली का कुछ भाग, बिजनौर, रामपुर तथा मुरादाबाद है। लोक साहित्य की दृष्टि से खड़ीबोली बहुत संपन्न है और इसमें पवाड़ा, नाटक, लोककथा, लोकगीत आदि पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। परिनिष्ठित हिंदी के समान ही उर्दू, हिंदुस्तानी तथा दक्खिनी बड़ी सीमा तक खड़ीबोली पर आधारित हैं। इसमें दो राय नहीं कि 'खड़ीबोली' हिंदी भाषा का उसी प्रकार एक क्षेत्रीय भेद है, जिस प्रकार हिंदी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रगत भेद [बोलियाँ] हैं। परंतु परिनिष्ठित खड़ीबोली का पूरे देश में प्रसार होने के कारण इसका स्वरूप 'अक्षेत्रीय' हो गया है। औपचारिक अवसरों पर तथा अंतर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर खड़ीबोली के 'मानक भाषा रूप' (परिनिष्ठित रूप) अथवा 'व्यावहारिक हिंदी' का प्रयोग प्रचलन में है।

इतिहास की बात करें तो, हिंदी भाषा का विकास मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं – पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के क्रमशः जनभाषा से परे होते जाने पर उस काल की विभिन्न जनभाषाओं के आधार पर हुआ है। अपभ्रंश भाषा लगभग 10वीं शताब्दी तक आते-आते सामान्य प्रचलन से बाहर हो गई। उसने धीरे-धीरे आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के लिए रास्ता छोड़ दिया। इसी समय से अर्थात लगभग 11वीं शताब्दी के प्रारंभ काल से हिंदी के विकास की भी कहानी आरंभ होती है। हिंदी के 1000 वर्ष के इतिहास का अध्ययन तीन चरणों/ सोपानों में विभाजित करके किया जा सकता है – 1.हिंदी भाषा का आदिकाल (1000 ई. – 1500 ई.); 2. हिंदी भाषा का मध्य काल (1500 ई. - 1800 ई.); 3.हिंदी भाषा का आधुनिक काल (1800 ई. - वर्तमान)।

शब्द संपदा की दृष्टि से हिंदी अत्यंत समृद्ध भाषा है। उसके समस्त शब्द समूह का स्रोतगत वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है – 1- संस्कृत परंपरा से आगत 'तत्सम' शब्द; 2- संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा से विकसित 'तद्भव' शब्द; 3- पारंपरिक रूप से प्रचलित 'देशज' शब्द; 4- हिंदी में आगत 'विदेशी' शब्द और 5-'संकर' शब्द।

11.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश पड़ा है -

1. हिंदी भाषा समाज की बहु बोलीय प्रकृति ।
2. हिंदी उपभाषाएँ और बोलियाँ
3. हिंदी का नामकरण और इतिहास ।
4. हिंदी का शब्द समूह ।

11.6 : शब्द संपदा

1. विषमरूपी	:	heterogenous
2. समरूपी	:	homogenous
3. वाक् संकेत	:	speech symbols
4. बोलियाँ	:	dialects
5. बोधगम्यता	:	comprehensibility/ intelligibility
6. कोड	:	code (भाषा रूप)
7. अष्टम अनुसूची	:	eighth schedule
8. परिनिष्ठित हिंदी	:	मानक हिंदी (standarad hindi)
9. क्षेत्रीय	:	regional
10. संवृत	:	closed : जब जिह्वा और मुखविवर ऊपरी सतह के बीच कम दूरी रहती है तो संवृत ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं।
11. विवृत	:	open : खुला हुआ। जब जिह्वा और मुखविवर के ऊपरी भाग में अधिक दूरी रहती है तो विवृत की उत्पत्ति होती है।
12. ओष्ठ्य	:	labial : इन ध्वनियों की उत्पत्ति के मूल में होठ होते हैं।
13. परसर्ग	:	post-position/ post-fix

11.7: परीक्षार्थ प्रश्न

खंड – (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्निखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए।

1. पश्चिमी और पूर्वी हिंदी के बीच निहित अंतर को रेखांकित कीजिए।

2. दक्खिनी हिंदी की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।

3. हिंदी भाषा के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालिए।

4. हिंदी भाषा के काल विभाजन पर प्रकाश डालिए।

5. हिंदी भाषा के शब्द समूह को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

खंड - (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250 शब्दों में लिखिए।

1. हिंदी के संकर शब्दों पर टिप्पणी लिखिए।

2. हिंदी भाषा समाज की बहुबोलीयता पर प्रकाश डालिए।

3. मानक भाषा के रूप में खड़ीबोली के महत्व को रेखांकित कीजिए।

4. ब्रज भाषा की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

5. हिंदी भाषा के नामकरण और उसके क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

i. सही विकल्प चुनिए.

1. 'कफनचोर' शब्द किस वर्ग का है ?
   (A) विदेशी शब्द (B) तत्सम शब्द (C) संकर शब्द (D) तद्भव शब्द

2. भाषा समाज में मिलने वाले विभिन्न वाक् आचरणों को कहा जाता है ।
   (अ) पिजिन (आ) क्रियोल (इ) कोड (ई) मैट्रिक्स

3. मध्य प्रदेश राजभाषा नियम के अंतर्गत ________क्षेत्र में है ।
   (अ) क (आ) ख (इ) ग (ई) घ

4. मैथिलि और नेपाली संविधान की किस अनुसूची में हैं।
   (अ) 7 (आ) 8 (इ) 9 (ई) 10

ii. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. गियर्सन ने पश्चिमी हिंदी ____________बोलियों का उल्लेख किया ।

2. पश्चिमी हिंदी का विकास ____________अपभ्रंश से हुआ ।

3. कौरवीं _____________का दूसरा नाम है ।

iii. सुमेल कीजिए।

1. ऋषि	(अ) तद्भव
2. सुहाग	(आ) पुर्तुगाली

3. कमरा (इ) तत्सम

4. लाश (ई) तुर्की

11.8 : पठनीय पुस्तकें

1. बाहरी, हरदेव (1965). हिंदी : उद्भव, विकास और रूप

2. भाटिया, कैलाशचंद्र (1967). हिंदी में अंग्रेज़ी के आगत शब्दों का भाषा तात्विक अध्ययन

3. (सं) डॉ. नगेंद्र, डॉ. हरदयाल (2014, पुनर्मुद्रण).हिंदी साहित्य का इतिहास

4. श्रीवास्तव, रवींद्रनाथ (1990 तृतीय संशोधित संस्करण). हिंदी का सामाजिक संदर्भ

5. देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण (2016). नई दिल्ली : केंद्रीय हिंदी निदेशालय

इकाई 12 : हिंदी के विविध रूप

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 मूल पाठ: हिंदी के विविध रूप

12.3.1विभाषा /बोली के दृश्य में हिंदी

12.3.2 परिनिष्ठित / मानक भाषा के दृश्य में हिंदी

12.3.3 राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी

12.3.4 राजभाषा के रूप में हिंदी

12.3.5 संपर्क भाषा के रूप में हिंदी

12.4 पाठ सार

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

12.6 शब्द संपदा

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

12.8 पठनीय पुस्तकें

12.1 : प्रस्तावना

भाषा मूलतः विषम रूपी होती है. हिंदी भी इसका अनुवाद नहीं है. प्रस्तुत इकाई में आप हिंदी के विविध रूपी –यथा – विभाषा या बोली, परिनिष्ठित या मानक भाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा का अध्ययन करेंगे.

12.2 : उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करके आप-

- विभाषा या बोली के रूप में हिंदी की भूमिका से परिचित हो सकेंगे.
- परिनिष्ठित या मानक हिंदी के रूप को समझ सकेंगे.
- राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी का महत्त्व को जान सकेंगे.
- राजभाषा संबंधी प्रावधानों से अवगत हो सकेंगे.
- संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के प्रार से परिचित हो सकेंगे.

12.3 : मूल पाठ : हिंदी के विविध रूप

(1) विभाषा/ बोली के रूप में हिंदी

'वर्धा हिंदी कोश' में विभाषा का अर्थ इस प्रकार दिया गया है – 'विभाषा (सं.) [सं-स्त्री.] 1. बोली; क्षेत्रीय भाषा; किसी भाषा का स्थानीय भेद 2. विकल्प; चुनाव 3. एक रागिनी।' 'हिंदी खोज' (ऑनलाइन कोश) में विभाषा का अर्थ इस प्रकार दिया गया है – 'स्त्री० [सं०] [वि० वैभाषिक] 1. यह कहना कि ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। 2. व्याकरण में, ऐसा प्रयोग जिसके संबंध में उक्त प्रकार के दोहरे मत, विचार या सिद्धांत मिलते हों। 3. उक्त मतों नियमों आदि के चुनाव के संबंध में होने वाली स्वतंत्रता। 4. भाषाविज्ञान में किसी भाषा की कोई ऐसी बड़ी शाखा जो उसके विशिष्ट विभाग के अंतर्गत हो और जिसके कई स्थानिक भेद, प्रभेद भी हों। बोली (डायलेक्ट)। 'भगवत्पतंजलि विरचित 'व्याकरण महाभाष्य' (प्रथम नवाह्निक) में विकल्प के रूप में विभाषा का प्रयोग करते हुए कहा गया है कि 'साधु शब्दों के अनुशासन रूप इस व्याकरण शास्त्र में जिसको विभाषा कहा है उसका साधुत्व भी विभाषित एवं वैकल्पिक होना चाहिए। 'संगीत रत्नाकर : एक अध्ययन' (श्रीराजेश्वरमिश्र) में भी 'विभाषा' शब्द का प्रयोग विकल्प के रूप में किया गया है। इन विविध अर्थों में भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह अर्थ अधिक सटीक प्रतीत होता है –'किसी भाषा की कोई ऐसी बड़ी शाखा जो उसके विशिष्ट विधा के अंतर्गत हो और जिसके कई स्थानिक भेद और प्रभेद भी हो।'

भाषाविज्ञान में 'विभाषा' का प्रयोग किसी भाषा की बोली के लिए किया जाता है। लेकिन श्यामसुंदरदास के अनुसार, विभाषा क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है -'एक प्रांत अथवा उपप्रांत की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा 'विभाषा' कहलाती है।' देवेंद्रनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान की भूमिका' में विभाषा के संदर्भ में कहा है – 'एक परिनिष्ठित भाषा के अंतर्गत अनेक विभाषाएँ या बोलियाँ हुआ करती हैं। भाषा के स्थानीय भेद से प्रयोग भेद में जो अंतर पड़ता है, उसीके आधार पर विभाषा का निर्माण होता है।' उदाहरण के लिए-

जाता हूँ – खड़ीबोली

जात हई – भोजपुरी

जा हौं – ब्रजभाषा

जा ही – मगही।

इन चारों उदाहरणों में स्थान भेद के कारण एक ही क्रिया 'जा' विभिन्न बोलियों में विभिन्न रूप से प्रयुक्त हुई है। इनके बीच बोधगम्यता है। देवेंद्रनाथ शर्मा के अनुसार, बोधगम्यता रखते हुए भी स्थानीय भेद के कारण पाए जाने वाले भाषा के विभिन्न रूपों को विभाषा कहा जा सकता है। इस दृष्टि से अंग्रेजी में विभाषा को 'डायलेक्ट' कहा जाता है। 'A Dialect is a particular form of a language which is peculiar to a specific region or social group.'

(2) **परिनिष्ठित / मानक भाषा के रूप में हिंदी**

परिनिष्ठित अथवा मानक भाषा में ऐतिहासिकता, मानकता, जीवंतता और स्वायत्तता के गुण विद्यमान होते हैं। 'परिनिष्ठित' या 'मानक भाषा' भाषा के उस रूप को कहते हैं जो अपने पूरे प्रयोग क्षेत्र में शुद्ध मानी जाती है तथा जिसे उस क्षेत्र विशेष का शिक्षित वर्ग एक आदर्श भाषा मानता है और उसीका प्रयोग करना चाहता है।

'मानकता' से तात्पर्य उस सापेक्ष स्थिति से है जो संबंधित कई समान स्थितियों में 'मान' अथवा 'आदर्श' के रूप में ग्राह्य अथवा स्वीकार्य होती है। अतः 'मानक भाषा' से तात्पर्य किसी भाषा समूह के उस भाषा रूप से है जो उस भाषा के अन्य समस्त भाषा रूपों को 'मानक' के रूप में स्वीकार हो; अर्थात उस भाषा के बोलने वाले उस भाषा रूप का प्रयोग अन्य भाषा-भाषियों के साथ करें और अपनी अधीनस्थ बोली के प्रयोग करने वालों के साथ उस रूप का प्रयोग करते समय 'प्रतिष्ठा' का अनुभव करें। इसका अर्थ यह हुआ कि मानक भाषा, किसी भी भाषा की उस सामाजिक बोली (या भाषा रूप) को कहा जा सकता है जो उस भाषा के बोलने वालों के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है। अतः 'मानक भाषा' की संकल्पना मुखय रूप से 'सामाजिक' है, 'संरचनात्मक' नहीं। इसी से देश की राजधानी अथवा अन्य किसी महत्वपूर्ण केंद्र के पढ़े-लिखे अथवा सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण लोगों की बोली को ही सामान्य रूप से 'मानक भाषा' का नाम दे दिया जाता है (रॉबिन्स[1966]. जेनरल लिंग्विस्टिक्स. लांगमैन लिंग्विस्टिक्स लाइब्रेरी)।इसे यों भी कहा जा सकता है कि समाज के मानक वर्ग की भाषा ही मानक भाषा है। अपनी मानकता अर्थात प्रतिष्ठा के कारण कभी मानक भाषा ही राष्ट्रभाषा भी बन जाती है। हिंदी के जिस रूप का प्रयोग प्रायः औपचारिक आवासों, साहित और मीडिया में किया जाता है, वह परिनिष्ठित या मानक हिंदी है. इसका विकास कड़ी बोली के मानकीकरण के आधार पर हुआ है.

(3) राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी

राष्ट्रभाषा से तात्पर्य उस भाषा से है, जो किसी राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। किसी राष्ट्र को इस भाषा के माध्यम से राष्ट्र के भीतर और बाहर जाना तथा पहचाना जाता है। कोई भी भाषा राष्ट्रभाषा के पद पर तभी आसीन हो सकती है, जब वह किसी राष्ट्र या देश की पहचान की क्षमता से पूर्ण हो। अपनी इसी क्षमता के कारण हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में पहचानी जाती है – यद्यपि संविधान में उसके लिए 'राष्ट्रभाषा' पद का प्रयोग नहीं किया गया है।

आप जानते होंगे कि भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक कारणों से आधुनिक काल तक आते-आते हिंदी देश भर में काफी प्रचारित और प्रसारित हो चुकी थी। एडवर्ड टेरी ने 1655 में लिखे अपने यात्रा-विवरण में हिंदुस्तानी को पूरे भारत की भाषा कहा था। 1852 में गार्साँ द तासी ने भी यही बात कही थी। इस प्रसार का परिणाम यह हुआ कि आधुनिक काल के प्रारंभ से ही भारत के अनेक हिंदीतर भाषी लोग हिंदी को अखिल भारतवर्षीय भाषा मानने लगे। देश में सबसे पहले बंगाल और मुंबई में जागृति हुई और राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर भी सर्वप्रथम वहीं के लोगों का ध्यान गया। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने की बात अपने एक भाषण में कही थी। मुंबई फ्री चर्च कॉलेज के मराठी भाषी प्राध्यापक श्री पेठे ने 1864 में 'राष्ट्रभाषा' नाम की एक मराठी पुस्तक में यह स्पष्ट किया कि "भारत के लिए एक भाषा आवश्यक है और वह हिंदी है।" इसी क्रम में बंगाल के महान धार्मिक नेता केशवचंद्र सेन ने 'सुलभ समाचार' में 1875 में स्पष्ट शब्दों में भारत की एकता के लिए एक भाषा पर बल दिया और इसके लिए हिंदी अपनाने को कहा था। पेठे और सेन को इस क्षेत्र में अगुआ माना जा सकता है, यद्यपि राष्ट्रभाषा आंदोलन उसके बाद में प्रारंभ हुआ। इसके बाद भी हिंदीतर भाषी भारतीयों ने ही राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को तथा इस आंदोलन को विशेष रूप से आगे बढ़ाया। ऐसे लोगों में महर्षि दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, पं॰ग॰र॰ वैशंपायन, न॰वि॰गाडगिल, सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या तथा अनंतशयनम अय्यंगार आदि प्रमुख हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के आरंभिक दिनों में महात्मा गांधी का ध्यान राष्ट्रभाषा के महत्व की ओर गया। 1909 में 'हिंद स्वराज' के 18वें अध्याय में उन्होंने लिखा था, 'हर एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। ... सारे हिंदुस्तान के लिए अखिल देशीय भाषा हिंदी होनी चाहिए। ... ऐसा होने पर हम अपने आपस के व्यवहार से अंग्रेजी को निकाल बाहर कर सकेंगे।' तभी से वे इसके लिए प्रयत्नशील भी रहे। 1917 में भड़ोंच में दूसरी गुजरात

शिक्षा-परिषद में सभापति पद से भाषण देते हुए उन्होंने इस मुद्दे को गंभीरता से उठाया। यह वह समय था जब राष्ट्रभाषा के लिए अंग्रेजी का नाम भी बड़े ज़ोर-शोर से लिया जाने लगा था। गांधी जी ने उसी दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार किया। उन्होंने कहा:

"अगर गहरे पैठकर हम सोचें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती और न उसे बनाना चाहिए। इसे ठीक से समझने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि किसी भाषा के राष्ट्रभाषा बनने के लिए क्या-क्या बातें आवश्यक हैं। ऐसी बातें पाँच हैं –

(1) सरकारी कर्मचारियों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए,

(2) भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसके माध्यम से पूरे भारत में धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक विचार-विनिमय हो सके,

(3) उसका भारत के काफी लोग प्रयोग करते हों,

(4) राष्ट्र के लिए सरल हो,

(5) ऐसी भाषा का चुनाव करने में मात्र अल्पकालिक या वर्तमान लाभ ही न देख कर दूर तक देखना चाहिए।"

आगे विस्तार से विचार करते हुए उन्होंने यह स्पष्ट किया था कि अंग्रेजी में इनमें से कोई भी गुण नहीं है, और इनमें कोई भी ऐसा गुण नहीं है जो हिंदी में न हो, इसलिए हिंदी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार के उद्देश्य से 1918 में मद्रास में दक्षिण भारत हिंदी (हिंदुस्तानी) प्रचार सभा की स्थापना की। उनके चौथे सुपुत्र देवदास गांधी को प्रथम हिंदी प्रचारक के रूप में अज भी जाना आ जाता है। गांधी जी आजीवन दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के अध्यक्ष रहे। उन्हीं के प्रयास का फल था कि 1925 में कानपुर के कांग्रेस-अधिवेशन में कांग्रेस की महा समिति और कार्यकारिणी का काम हिंदी (हिंदुस्तानी) में करने का प्रस्ताव पारित हो गया। हिंदीतर भाषी नेताओं में सुभाष चंद्रबोस का नाम भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। वे सरल हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में थे। 1938 में हरिपुर कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया था। इस तरह स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में व्यापक जन स्वीकृति पा चुकी थी।

(4) राजभाषा के रूप में हिंदी

'राजभाषा' उस भाषा को कहा जाता है जिसका व्यवहार 'सरकारी कामकाज की भाषा' के रूप में होता है। भारत संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी को भारतीय संविधान में 14 सितंबर 1949 को स्वीकृति प्राप्त हुई। संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि संघ की राजभाषा

देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी होगी (भारत का संविधान, अध्याय 17 अनुच्छेद 343)। यहाँ संघ की राजभाषा से तात्पर्य संघ के वैधानिक, प्रशासनिक तथा न्यायिक आदि कार्यों के लिए प्रयुक्त भाषा से है। अतः राजभाषा को कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है – वह भाषा जो सरकार द्वारा हर प्रकार के प्रशासनिक कार्यकलाप के लिए संवैधानिक मान्यता प्राप्त करके प्रयोग में लाई जाती है, राजभाषा कहलाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 351 में हिंदी के विकास के लिए निर्देश भी दिए गए हैं। भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में संवैधानिक मान्यता केवल हिंदी को ही प्राप्त है। उस समय यह व्यवस्था की गई थी कि संविधान लागू होने के बाद 15 वर्ष की अवधि पूरी होने तक अंग्रेजी सहराज भाषा बनी रहेगी तथा उसके बाद राजकाज के हर क्षेत्र में उसके स्थान पर हिंदी को लागू कर दिया जाएगा। परंतु राजनैतिक समीकरणों के बदल जाने के कारण 15 वर्ष बाद भी अंग्रेजी को तब तक के लिए सह-राजभाषा बनने का अवसर मिल गया जब तक कि सारे राज्य एकमत न हों। अब वस्तुस्थिति यह है कि राजभाषा (हिंदी) संविधान में लिखे जाने के बावजूद सह-राजभाषा (अंग्रेजी) की पिछलग्गू भर रह गई है।

(5) संपर्क भाषा के रूप में हिंदी

'संपर्क भाषा' का प्रयोग अंग्रेजी' शब्द लिंक लैंग्वेज़' के प्रतिशब्द के रूप में किया जाता है। संपर्क भाषा का अर्थ है वह भाषा जो दो ऐसे समाजों के बीच संपर्क स्थापित करने का काम करे, जिनकी अपनी भाषाएँ एक न हों। हिंदी को इसी रूप में व्यापक आम जन की संपर्क भाषा बनाने का यत्न हो रहा है। इस समय देश में एक सीमा तक (अंग्रेजी जानने वाले समुदाय की) संपर्क भाषा अंग्रेजी है। धीरे-धीरे अंग्रेजी का प्रयोग सीमित होता जाएगा। कई हिंदी भाषी प्रदेश अंग्रेजी को छोड़कर अपना राजकाज काफी कुछ हिंदी में करने लगे हैं। ऐसे ही गुजरात में गुजराती में, महाराष्ट्र में मराठी में, पंजाब में पंजाबी में तथा तमिलनाडु में तमिल में काम होने लगा है। इस प्रकार जब धीरे-धीरे सभी प्रदेश अपनी-अपनी भाषा को अपना लेंगे तो सहज ही अंग्रेजी का उस रूप में प्रयोग नहीं हो सकेगा, जिस रूप में आज हो रहा है और अंततः हिंदी संपर्क भाषा बनेगी। हिंदी के संपर्क भाषा होने का सरकारी तथा गैर सरकारी स्तरों पर अर्थ होगा -

(क) केंद्र सभी प्रदेशों से हिंदी भाषा के माध्यम से संपर्क स्थापित करेगा तथा हिंदी और हिंदीतर भाषी प्रदेश केंद्र से हिंदी के माध्यम से ही संपर्क करेंगे।

(ख) हिंदीतर भाषी प्रदेश हिंदी प्रदेशों से तथा हिंदी प्रदेश हिंदीतर प्रदेशों से भी हिंदी के माध्यम से ही संपर्क करेंगे।

(ग) हिंदीतर भाषी प्रदेश आपस में एक दूसरे से हिंदी के माध्यम से संपर्क करेंगे।

(घ) अपने निजी कामों में हिंदी भाषी हिंदीतर भाषियों से हिंदी में संपर्क करेंगे तथा हिंदीतर भाषी हिंदी भाषियों से संपर्क के लिए हिंदी की सहायता लेंगे।

(ङ) हिंदीतर भाषी व्यक्ति आपस में अपने निजी कामों में हिंदी के माध्यम से संपर्क करेंगे। इस तरह हिंदी अनेक स्तरों पर संपर्क का माध्यम बनेगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि लंबे समय से धर्म, व्यापार-वाणिज्य और पर्यटन के क्षेत्र में भारत के भिन्न-भिन्न भाषाभाषी हिंदी का संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार करते हैं। इस अर्थ में वह अपने भारतीय प्रकार्य के संदर्भ में संस्कृत की उत्तराधिकारी है।

12.4 : पाठ सार

किसी भी भाषा के एकाधिक रूपों या भाषा वैविध्यों को प्रायः इतिहास, भूगोल, प्रयोग, निर्माण, मानकता और मिश्रण के आधार पर अलग-अलग पहचाना जाता है। भाषा इन विविध रूपों को भाषा प्रकार (Language Type) तथा भाषा प्रयोग या भाषा-प्रकार्य (Language Function) के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। भाषा प्रकार के आधार पर भाषा के मानक भाषा, क्लासिकी भाषा, अवभाषा (Vernacular), क्रियोल (Creole), पिजिन (Pidgin) तथा कृत्रिम आदि भेद होते हैं, जबकि भाषा-प्रयोग या भाषा-प्रकार्य के आधार पर बोलचाल की भाषा, साहित्य भाषा, तकनीकी भाषा, धार्मिक भाषा, राजभाषा आदि।

'परिनिष्ठित अथवा मानक भाषा' में ऐतिहासिकता, मानकता, जीवंतता और स्वायत्तता के गुण विद्यमान होते हैं। 'परिनिष्ठित' या 'मानक भाषा' भाषा के उस रूप को कहते हैं जो अपने पूरे प्रयोग क्षेत्र में शुद्ध मानी जाती है तथा जिसे उस क्षेत्र विशेष का शिक्षित वर्ग एक आदर्श भाषा मानता है और उसीका प्रयोग करना चाहता है। इस रूप में हिंदी आज शिक्षा से लेकर मीडिया तक व्यवहार में लाई जा रही है।

एक परिनिष्ठित भाषा के अंतर्गत अनेक 'विभाषाएँ या बोलियाँ' हुआ करती हैं। भाषा के स्थानीय भेद से प्रयोग भेद में जो अंतर पड़ता है, उसी के आधार पर विभाषा का निर्माण होता है। हिंदी की लगभग 20 मुख्य बोलियाँ अथवा विभाषाएँ स्वीकृत हैं।

'राष्ट्रभाषा' से तात्पर्य उस भाषा से है, जो किसी राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। किसी राष्ट्र को इस भाषा के माध्यम से राष्ट्र के भीतर और बाहर जाना तथा पहचाना जाता है। कोई भी भाषा राष्ट्रभाषा के पद पर तभी आसीन हो सकती है, जब वह किसी राष्ट्र या देश की पहचान की क्षमता से पूर्ण हो। अपनी इसी क्षमता के कारण हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में पहचानी जाती है – यद्यपि संविधान में उसके लिए 'राष्ट्रभाषा' पद का प्रयोग नहीं किया गया है।

'राजभाषा' उस भाषा को कहा जाता है जिसका व्यवहार 'सरकारी कामकाज की भाषा' के रूप में होता है। भारत संघ की राजभाषा एके रूप में हिंदी को भारतीय संविधान में 14 सितंबर 1949 को स्वीकृति प्राप्त हुई। संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी होगी (भारत का संविधान, अध्याय 17 अनुच्छेद 343)। यहाँ संघ की राजभाषा से तात्पर्य संघ के वैधानिक, प्रशासनिक तथा न्यायिक आदि कार्यों के लिए प्रयुक्त भाषा से है। अतः राजभाषा को कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है – वह भाषा जो सरकार द्वारा हर प्रकार के प्रशासनिक कार्यकलाप के लिए संवैधानिक मान्यता प्राप्त करके प्रयोग में लाई जाती है, राजभाषा कहलाती है।

लंबे समय से धर्म, व्यापार-वाणिज्य और पर्यटन के क्षेत्र में भारत के भिन्न-भिन्न भाषाभाषी हिंदी का 'संपर्क भाषा' के रूप में व्यवहार करते हैं। इस अर्थ में वह अपने अखिल भारतीय प्रकार्य के संदर्भ में संस्कृत की उत्तराधिकारी है।

'साहित्य भाषा' से तात्पर्य भाषा के उस रूप से है, जो किसी भी प्रकार की रचना के लिए अपनाया जाता है।। सामान्य से अलग हटकर जिस विशिष्ट भाषा का प्रयोग कवि करता है, वही भाषा की काव्यात्मक शैली कही जाती है। मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा मुख्य साहित्य भाषाएँ थीं, जबकि आज यह स्थान खड़ी बोली को प्राप्त है।

'तकनीकी भाषा' सामान्य भाषा की तुलना में विशिष्ट प्रयोग क्षेत्र के सापेक्ष भाषा वैविध्य है। तथ्यपरकता, अर्थ का स्थिरीकरण, तार्किकता, पारिभाषिकता और पारदर्शिता आदि तकनीकी भाषा की विशेषताएँ हैं। 1 अक्तूबर, 1961 को भारत सरकार ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की जिसने धीरे-धीरे अपने प्रयासों से मानक हिंदी का स्वरूप निर्धारित करते हुए वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य की रचना हेतु आवश्यक शब्दावली और साहित्य सामग्री निर्माण के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है।

भाषा का एक वैविध्य 'कृत्रिम भाषा' भी है। कृत्रिम भाषा उसे कहते हैं जिसे मनुष्य अपनी सुविधा या निहित उद्देश्य से गढ़ लेते हैं। कृत्रिम भाषा प्रयोग में कुछ समस्याएँ उत्पन्न होती हैं क्योंकि कृत्रिम भाषा दैनिक व्यवहार के लिए उपयुक्त कामचलाऊ भाषा होती है। इसमें न तो गंभीर विमर्श संभव है और न ही साहित्य रचना।'एस्पेरांतो' इस प्रकार की भाषा का प्रमुख उदाहरण है।

'संचार भाषा' के अंतर्गत पत्रकारिता की भाषा, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भाषा, विज्ञापन की भाषा, फिल्मों की भाषा, सोशल मीडिया की भाषा समाहित हैं। कहना न होगा

कि इन सभी क्षेत्रों में व्यापक और प्रभावशाली संचार भाषा के रूप में हिंदी अपनी लचीली प्रकृति के कारण स्वयं को भली प्रकार स्थापित कर चुकी है।

स्वतंत्रता आंदोलन के कर्णधारों ने भारत की जनता को एक सूत्र में बाँधने के लिए, स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूत करने के लिए और समस्त भारत को एक करने के लिए समूचे राष्ट्र के लिए एक भाषा की आवश्यकता अनुभव की थी। इस दृष्टि से उन्हें हिंदी सर्वाधिक उपयुक्त भाषा प्रतीत हुई थी। आज भी विविध बोलियों और विविध भाषाओं वाले भारतीय समाज के लिए एकसूत्रता की भाषा अर्थात राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की सकारात्मक भूमिका संदेह से परे है।

12.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि –

1. हिंदी का मूलतः विभिन्न बोलियों या विभाषाओं के रूप में व्यवहार किया जाता है ।
2. हिंदी के परिनिष्ठित या मानक स्वरुप का विकास खड़ी बोली के आधार पर हुआ है ।
3. संपर्क भाषा के रूप आधुनिक भारत में हिंदी वही भूमिका निभा रही है, जो प्राचीन भारत में संस्कृत ने निभाई थी ।
4. भारतीय राष्ट्रीय सतंत्रता आंदोलन की भाषा के रूप में अपनी भूमिका के कारण हिंदी ने राष्ट्र भाषा के रूप में पूरे देश में मान्यता प्राप्त की।
5. आज़ादी के बाद भारतीय संविधान निर्माताओं ने हिंदी को भारत संघ की राज भाषा का दर्जा दिया ।

12.6 : शब्द संपदा

1. भाषा वैविध्य : language varieties
2. परिनिष्ठित भाषा : मानक भाषा : standard language : अपने पूरे प्रयोग क्षेत्र में शुद्ध भाषा रूप।
3. भाषा प्रकार : language style
4. भाषा प्रकार्य : language function
5. अवभाषा : vernacular language : भाषा में जब सामाजिक दृष्टि से ऐसे प्रयोग आ जाते हैं जो शिष्ट रुचि को अग्राह्य प्रतीत होते हैं तो उसको 'अपभाषा' कहते हैं।
6. क्रियोल : creole
7. पिजिन : pidgin

8. तकनीकी भाषा : technical language

9. कृत्रिम भाषा : artificial language

10. राजभाषा : official language

11. राष्ट्रभाषा : किसी राष्ट्र की प्रतिनिधि करने वाली भाषा

12. संप्रेषण : communication

13. पारिभाषिक शब्द : technical terminology

14. संकल्पना : concept

15. विभाषा : क्षेत्रीय भाषा/ बोली/ किसी भाषा के स्थानीय भेद : बोधगम्यता रखते हुए भी स्थानीय भेद के कारण पाए जाने वाले भाषा के विभिन्न रूप

16. बोली : dialect : a dalect is a particular form of language which is peculiar to a specific form of a group.

17. संपर्क भाषा : link language : वह भाषा दो समाजों के बीच संपर्क स्थापित करने का काम करे, जिनकी अपनी भाषाएँ एक न हों।

12.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड – (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में उत्तर दीजिए.

1. भाषा और बोली के बीच निहित साम्य और वैषम्य पर प्रकाश डालिए।
1. बोलियाँ बनने के कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. राजभाषा विषयक संवैधानिक प्रावधान पर प्रकाश डालिए।
3. राष्ट्रपति द्वारा गठित आयोग पर प्रकाश डालिए।

खंड – (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रशों के उत्तर 250 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1. परिनिष्ठित भाषा से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
1. भाषा और बोली की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. विभाषा किसे कहते हैं? चर्चा कीजिए.

3. साहित्यिक भाषा से क्या तात्पर्य है?

4. संचार माध्यमभाषा और कृत्रिम भाषा पर टिप्पणी लिखिए.

5. राष्ट्रपति द्वारा गठित आयोग पर प्रकाश डालिए.

खंड – (स)

I. सही विकल्प चुनिए.

1. "भारत के लिए एक भाषा आवश्यक है और वह हिंदी है।" किसकी उक्ति हैं ?
(अ) एडवर्ड टेरी (आ) गार्साँ द तासी (इ) श्री पेठे

2. विभाषा का एक अर्थ है –
(अ) क्षेत्रीय भाषा (आ) राष्ट्र भाषा (इ) राजभाषा

3.'जात हई' किस बोली का प्रयोग है ।
(अ) खड़ी बोली (आ) भोजपुरी (इ) ब्रज भाषा

4. हिंद स्वराज के किस आध्याय में भाषा का जिक्र है ।
(अ) 17 (आ) 18 (इ) 19

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. राष्ट्रभाषा नाम की मराठी पुस्तक के लेखक _________हैं ।

2. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना ___________वर्ष में हुई ।

3. भारतीय संविधान के अनुच्छेद ______________में हिंदी के विकास के लिए निर्देश दिए गए हैं ।

III. सुमेल कीजिए.

1. जाता हूँ	अ) भोजपुरी
2. जात हई	आ) ब्रज भाषा
3. जा हौं	इ) मगही
4. जा ही	ई) खड़ीबोली

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. बाहरी, हरदेव (1965). हिंदी : उद्भव, विकास और रूप, इलाहाबाद : किताब महल

2. तिवारी, भोलानाथ (2007 पचासवाँ संस्करण). भाषाविज्ञान. इलाहाबाद : किताब महल

इकाई 13 : हिंदी भाषा का व्याकरण – एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 मूल पाठ: हिंदी भाषा का व्याकरण – एक परिचय

13.3.1संज्ञा और उसके भेद

13.3.2 सर्वनाम

13.3.3 विशेषण

13.3.4 क्रिया

13.3.5 अव्यय

13.4 पाठ सार

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

13.6 शब्द संपदा

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

13.8 पठनीय पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

व्याकरण के अंतर्गत शब्द विश्लेषण के दौरान शब्द के दो प्रकारों को प्रधानता दी जाती है – (1) संज्ञा और (2) क्रिया। अन्य अंग अपने विशिष्ट प्रकार्यों का निर्वाह करते हुए संप्रेषण प्रक्रिया को संपन्न करते हैं। संज्ञा शब्द और क्रिया शब्द दोनों में वाक्य रचना के संदर्भ में कुछ समानता मिलती है, तो कुछ असमानता भी। संज्ञा शब्द रूप का संबंध भाषा में दो और शब्द वर्गों से बनता है – विशेषण और सर्वनाम। इस प्रकार चार प्रमुख शब्द वर्ग हुए – संज्ञा, क्रिया, विशेषण और सर्वनाम। इसके साथ ही यह भी याद रखें कि इन शब्दों के दो रूप मिलते हैं - अविकारी रूप और विकारी रूप। इन दोनों के संदर्भ में लिंग और वचन का बोध तथा कारकीय रूप की स्थिति पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होगी। इस इकाई में हम विभिन्न शब्द-वर्गों के संदर्भ में हिंदी रूप रचना पर चर्चा करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से आप -

- हिंदी भाषा के व्याकरण से परिचित हो सकेंगे।
- संज्ञा और उसके उसके भेदों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- लिंग, वचन और कारक की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय को समझ सकेंगे।

13.3 मूल पाठ : हिंदी भाषा का व्याकरण – एक परिचय

13.3.1संज्ञा और उसके भेद

संज्ञा उन शब्दों का कहते हैं जिनसे किसी विशेष वस्तु, भाव और जीव के नाम का बोध होता है। वस्तु के अंतर्गत प्राणी, पदार्थ और धर्म सम्मिलित हैं। इसी के आधार पर संज्ञा के भेद किए जाते हैं। संज्ञा के पाँच भेद माने जाते हैं –

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा : जिस शब्द से किसी एक वस्तु या व्यक्ति का बोध हो, उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में व्यक्ति, दिशा, देश, राष्ट्रीय जाति, समुद्र, नदी, पर्वत, नगर, चौक, सड़क, पुस्तक, समाचार पत्र, ऐतिहासिक युद्ध और घटना, दिन-महीना और त्योहार-उत्सव के नामों को रखा जा सकता है। उदाहरण : व्यक्ति का नाम : रवीना, सोनिया, श्याम, हरि, सुरेश, सचिन आदि।

वस्तु का नाम : कार, टाटा चाय, कुरान, गीता, रामायण आदि।

स्थान का नाम : चारमीनार, हैदराबाद, जयपुर आदि।

दिशाओं के नाम : उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम।

देशों के नाम : भारत, जापान, अमेरिका, पाकिस्तान, बर्मा।

राष्ट्रीय जातियों के नाम : भारतीय, रूसी, अमेरिकी।

समुद्रों के नाम : काला सागर, भूमध्य सागर, हिंद महासागर, प्रशांत महासागर।

नदियों के नाम : गंगा, ब्रह्मपुत्र, वोल्गा, कृष्णा, कावेरी, सिंधु।

पर्वतों के नाम : हिमालय, विंध्याचल, अरावली।

नगरों, चौकों और सड़कों के नाम : वाराणसी, गया, चाँदनी चौक, हरिसन रोड।

पुस्तकों तथा समाचार पत्रों के नाम : रामचरितमानस, धर्मयुग, इंडियन नेशन।

ऐतिहासिक युद्धों और घटनाओं के नाम : पानीपत की पहली लड़ाई, सिपाही-विद्रोह, अक्तूबर क्रांति।

दिनों, महीनों के नाम : मई, अक्टूबर, जुलाई, सोमवार, मंगलवार।

त्योहारों, उत्सवों के नाम : होली, दीवाली, रक्षाबंधन, विजयादशमी।

2. जातिवाचक संज्ञा : जिन संज्ञाओं से एक ही प्रकार की वस्तुओं अथवा व्यक्तियों का बोध होता हो, उन्हें जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। उदाहरण : बच्चा, जानवर, नदी, अध्यापक, बाजार, गली, पहाड़, खिड़की, स्कूटर आदि शब्द एक ही प्रकार प्राणी, वस्तु और स्थान का बोध करा रहे हैं। इसलिए ये 'जातिवाचक संज्ञा' हैं।

3. भाववाचक संज्ञा : जिस संज्ञा शब्द से व्यक्ति या वस्तु या धर्म, दशा अथवा व्यापार का बोध होता है, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। भाववाचक संज्ञाएँ जातिवाचक संज्ञा, विशेषण, क्रिया, सर्वनाम और अव्यय से बनती हैं। भाववाचक संज्ञा में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, उनके धर्म में गुण, अवस्था या व्यापार होता है। उदाहरण : थकान, मिठास, बुढ़ापा, गरीबी, आजादी, हँसी, साहस, वीरता आदि शब्द-भाव, गुण, अवस्था तथा क्रिया के व्यापार का बोध करा रहे हैं। इसलिए ये 'भाववाचक संज्ञाएँ' हैं।

4. समूहवाचक संज्ञा : जिस संज्ञा से वस्तु अथवा व्यक्ति के समूह का बोध हो, उसे समूहवाचक संज्ञा कहते हैं। उदाहरण : व्यक्तियों का समूह : भीड़, जनता, सभा, कक्षा; वस्तुओं का समूह : गुच्छा, कुंज, मंडल।

5. द्रव्यवाचक संज्ञा : जिस संज्ञा से नाप-तोल वाली वस्तु का बोध हो, उसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। अर्थात जिन संज्ञा शब्दों से किसी धातु, द्रव या पदार्थ का बोध हो, उन्हें द्रव्यवाचक संज्ञा कहते है। उदाहरण : ताम्बा, पीतल, चावल, घी, तेल, सोना, लोहा आदि।

(अ) हिंदी संज्ञाओं के मूल या अविकारी रूप

रूप रचना की दृष्टि से संज्ञा शब्दों को दो कोटियों में रखा जा सकता है – (i) स्वरांत शब्द और (ii) व्यंजनांत शब्द। इसी आधार पर व्याकरणिक रूप घटित होते हैं। जो शब्द स्वर ध्वनि से अंत होते हैं उन्हें स्वरांत शब्द कहते हैं। जैसे मनुष्य, राजा, गुरु, बहू आदि। जिन शब्दों के अंत में ह्रस्व व्यंजन या असंयुक्त व्यंजन रहता है उन्हें व्यंजनांत कहते हैं। हिंदी की प्रकृति में अंतिम असंयुक्त व्यंजन का उच्चारण स्वर रहित होता है। उदाहरण के लिए कमल शब्द को लें। इसमें तीन अक्षर हैं। इनमें 'क' और 'म' व्यंजन लगते हैं, फिर भी उनमें दो ध्वनियाँ हैं – 'क्'+'अ' = 'क'; 'म्'+'अ'

= 'म'। ये पूर्ण रूप से अक्षर हैं। उनका उच्चारण भी दोनों ध्वनियों के साथ होता है। लेकिन 'ल' में लगता है कि स्वर ध्वनि है, पर उसका उच्चारण नहीं होता। मात्र 'ल्' व्यंजन का ही उच्चारण होता है। अर्थात लिखा 'कमल' जाता है पर उसका उच्चारण 'कमल्' होता है। इसीलिए इस शब्द को व्यंजनांत शब्द माना जाता है। इसी प्रकार के कुछ संज्ञा शब्द हैं – जल, मेज, किताब, पुस्तक आदि। शब्द चाहे किसी स्रोत से हिंदी में स्वीकृत हुआ हो उसका रूप या तो स्वरांत होगा या व्यंजनांत।

अंत में संयुक्त व्यंजन का होना व्यंजनांत शब्दों की पहचान है, जिसे 'अ' मिलित रूप में लिखा जाता है। स्वरांत के संदर्भ में हिंदी में व्यवहृत शब्द स्थिति का बोध पाना भी यहाँ उचित ही होगा। हिंदी में प्रचलित सभी स्वरों से अंत होने वाले शब्द नहीं हैं। 'ऐ' और 'औ' स्वरों से अंत होने वाले शब्द तो है ही नहीं। 'ओ' से अंत होने वाले कुछ विदेशी शब्द मिलते हैं जैसे रेडियो, मेक्सिको, एस्कीमो आदि। 'ऋ' स्वरांत शब्द भी नहीं हैं। शेष के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

- - अ = मनुष्य, काव्य, भक्त, वित्त
- - आ = घोड़ा, पिता, माता
- - इ = पति, सति, गति
- - ई = लड़की, मिठाई, रुई
- - उ = गुरु, मधु, ऋतु
- - ऊ = बहू, गेहूँ
- - ए = चौबे

इस तरह हिंदी के व्यवहार में आने वाले शब्द भंडार को व्यंजनांत और स्वरों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ में अंत होने वाले शब्दों के रूप में देख सकते हैं। ये अविकारी संज्ञा शब्द हैं।

(आ) हिंदी संज्ञाओं के विकारी रूप

संज्ञाओं के विकारी रूप (i) लिंग, (ii) वचन और (iii) कारक हैं। इन तीनों पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

(1) लिंग : परिभाषा एवं प्रकार

लिंग शब्द का अर्थ है - चिह्न या निशान। शब्द की जाति को लिंग कहते हैं। संज्ञा के जिस रूप से व्यक्ति या वस्तु की नर या मादा जाति का बोध हो, उसे व्याकरण में 'लिंग' कहा जाता है। सारी सृष्टि की तीन मुख्य जातियाँ हैं – पुरुष, स्त्री और जड़। इनके आधार पर ही पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग तीन भेद किए गए हैं। परंतु व्याकरणिक लिंग पूर्णतः

प्राकृतिक लिंग के अनुसार नहीं है। हिंदी भाषा में दो ही लिंग हैं – (i) पुल्लिंग और (ii) स्त्रीलिंग। सारे पदार्थ वाचक शब्द 'जड़' और 'चेतन' इन दो लिंगों में बने हुए हैं। वाक्यों में लिंग विशेषण, सर्वनाम, क्रिया और विभक्तियों में विकार उत्पन्न करता है।

कामता प्रसाद गुरु ने तत्सम और तद्भव शब्दों के लिंग निर्णय के लिए कुछ नियम दिए हैं। उनके अनुसार तद्भव पुल्लिंग शब्दों के लिए दस नियम हैं – ईकारांत संज्ञाएँ, ऊन वाचक यकारांत संज्ञाएँ, तकारांत संज्ञाएँ, ऊकारांत संज्ञाएँ, अनुस्वारांत संज्ञाएँ, सकारांत संज्ञाएँ, कृदंत नकारांत संज्ञाएँ, कृदंत की अकारांत संज्ञाएँ, जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में 'त,' 'वट,' 'हट' होता है, तथा जिन संज्ञाओं के अंत में 'ख' होता है, ऐसी समस्त तद्भव संज्ञाएँ पुल्लिंग मानी गई हैं। याद रखें कि इन सभी नियमों के अपवाद भी हैं। इसी प्रकार अर्थ के अनुसार तथा प्रत्ययों के आधार पर भी लिंग निर्धारण किया जाता है लेकिन ये नियम जटिल और अव्यावहारिक हैं।

उर्दू से होते हुए हिंदी में अरबी-फारसी के बहुत से शब्द आए हैं जिनका व्यवहार प्रतिदिन किया जाता है। विदेशी शब्दों में फारसी और अरबी शब्दों के बाद अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी होता है। वासुदेव नंदन प्रसाद ने 'आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना' में लिखा है कि हिंदी में अधिकतर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग पुल्लिंग में होता है। उनका मत है कि इन शब्दों के लिंग निर्णय में रूप के आधार पर अकारांत, आकारांत को पुल्लिंग और ईकारांत को स्त्रीलिंग समझना चाहिए। फिर भी इसके कुछ अपवाद हैं।

हिंदी में कुछ ऐसे अनेकार्थी शब्द प्रचलित हैं जो एक अर्थ में पुल्लिंग और दूसरे से स्त्रीलिंग होते हैं। ऐसे शब्द 'उभयलिंगी' कहलाते हैं। जैसे – कल, टीका, पीठ, कोटि, यति, बाट, शान आदि।

डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद ने लिंग निर्धारण के दस सरल सूत्रों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं –

1. हिंदी तद्भवों पर संस्कृत के तत्समों का सीधा प्रभाव है। तत्सम यदि पुल्लिंग अथवा नपुंसक है, तो उसका तद्भव पुल्लिंग ही होगा। तद्भव चाहे अकारांत हो या आकारांत, उनके तत्सम यदि अकारांत है तो ऐसे शब्द पुल्लिंग होंगे। जैसे : अकारांत : आम – आम्र; हाथ – हस्त; दूध – दुग्ध। आकारांत : कंधा – स्कंध; कोठा – कोष्ठ, पिंजड़ा – पिंजर।

2. तद्भव यदि अकारांत हों और उनके तत्सम आकारांत हों तो ऐसे शब्द स्त्रीलिंग होंगे। अर्थात तत्सम यदि स्त्रीलिंग है तो उनके विकृत रूप तद्भव भी स्त्रीलिंग होंगे। जैसे : संध्या – साँझ, नासिका – नाक, जिह्वा – जीभ।

3. यदि तद्भव और तत्सम दोनों अकारांत हैं तो दोनों ही पुल्लिंग होंगे। जैसे : ओष्ठ – ओठ, पक्ष – पंख, मयूर – मोर।

4. तत्सम ऊकारांत और उकारांत शब्द पुल्लिंग होते हैं। जैसे : ऊकारांत : प्रसू, भ्रू। उकारांत : अश्रु, जंतु। इसी तरह ऊकारांत तद्भव पुल्लिंग होते हैं। जैसे : जनेऊ, डाकू, आँसू।

5. जिस अकारांत या आकारांत संज्ञा का बहुवचन बनाने में कोई विकार नहीं होता, वह पुल्लिंग और जिस संज्ञा का बहुवचन बनाने में विकार होता हो, वह स्त्रीलिंग है। यह नियम सभी अप्राणिवाचक तत्सम तथा तद्भव संज्ञाओं पर लागू होता है। जैसे : राम के चार भवन हैं - पुल्लिंग (अविकृत)। राम के चार इमारतें हैं – स्त्रीलिंग (विकृत)।

6. आकारांत भाववाचक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं। जैसे : माया, लज्जा, दया, सुंदरता, मधुरता (अपवाद : बुढ़ापा)।

7. यदि बहुवचन बनाने पर संज्ञाओं का अंत्य 'आ,' 'ए' हो जाए तो ये संज्ञाएँ पुल्लिंग होती हैं। जैसे : लड़का लड़के, चूहा चूहे

8. द्रव्य वाचक संज्ञाएँ पुल्लिंग होती हैं। जैसे : सोना, तांबा, लोहा, पीतल, दही, पानी, मोती, घी पुल्लिंग हैं। (चाँदी इसका अपवाद है। चाँदी स्त्रीलिंग है)।

9. क्रियार्थक संज्ञाएँ पुल्लिंग होती हैं। जिस शब्द के अंत में 'ना' लगा हो, वह पुल्लिंग होता है। जैसे : लिखना, काटना, पढ़ना, टहलना।

10. द्वंद्व समास के समस्त शब्द पुल्लिंग होते हैं। जैसे : माता-पिता, सीता-राम, दाल-भात, भाई-बहन आदि।

(द्रष्टव्य : प्रसाद, वासुदेव नंदन (2011). आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना. पृ. 86-88)।

(2) वचन : परिभाषा एवं प्रकार

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के जिस रूप से संख्या का बोध हो, उसे वचन कहते हैं। वचन का शाब्दिक अर्थ है संख्या वचन। इसे ही संक्षिप्त रूप में वचन कहा जाता है। वचन का एक अर्थ कहना भी है। वचन दो प्रकार के हैं – एकवचन और बहुवचन।

1. विकारी शब्द में जिस रूप से एक पदार्थ या व्यक्ति का बोध होता है उसे एकवचन कहते हैं। जैसे : लड़का, घोडा, नदी, बच्चा।

2. विकारी शब्द के जिस रूप से एक से अधिक पदार्थ अथवा व्यक्तियों का बोध होता है उसे बहुवचन कहते हैं। सर्वनाम, क्रिया विशेषण के मूल रूप संज्ञाओं पर ही आधारित होते हंध इसलिए वचन में संज्ञा शब्द ही बदलते हैं। जैसे : लड़के, घोड़े, नदियाँ, बच्चे।

वचन के रूपांतर

वचन के कारण संज्ञा के रूप दो तरह से बदलते हैं – विभक्ति रहित और विभक्ति सहित। विभक्ति रहित संज्ञाओं के बहुवचन बनाने के आठ नियम हैं –

1. पुल्लिंग संज्ञा के आकारांत को एकारांत कर देने से बहुवचन बन जाता है। जैसे : लड़का – लड़के।

2. पुल्लिंग आकारांत के सिवा शेष मात्राओं से अंत होने वाले शब्दों के रूप दोनों वचनों में एक से रहते हैं। जैसे :

एकवचन	बहुवचन
बालक पढ़ता है।	बालक पढ़ते हैं।
हाथी आता है।	हाथी आते हैं।
दयालु आया।	दयालु आए।

3. आकारांत स्त्रीलिंग एकवचन संज्ञा शब्दों में 'एँ' लगाने से बहुवचन बनते हैं। जैसे : शाखा – शाखाएँ, वार्ता – वार्ताएँ।

4. अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन संज्ञा के अंतिम 'अ' को 'एँ' कर देने से बहुवचन बनता है। जैसे : गाय – गायें; रात – रातें।

5. इकारांत या ईकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं में अंत्य 'ई' को ह्रस्व कर अंतिम वर्ण के बाद 'याँ' जोड़ने से अर्थात अंतिम 'इ' या 'ई' को 'इयाँ' कर देने से बहुवचन बनता है। जैसे : तिथि – तिथियाँ, नीति – नीतियाँ, नारी – नारियाँ।

6. जिन स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में 'या' आता है, उनमें 'या' के ऊपर चंद्रबिंदु (याँ) लगाने से बहुवचन बनता है। जैसे : चिड़िया – चिड़ियाँ।

7. 'अ,' 'आ,' 'इ,' 'ई' के अलावा अन्य मात्राओं से अंत होने वाली स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अंत में 'एँ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। अंतिम स्वर 'ऊ' है तो उसे ह्रस्व कर 'एँ' जोड़ते हैं। जैसे : बहू – बहुएँ, वस्तु – वस्तुएँ।

8. संज्ञा के पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग रूपों में बहुवचन का बोध प्रायः गण, वर्ग, जन, लोग, वृंद लगाकर कराया जाता है। जैसे : जन/ जनगण, शिक्षक/ शिक्षक गण, अधिकारी/ अधिकारी वर्ग।

विभक्ति सहित संज्ञाओं के बहुवचन बनाने के नियम

विभक्ति होने पर शब्दों के बहुवचन बनाने में लिंग के कारण कोई परिवर्तन नहीं होता। इस विषय में सामान्य नियम इस प्रकार हैं –

1. अकारांत, आकारांत (संस्कृत शब्दों को छोड़कर) तथा एकारांत संज्ञाओं में अंतिम 'अ,' 'आ,' या 'ए' के स्थान पर बहुवचन बनाने में 'ओं' कर दिया जाता है। जैसे : लड़का – लड़कों (लड़कों ने कहा)।

2. संस्कृत की आकारांत तथा संस्कृत, हिंदी की सभी उकारांत, ऊकारांत, अकारांत और औकारांत संज्ञाओं का बहुवचन रूप बनाने के लिए अंत में 'ओं' जोड़ते हैं। ऊकारांत शब्दों में 'ओं' जोड़ने के पूर्व 'ऊ' को 'उ' कर दिया जाता है। जैसे : लता – लताओं (लताओं को देखो)।

3. सभी इकारांत और ईकारांत संज्ञाओं का बहुवचन बनाने के लिए अंत में 'यों' जोड़ा जाता है। ईकारांत शब्दों में 'यों' जोड़ने से पहले 'ई' का 'इ' कर दिया जाता है। जैसे : नदी – नदियों (नदियों का प्रवाह)।

4. दूसरी भाषाओं के तत्सम या तद्भव शब्दों का प्रयोग हिंदी व्याकरण के अनुसार होता है। जैसे : अंग्रेजी में 'फुट' (foot) एकवचन है और 'फीट' (feet) बहुवचन है। लेकिन हिन्दी में इसका प्रयोग 'दो फुट लंबी' के रूप में किया जाता है न की 'दो फीट लंबी'।

5. भाववाचक और गुणवाचक संज्ञाओं का प्रयोग एकवचन में होता है। (सुंदरता, बुढ़ापा, बचपना)

6. प्राण, लोग, दर्शन, आँसू, ओंठ, दाम, अक्षत इत्यादि शब्दों का प्रयोग हिंदी में बहुवचन में होता है। (मेरे प्राण, आपके दर्शन)

7. द्रव्य वाचक संज्ञाओं का प्रयोग एकवचन में होता है। (सोना, चाँदी, यूरेनियम)

(3) कारक : परिभाषा एवं प्रकार

संज्ञा अथवा सर्वनाम के जिस रूप से वाक्य के अन्य शब्दों से उसका संबंध सूचित होता हो, उसे कारक कहते हैं। अर्थात संज्ञा या सर्वनाम के आगे जब 'ने', 'को', 'से' आदि चिह्न लगते हैं, तो उनका रूप ही 'कारक' कहलाता है। कारकों के चिह्न विभक्ति कहलाते हैं। वाक्य के अन्य शब्दों से संबंध रखने योग्य शब्द 'पद' होते हैं और 'पद' की अवस्था में ही ये वाक्य के दूसरे शब्दों से या क्रिया से कोई लगाव रख पाते हैं। 'ने', 'को', 'से' आदि विभिन्न विभक्तियाँ विभिन्न कारकों की है। इनके लगने पर ही कोई शब्द कारक पद बन पाता है और वाक्य में आने योग्य होता है। कारक पद या क्रिया पद बने बिना कोई शब्द वाक्य मैं बैठने योग्य नहीं होता। कहने का आशय है कि संज्ञा अथवा सर्वनाम को क्रिया से जोड़ने वाला चिह्न अथवा परसर्ग ही 'कारक' कहलाता है।

कारक के भेद

हिंदी में कारकों की संख्या आठ हैं –

1. कर्ता कारक (जो काम करें) : ने (माँ खाना बना रही है। बालक ने रोटी खाई।)

2. कर्म कारक (जिस पर क्रिया का फल पड़े) : को (मैं आपको जनता हूँ। माँ बच्चे को सुला रही है।)

3. करण कारक (काम करने [क्रिया] का साधन) : से, के द्वारा (उसने पेंसिल से चिट्ठी लिखी। धूप से सारी बर्फ पिघल गई।)

4. संप्रदान कारक (जिसके लिए की जाए) : को, के लिए (मजदूर को उसकी मजदूरी दे दो।

5. अपादान (जिससे कोई वस्तु अलग हो) : से (अलग के अर्थ में) (पेड़ से पत्ते गिर रहे हैं।)

6. संबंध (जो एक शब्द का दूसरे से संबंध जोड़े) : का, की, के (वह घर मोहन का है। इस मोहल्ले की गलियाँ संकरी हैं।)

7. अधिकरण (जो क्रिया का आधार हो) : में, पर (मेरे किताब मेज पर है। इसी टोकरी में फल हैं।)

8. संबोधन (जिससे किसी को पुकारा जाए) : हे! अरे! ओ! (हे भगवान! अरे भाई!)

13.3.2 सर्वनाम

सर्वनाम वह शब्द विशेष है जिससे व्यक्ति, वस्तु, भाव या समूह का बोध होता है। यह वाचक शब्द माना जाता है क्योंकि भाषा में नामों की विस्तृति के कारण व्यवहार में कठिनाई होने लगी। इस कठिनाई को दूर करने तथा संप्रेषण में सुगमता, स्पष्टता तथा सुंदरता लाने हेतु विशेष संक्षिप्त शब्द संकेतों का प्रयोग होने लगा। ये शब्द नामों के स्थानापन्न हैं। ये शब्द नामों के स्थान पर प्रयुक्त होकर उनके कार्य को सुचारू रूप में संपन्न करने वाले शब्द हैं। अर्थात जो शब्द पद नाम के स्थान पर प्रयुक्त होने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य न करें वे शब्द 'सर्वनाम' कहलाते हैं। सर्वनाम के दो रूप मिलते हैं – मूल रूप (मैं, तुम, वह, वे) और विकारी रूप (मुझ, मेर, तुम्ह, उस, उन, उन्ह)। सरल शब्दों में कहे तो सर्व (सब) नामों (संज्ञाओं) के बदले जो शब्द आते है, उन्हें 'सर्वनाम' कहते हैं।

(अ) सर्वनामों का इतिहास

आधुनिक हिंदी सर्वनाम संस्कृत सर्वनामों के रूपों के ध्वन्यात्मक विकास का परिणाम सर्वनाम ही हैं। संस्कृत में सर्वनामों के तीन वचन, तीन लिंग तथा सात कारकीय रूप हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 63 रूप (3 × 3 × 7) सर्वनाम के सिद्ध हैं। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में इनसे जुड़ी कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए सहज प्रयास किए

गए। पालि में ही संस्कृत का द्विवचन रूप लुप्त हो गया। कारक रूपों में भी संख्या की दृष्टि से कम होने की स्थिति पाई जाती है। संस्कृत से ही यह देखा जा सकता है कि सर्वनाम के दो रूप हैं – (i) मूल रूप या कारक प्रत्यय रहित स्थिति में प्रयुक्त होने वाला रूप और (ii) विकारी या तिर्यक रूप जो कारक प्रत्यय या कारकीय परिवेश में प्रयुक्त होने वाला रूप है। विकारी रूप का अर्थ है - मूल रूप से भिन्न परिवर्तित रूप। इस रूप का भी विकास संस्कृत के रूपों के आधार पर ही हुआ। हिंदी के सर्वनाम संस्कृत मूल रूपों के विकसित रूप हैं चाहे वे मूल रूप में हो या विकारी रूप में।

(आ) सर्वनामों के प्रकार

यह स्पष्ट हो चुका है कि सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं, जो पूर्वापर संबंध से किसी भी संज्ञा के बदले आता है। हिंदी में कुल 11 प्रकार के सर्वनाम हैं – मैं, तू, आप, यह, वह, जो, सो, कोई, कुछ, कौन, क्या। इन्हें प्रयोग और अर्थ के आधार पर 6 वर्गों में विभाजित किया जाता है - पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, संबंधवाचक, प्रश्नवाचक और संयुक्त सर्वनाम।

(i) पुरुषवाचक सर्वनाम : जिन सर्वनाम शब्दों से व्यक्ति का बोध होता है, उन्हें 'पुरुषवाचक सर्वनाम' कहते है। दूसरे शब्दों में - बोलने वाले, सुनने वाले तथा जिसके विषय में बात होती है, उनके लिए प्रयोग किए जाने वाले सर्वनाम पुरुषवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। 'पुरुषवाचक सर्वनाम' पुरुषों (स्त्री या पुरुष) के नाम के बदले आते हैं। जैसे- मैं आता हूँ। तुम जाते हो। वह भागता है। उपर्युक्त वाक्यों में 'मैं, तुम, वह' पुरुषवाचक सर्वनाम हैं।

पुरुषवाचक सर्वनाम तीन प्रकार के होते है - (i) उत्तम पुरुष (मैं, हमारा, हम, मुझको, हमारी, मैंने, मेरा, मुझे आदि), (ii) मध्यम पुरुष (तू, तुम, तुम्हे, आप, तुम्हारे, तुमने, आपने आदि) और (iii) अन्य पुरुष (वे, यह, वह, इनका, इन्हें, उसे, उन्होंने, इनसे, उनसे आदि)।

(ii) **निश्चयवाचक सर्वनाम :** सर्वनाम के जिस रूप से हमे किसी बात या वस्तु का निश्चत रूप से बोध होता है, उसे निश्चयवाचक सर्वनाम कहते है। दूसरे शब्दों में - जिस सर्वनाम से वक्ता के पास या दूर की किसी वस्तु के निश्चय का बोध होता है, उसे ' निश्चयवाचक सर्वनाम' कहते हैं। सरल शब्दों में - जो सर्वनाम शब्द किसी निश्चित व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना की ओर संकेत करे, उसे 'निश्चयवाचक सर्वनाम' कहते हैं। जैसे : यह, वह, ये, वे आदि। उदाहरण : पास की वस्तु के लिए - 'यह' कोई नया काम नहीं है; दूर की वस्तु के लिए - रोटी मत खाओ, क्योंकि 'वह' जली है।

(iii) अनिश्चियवाचक सर्वनाम : जिस सर्वनाम से किसी निश्चित वस्तु का बोध न हो, उसे अनिश्चियवाचक सर्वनाम कहते हैं – कोई, कुछ।

(iv) **संबंधवाचक सर्वनाम :** जिस सर्वनाम से वाक्य में किसी दूसरे सर्वनाम से संबंध स्थापित किया जाए उसे संबंधवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे : जो, जिसकी, सो, जिसने, जैसा, वैसा आदि।

(v) **प्रश्नवाचक सर्वनाम :** प्रश्न करने के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग होता है उन्हें प्रश्नवाचक सर्वनाम कहते हैं – कौन, क्या।

(vi) **संयुक्त सर्वनाम :** रूस के हिंदी वैयाकरण डॉ. दीमशित्स ने संयुक्त सर्वनाम में जो कोई, सब कोई, हर कोई, और कोई, कोई और, जो कुछ, सब कुछ, और कुछ, कुछ और, कोई एक, एक कोई, कोई भी, कुछेक, कुछ भी कोई-न-कोई, कुछ-न-कुछ, कोई-कोई को रखा है। कारकों की विभक्ति लगने से सर्वनामों का रूप बादल जाता है। जैसे : 'मैं' के विभिन्न कारकीय रूप हैं - मुझको, मुझसे, मुझे, मेरा आदि।

(इ) हिंदी सर्वनामों के विकारी रूप

सर्वनामों के मूल रूपों के साथ-साथ उनके विकारी रूपों का सम्यक बोध भी सार्वनामिक व्यवस्था को समझने के लिए आवश्यक है। वाक्य प्रयोग में सर्वनामों की पाँच स्थितियाँ हैं –

i. कारक प्रत्यय रहित रूप अथवा मूल रूप : मैं, तुम
ii. कर्ता कारक रूप : मैंने, उसने
iii. कर्म-संप्रदान कारक रूप : उसे, उन्हें, उसको, उनको
iv. संबंध कारक रूप : मेरा, तेरा, उसका
v. अन्य कारकीय रूप : मुझ से, उस पर, मेरे साथ, तुम्हारे लिए

इस स्थिति में भी एकरूपता नहीं है। सभी सर्वनामों के विभिन्न रूपों को समझना जरूरी है। परंतु ये रूप तीन से ज्यादा नहीं है।

सर्वनामों के विकारी रूपों के बारे में स्मरण रखने योग्य कुछ अन्य बातें निमन्वत हैं -

(i) 'आप' सर्वनाम का विकारी रूप अलग नहीं है।

(ii) संबंधकारक रूप में संबंधित संज्ञा के लिंग-वचन का प्रभाव अवश्य रहता है। जैसे – मेरा दोस्त। मेरे घर। मेरी किताब।

(iii) कुछ सर्वनामों के साथ संबंध कारक प्रत्यय 'का,' 'के,' 'की' का प्रयोग अवश्य होता है – उसका लड़का। उसका घर। किनकी पुस्तकें?

(iv) हिंदी के अन्य पुरुष सर्वनाम निश्चयवाचक प्रयोग में विशेषणवत काम करते हैं – वह किताब है। इस वाक्य में ‘वह’ निश्चयवाचक सर्वनाम है और किताब के संदर्भ में विशेषणवत प्रयुक्त हुआ है।

(v) वचन और कारक के कारण रूपगत परिवर्तन भी दिखाई देता है – वह पुस्तक है। वे पुस्तकें हैं। उन पुस्तकों में पाठ हैं।

(vi) अन्य सार्वनामिक शब्द कारक के संदर्भ में बहुवचन तिर्यक प्रत्यय ‘ओं’ से युक्त होते हैं – औरों को, उन लोगों को, सब लोगों पर।

हिंदी सर्वनामों के विकारी रूपों को इस तरह स्पष्ट किया जा सकता है -

मूल रूप कर्ता कारक कर्म-संप्रदान अधिकरण संबंध अन्य

मैं हम मैंने हमने मुझको मुझे

हमको हमें मुझमें पर/ से हममे/ पर/ से मेरा/ मेरे/ मेरी

हमारा/ हमारे/ हमारी मेरे लिए/ मेरे पास हमारे लिए/ हमारे पास

तू तुम आप तूने तुमने

आपने तुझको/ तुझे

तुमको/ तुम्हें

आपको तुझमें/ तुझ पर/ तुझसे

तुझमें/ पर/ से

आपमें/ पर/ से तेरा/ तेरे/ तेरी

तुम्हारा/तुम्हारे/ तुम्हारी

आपका तेरे लिए/ तेरे पास

तुम्हारे लिए/ तुम्हारे पास

आपके लिए

वह

वे उसने

उन्होंने/ उनने उसको/ उसे

उनको/ उन्हें उसमें/ पर/ से

उनमें/ पर/ से उसका/ के/ की

उनका/ के/ की उसके लिए

उनके लिए

यह

ये इसने

इन्होंने/ इनने इसको/ इसे

इनको/ इन्हें इसमें/ पर/ से

इनमें/ पर/ से इसका/ के/ की
इंका/ के/ की   इसके लिए
इनके लिए
कौन(एक)
कौन(बहु)   किसने
किन्होंने/ किनने   किसको/ किसे
किंकों/ किंहें   किसमें/ पर/ से
किनमें/ पर/ से   किसका/ के/ की
किनका/ का/ की   किसके लिए
किनके लिए
क्या(एक)
कौन(बहु)   किसने
किन्होंने/ किनने   किसको/ किसे
किनकों/ किन्हें किसमें/ पर/ से
किनमें/ पर/ से   किसका/ के/ की
किनका/ का/ की   किसके लिए
किनके लिए
जो(एक)
जो(बहु)   जिसने
जिन्होंने/ जिनने   जिसको/ जिसे
जिनकों/ जिन्हें जिसमें/ पर/ से
जिनमें/ पर/ से जिसका/ के/ की
जिनका/ का/ की   जिसके लिए
जिनके लिए

13.3.3 विशेषण

संज्ञा की विशेषता बतलाने वाले शब्दों को 'विशेषण' कहते हैं। विशेषण जिन शब्दों की विशेषता बतलाते हैं उन्हें 'विशेष्य' कहा जाता है। जैसे : काला घोड़ा, लंबा आदमी, सुंदर लड़की, थोड़ा दूध आदि। इनमें रेखांकित शब्द विशेषता बताते हैं अतः विशेषण हैं। घोड़ा, आदमी, लड़की, दूध आदि विशेष्य हैं।

कभी-कभी विशेष्य के अनुसार विशेषण के लिंग, वचन बदल जाते हैं। जैसे : अच्छा लड़का, अच्छी लड़की, अच्छे लड़के।

विशेषण के प्रकार

विशेषण के प्रमुख रूप से निम्नलिखित भेद हैं – (1) गुणवाचक विशेषण, (2) संख्यावाचक विशेषण, (3) परिमाणवाचक विशेषण, (4) सार्वनामिक विशेषण, संबंधवाचक विशेषण, कृदंत विशेषण और तुलनात्मक विशेषण।

(1) गुणवाचक विशेषण : जो विशेषण शब्द किसी व्यक्ति या वस्तु के गुण, दोष, रंग, आकार, स्थिति आदि की विशेषता का बोध कराए, उसे गुणवाचक विशेषण कहते हैं, जैसे – लंबी लड़की, ऊँचा मकान, ताजा फल आदि।

गुणवाचक विशेषण कई प्रकार की विशेषताओं का बोधक हो सकता है, जैसे –

गुणबोधक : अच्छा, भला

दोषवाचक : दुष्ट, बुरा

कालवाचक : पुराना, नया

स्थानवाचक : बनारसी, लखनवी

दिशाबोधक : पूर्वी, पश्चिमी

अवस्थाबोधक : सूखा, गीला

दशाबोधक : स्वस्थ, अस्वस्थ

आकारबोधक : लंबा, ठिगना

स्पर्शबोधक : कोमल, कठोर

स्वादबोधक : मीठा, खट्टा

रंगबोधक : लाल, पीला

(2) संख्यावाचक विशेषण : जो विशेषण किसी संज्ञा की संख्या या क्रम का बोध कराए उसे संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। जैसे – एक आम, दो आदमी, दूसरी किताब आदि।

संख्यावाचक विशेषण की संख्या कभी तो निश्चित हो सकती है, और कभी अनिश्चित। जैसे – दस आदमी, कुछ आदमी। अतः संख्यावाचक विशेषण के निश्चित संख्यावाचक विशेषण और अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण दो भेद किए जा सकते हैं।

(अ) निश्चित संख्यावाचक विशेषण : इसके निम्नलिखित 4 भेद हैं -

(i) गणनासूचक विशेषण : ये विशेषण वस्तुओं की गिनती बतलाते हैं। जैसे दो बच्चे, चार लड़के, पाँच पुस्तकें आदि। गणना सूचक के पूर्णांकसूचक (जैसे एक, दो, तीन) और अपूर्णांकसूचक

(जैसे सवा, डेढ़, पौने दो, साढ़े तीन) - दो भेद होते हैं। इन्हें क्रम से पूर्ण संख्यावाचक तथा अपूर्ण संख्यावाचक भी कहते हैं।

(ii) क्रमसूचक विशेषण : ये विशेषण क्रम के अनुसार संज्ञा का स्थान बतलाते हैं। जैसे पहला लड़का, दूसरी पुस्तक, तीसरा मकान।

(iii) प्रत्येकसूचक विशेषण : इसके द्वारा कई चीजों में हर एक का बोध होता है। जैसे प्रत्येक आदमी, हर सातवें दिन, प्रति वर्ष।

(iv) समुदायसूचक विशेषण : जिससे समुदाय का बोध हो। जैसे दर्जन, कोड़ी, सैंकड़ा।

(आ) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण : इससे किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता। जैसे कुछ आम, थोड़े आदमी, सब लोग, बहुत पुस्तकें।

- निश्चित संख्यावाचक के अंतर्गत आने वाले गणनावाचक विशेषण (चार, आठ, बीस आदि) के पूर्व 'लगभग' तथा 'करीब' या बाद में 'एक' या 'ओं' प्रत्यय लगाने से भी अनिश्चित संख्या का बोध हो जाता है। जैसे – लगभग बीस आदमी, करीब पचास घोड़े, सौ-एक लड़के, सैकड़ों लोग।
- कभी-कभी गणनावाचक का समास करके भी अनिश्चित अर्थ प्रकट किया जाता है। जैसे – तीन-चार व्यक्ति, चालीस-पचास पुस्तकें, सौ-दो सौ रुपए।
- अनगिनत, असंख्य, बेशुमार भी अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण हैं।

विशेष प्रयोग :

(अ) जब एक ही कोटि के सभी पदार्थों या व्यक्तियों को एक साथ कहना हो तो संख्या के साथ 'ओं' लगाते है। जैसे तीनों ......, चारों ...., पाँचों ....। 'दो' के साथ 'ओं' न लगाकर 'नों' लगाते हैं – दोनों। इसी अर्थ में किसी भी संख्या के साथ 'के' लगाकर उसी संख्या को दोहराया जाता है - जैसे पंद्रह के पंद्रह।

(आ) दस और बीस के साथ बल देने के लिए 'इयों' जोड़ते हैं – दसियों बार, बीसियों लोग टूट पड़े। इसी अर्थ में लाख, करोड़, अरब आदि के साथ 'ओं' का प्रयोग होता है – हजारों, सैकड़ों, लाखों, अरबों।

(इ) यदि किसी संख्या के आधार पर पदार्थों या व्यक्तियों का विभाजन किया जाए तो उस संख्या की आवृत्ति कर देते हैं – एक-एक को देख लूँगा, थोड़ा-थोड़ा डालो।

(ई) कभी-कभी दो संख्यावाचक विशेषण समास के रूप में प्रयुक्त होते हैं – दो-चार, पाँच-छह।

(3) परिमाणवाचक विशेषण : जो विशेषण वस्तु की तोल, नाप या माप की विशेषता बतलाए उसे परिमाणवाचक विशेषण कहते हैं – सेरभर आटा, थोड़ा दूध।

परिमाणवाचक विशेषण के भी निश्चित और अनिश्चित दो भेद हो सकते हैं – निश्चित : सेरभर आटा, चार मीटर कपड़ा। अनिश्चित : कुछ कागज, थोड़ा दूध।

विशेष प्रयोग :

(अ) संज्ञा शब्द जब परिमाण का बोध कराते है तब वे परिमाणवाचक विशेषण का काम करते हैं। जैसे – एक घड़ा दूध, दो बाल्टी पानी, एक मुट्ठी चावल। अधिक का बोध कराने के लिए इन परिमाणवाचक विशेषणों में 'ओं' का प्रयोग होता है – सेरों दूध, मनों आटा।

(आ) कभी-कभी दो परिमाणवाचक विशेषण समास के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे – न्यूनाधिक, बहुत-कुछ, थोड़ा-बहुत।

(इ) कभी-कभी परिमाणवाचक विशेषण की आवृत्ति भी होती है। जैसे बहुत-बहुत धन्यवाद, कुछ-कुछ अँधेरा।

(ई) बहुत-से विशेषण ऐसे होते हैं जो संख्यावाचक और परिमाणवाचक दोनों ही रूपों में प्रयुक्त होते हैं। कुछ, सब, थोड़े, बहुत आदि। कुछ रोटियाँ, सब आम, थोड़े लड़के।

(4) सार्वनामिक विशेषण : जो सर्वनाम विशेषण का काम करते हैं, वे सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं। मेरा, तुम्हारा, यह, वह, जो, कौन, क्या, कोई, कुछ आदि ऐसे ही सर्वनाम हैं। ये शब्द सर्वनाम रूप में प्रयुक्त होते हैं या विशेषण रूप में; इसे जानने के लिए हमें ध्यान रखना चाहिए कि सर्वनाम अकेले आते हैं, किंतु विशेषण संज्ञा (विशेष्य) के साथ। ये शब्द जब अकेले आएँ तो सर्वनाम होंगे और संज्ञा के साथ आएँ तो विशेषण। जैसे :

(i) मेरी पुस्तक अच्छी है। यहाँ 'मेरे' पुस्तक का विशेषण है।

(ii) मोटी पुस्तक मेरी है। यहाँ 'मेरी' सर्वनाम है।

(अ) सार्वनामिक विशेषणों की व्युत्पत्ति

व्युत्पत्ति के अनुसार सर्वनामिक विशेषण दो प्रकार के हैं –

(1) मूल सार्वनामिक विशेषण और (2) यौगिक सार्वनामिक विशेषण।

मूल सार्वनामिक विशेषण वे हैं जो बिना किसी रूप परिवर्तन के संज्ञा के साथ आकर संज्ञा की विशेषता बतलाते हैं – यह, वह, जो, कौन, कोई।

यौगिक सार्वनामिक विशेषण मूल सर्वनामों के साथ '-सा' प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं और संज्ञाओं की विशेषता को प्रकट करते हैं – यह + सा = ऐसा, वह + सा वैसा, जो + सा = जैसा।

(5) संबंधवाचक विशेषण : जो विशेषण किसी वस्तु की विशेषताएँ दूसरी वस्तु के संबंध में बताता है, तो उसे संबंधवाचक विशेषण कहते हैं। इस तरह के विशेषण संज्ञा, क्रिया-विशेषण तथा क्रिया से बनते हैं। जैसे : दयामय - 'दया' संज्ञा से, बाहरी – बाहर 'क्रिया-विशेषण' से, गला – 'गलना' क्रिया से।

(6) कृदंत विशेषण : धातु में जिस प्रत्यय को जोड़कर क्रिया, विशेषण, संज्ञा या अव्यय का रूप बनता है, उसे कृदंत कहते हैं। जैसे –

वह घर जाता है। (क्रिया)
चलती गाड़ी से मत उतरो। (विशेषण)
काम करना मनुष्य का धर्म है। (संज्ञा)
वे यहाँ तक आकर लौट गए। (अव्यय)

(7) तुलनात्मक विशेषण : इस विशेषण को तुलनाबोधक विशेषण भी कहा जाता है। दो या दो से अधिक वस्तुओं या भावों के गुण, रूप, स्वभाव, स्थिति आदि की परस्पर तुलना जिन विशेषणों के माध्यम से की जाती है, उन्हें तुलनात्मक या तुलनाबोधक विशेषण कहते हैं। तुलना की तीन अवस्थाएँ होती हैं – (i) मूलावस्था, (ii) उत्तरावस्था और (iii) उत्तमावस्था। जैसे : अधिक, अधिकतर, अधिकतम।

13.3.4 क्रिया

किसी कार्य, घटना अथवा अस्तित्व का बोध कराने वाले शब्द को क्रिया कहते हैं। इसी तथ्य को सूत्र रूप में इन शब्दों में भी कहा जा सकता है कि 'किसी काम का होने या करने को क्रिया कहते हैं।' जैसे – सोना, रोना, खाना, पीना, पढ़ना, लिखना आदि। संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण की तरह ही क्रिया भी विकारी शब्द है। इसके रूप लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बदलते रहते हैं।

विशेष :

(i) प्रत्येक वाक्य में क्रिया अनिवार्य रूप से रहती है। 'खाना', 'खाया', 'खाता', 'खाए' आदि में 'खा' समान रूप से विद्यमान है।

(ii) क्रियाओं में समान रूप से पाए जाने वाले अंश को 'धातु' कहते हैं। यह अर्थ की दृष्टि से क्रिया का मूल रूप है। धातु में 'ना' जोड़कर क्रिया बनाई जाती है। जैसे : खा + ना = खाना, पढ़ + ना = पढ़ना।

(iii) कुछ धातुओं के रूप सामान्य रूप में न होकर 'ले', 'दे', 'कर', 'हो', 'जा' आदि के रूप में बनते हैं। जैसे – लिया > ली > लो > ले > लूँगा आदि।

रचना और अर्थ प्रयोग की दृष्टि से क्रिया के भेद

रचना की दृष्टि से क्रिया के भेद इस प्रकार हैं – रूढ़ और यौगिक।

रूढ़ क्रिया : जिस क्रिया की रचना धातु से होती है, उसे रूढ कहते हैं। जैसे : लिखना, पढ़ना, खाना, पीना आदि।

यौगिक क्रिया : जिस क्रिया की रचना एक से अधिक तत्वों से होती ह उसे यौगिक क्रिया कहते हैं। जैसे : लिखवाना, पढ़वाना, बताना, बड़बड़ाना आदि। इसके चार प्रकार हैं – प्रेरणार्थक क्रिया, संयुक्त क्रिया, नामधातु क्रिया और अनुकरणात्मक क्रिया।

प्रेरणार्थक क्रिया : जिस क्रिया से इस बात का ज्ञान हो कि कर्ता स्वयं काम न करके किसी अन्य को उसे करने के लिए प्रेरित करता है, उसे प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं। जैसे : बोलना – बोलवाना; पढ़ना – पढ़वाना। प्रेरणार्थक क्रियाओं के बनाने की विधियाँ हैं –

(i) मूल द्वि-अक्षरी धातुओं में 'आना' तथा 'वाना' जोड़ने से प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनती हैं। जैसे : पढ़ (पढ़ना) – पढ़ाना – पढ़वाना।

(ii) द्वि-अक्षरी वाली धातुओं में 'आना' और 'वाना' जोड़कर प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाई जाती हैं। जैसे : जीत (जीतना) – जिताना – जितवाना।

(iii) तीन अक्षर वाली धातुओं में भी 'आना' और 'वाना' जोड़कर प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाई जाती है। लेकिन ऐसी धातुओं से बनी प्रेरणार्थक क्रियाओं के दूसरे 'अ' अनुच्चरित रहता है। जैसे : समझ (समझना) – समझाना – समझवाना।

(iv) 'खा', 'जा', 'आ' आदि एकाक्षरी आकारांत 'जी', 'पी', 'सी', आदि ईकारांत, 'चू', 'छू' - ये दो ऊकारांत आदि में 'लाना', 'लवाना', 'वाना' आदि प्रत्यय आवश्यकतानुसार लगाए जाते हैं। जैसे : जी (जीना) – जिलाना – जिलवाना।

संयुक्त क्रिया : दो या दो से अधिक धातुओं के संयोग से बनने वाली क्रिया को संयुक्त क्रिया कहते हैं। जैसे : चल देना, हँस देना, रो पड़ना, झुक जाना।

नामधातु क्रिया : संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि से बनने वाली क्रिया को नामधातु क्रिया कहते हैं। जैसे : हाथ से हथियाना, बात से बतियाना, दुखना से दुखाना आदि। ये संज्ञा या विशेषण में 'ना' जोड़ने से (स्वीकार-स्वीकारना, धिक्कार-धिक्कारना) तथा हिंदी शब्दों के अंत में 'आ' करके और आदि 'आ' को ह्रस्व करके बनाई जाती है।

अनुकरणात्मक क्रिया : किसी ध्वनि के अनुकरण पर जो क्रिया बनती है, उसे अनुकरनात्मक क्रिया कहते हैं। जैसे : खट खट – खटखटाना, झन झन – झनझनाना।

अर्थ प्रयोग की दृष्टि से क्रिया के भेद इस प्रकार हैं – अकर्मक क्रिया और सकर्मक क्रिया।

अकर्मक क्रिया : जिस क्रिया से सूचित होने वाला व्यापार कर्ता करे और उसका फल भी कर्ता पर ही पड़े, उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे : राम खाता है। गीता गाती है। बच्चा खेलता है।

सकर्मक क्रिया : जिस क्रिया से सूचित होने वाले व्यापार का फल कर्ता को छोड़कर कर्म पर पड़े, उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे : श्याम पुस्तक पढ़ता है। इस वाक्य में 'पढ़ता है' क्रिया का व्यापार श्याम करता है, परंतु इस व्यापार का फल पुस्तक पर पड़ता है, इसलिए 'पढ़ता है' सकर्मक क्रिया है और 'पुस्तक' कर्म।

रंजक क्रियाएँ : अर्थ में विशेषता लाने वाली सहायक क्रियाओं को रंजक क्रियाएँ कहते हैं। कुछ प्रमुख रंजक क्रियाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं –

उठना : अचानक : मुर्दा जी उठा, राम चिल्ला उठा।

करना : अभ्यास : वह लिखा करता है।

13.3.5 अव्यय

'अव्यय' का अर्थ है : अ + व्यय = जो व्यय न हो। अतः 'अव्यय' उन शब्दों को कहा जाता है, जिनमें लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल आदि के बदलने पर भी कोई परिवर्तन नहीं होता। स्मरणीय है कि यह बात संस्कृत के लिए तो ठीक है लेकिन हिंदी में यह पूरी तरह लागू नहीं होती।

अव्यय के प्रकार इस तरह हैं –

(i) क्रिया विशेषण अव्यय : वे क्रिया का दिशा, समय, रीति, कारण, परिमाण तुलना, सादृश्य, उद्देश्य आदि बताते हैं। जैसे : बच्चे धीरे-धीरे चल रहा है। वे लोग रात को पहुँचे। सुधा प्रतिदिन पढ़ती है।

(ii) समुच्चय बोधक अव्यय : कुछ अव्यय शब्दों, पदबंधों, उपवाक्यों या वाक्यों को जोड़ते हैं। इन्हें योजक भी कहते हैं। जैसे : माता जी और पिता जी। तुम जाओगे तो वह आएगा।

(iii) विस्मयादिबोधक अव्यय : कुछ अव्यय विस्मय, हर्ष, शोक, घृणा, ग्लानि, लज्जा आदि का भाव व्यक्त करते हैं। जैसे : अहा! आप आ गए!

(iv) संबंधबोधक अव्यय : कुछ अव्यय संबंध का द्योतन करते हैं। जैसे : मैंने घर के सामने कुछ पेड़ लगाए हैं। छत पर कबूतर बैठा है।

(v) निपात अव्यय : कुछ अव्यय अवधारणा, बल, निषेध, स्वीकार आदि व्यक्त करते हैं। जैसे : ही, भी, तो, तक, मात्र, भर

13.4: पाठ सार

रूप रचना की दृष्टि से चार प्रमुख शब्द वर्ग माने जाते हैं – संज्ञा, क्रिया, विशेषण और सर्वनाम। इन शब्दों के दो रूप मिलते हैं - अविकारी और विकारी। इन दोनों के संदर्भ में लिंग और वचन का बोध तथा कारकीय रूप की स्थिति पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

(1) संज्ञा उन शब्दों का कहते हैं जिनसे किसी विशेष वस्तु, भाव और जीव के नाम का बोध होता है। वस्तु के अंतर्गत प्राणी, पदार्थ और धर्म सम्मिलित हैं। इसी आधार पर संज्ञा के पाँच भेद माने जाते हैं – व्यक्तिवाचक संज्ञा, जातिवाचक संज्ञा, भाववाचक संज्ञा, समूहवाचक संज्ञा और द्रव्यवाचक संज्ञा। संज्ञा शब्दों को रूप रचना की दृष्टि से दो कोटियों में रखा जा सकता है – स्वरांत शब्द और व्यंजनांत शब्द। इसी आधार पर व्याकरणिक रूप घटित होते हैं। जो शब्द स्वर ध्वनि से अंत होते हैं उन्हें स्वरांत शब्द कहते हैं।जिन शब्दों के अंत में ह्रस्व व्यंजन या असंयुक्त व्यंजन रहता है उन्हें व्यंजनांत कहते हैं। हिंदी की प्रकृति में अंतिम असंयुक्त व्यंजन का उच्चारण स्वर रहित होता है। संज्ञाओं के विकारी रूप (i) लिंग, (ii) वचन और (iii) कारक हैं।

(2) सर्वनाम वह शब्द विशेष है जिससे व्यक्ति, वस्तु, भाव या समूह का बोध होता है। ये शब्द नामों के स्थानापन्न अर्थात नामों के स्थान पर प्रयुक्त होकर उनके कार्य को सुचारू रूप में संपन्न करने वाले शब्द हैं। अतः जो शब्द नाम के स्थान पर प्रयुक्त होने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य न करें वे शब्द 'सर्वनाम' कहलाते हैं। सर्वनाम के दो रूप मिलते हैं – मूल रूप (मैं, तुम, वह, वे) और विकारी रूप (मुझ, मेर, तुम्ह, उस, उन, उन्ह)। हिंदी में कुल 11 प्रकार के सर्वनाम हैं – मैं, तू, आप, यह, वह, जो, सो, कोई, कुछ, कौन, क्या। इन्हें प्रयोग और अर्थ के आधार पर 6 वर्गों में विभाजित किया जाता है - पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, संबंधवाचक, प्रश्नवाचक और संयुक्त सर्वनाम।

(3) संज्ञा की विशेषता बतलाने वाले शब्दों को 'विशेषण' कहते हैं। विशेषण जिन शब्दों की विशेषता बतलाते हैं उन्हें 'विशेष्य' कहा जाता है। जैसे : काला घोड़ा, लंबा आदमी, सुंदर

लड़की, थोड़ा दूध आदि। इनमें काला, लंबा, सुंदर, थोड़ा – ये शब्द विशेषता बताते हैं अतः विशेषण हैं। घोड़ा, आदमी, लड़की, दूध आदि विशेष्य हैं। विशेषण के प्रमुख भेद हैं – (1) गुणवाचक विशेषण, (2) संख्यावाचक विशेषण, (3) परिमाणवाचक विशेषण, (4) सार्वनामिक विशेषण, (5) संबंधवाचक विशेषण, (6) कृदंत विशेषण और (7) तुलनात्मक विशेषण।

(4) किसी कार्य, घटना अथवा अस्तित्व का बोध कराने वाले शब्द को क्रिया कहते हैं। अर्थात 'किसी काम का होने या करने को क्रिया कहते हैं।' जैसे – सोना, रोना, खाना, पीना, पढ़ना, लिखना आदि। संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण की तरह ही क्रिया भी विकारी शब्द है। इसके रूप लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बदलते रहते हैं। रचना की दृष्टि से क्रिया के दो भेद हैं – रूढ़ और यौगिक। इसी प्रकार, अर्थ प्रयोग की दृष्टि से भी क्रिया के दो भेद हैं – अकर्मक क्रिया और सकर्मक क्रिया। जिस क्रिया से सूचित होने वाला व्यापार कर्ता करे और उसका फल भी कर्ता पर ही पड़े, उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे : राम खाता है। गीता गाती है। बच्चा खेलता है। जिस क्रिया से सूचित होने वाले व्यापार का फल कर्ता को छोड़कर कर्म पर पड़े, उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे : श्याम पुस्तक पढ़ता है। इस वाक्य में 'पढ़ता है' क्रिया का व्यापार श्याम करता है, परंतु इस व्यापार का फल पुस्तक पर पड़ता है, इसलिए 'पढ़ता है' सकर्मक क्रिया है और 'पुस्तक' कर्म।

इन चार वर्गों के अतिरिक्त भाषा में कुछ ऐसे शब्द भी पाए जाते हैं जिनमें लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल आदि के बदलने पर भी कोई परिवर्तन नहीं होता। ऐसे शब्दों को 'अव्यय' कहा जाता है। अव्यय के प्रकार हैं – क्रिया विशेषण अव्यय, समुच्चय बोधक अव्यय, विस्मयादिबोधक अव्यय, संबंधबोधक अव्यय और निपात अव्यय।

13.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त हुई –

1. हिंदी में संज्ञा के विकारी और अविकारी रूप.
2. हिंदी सर्वनामों का इतिहास, प्रकार और विकारी रूप.
3. हिंदी में विशेषणों का विकास.
4. रचना और क्रिया की दृष्टि में क्रिया के प्रकार.

13.6 : शब्द संपदा

1.	विकारी रूप	: वाक्य प्रयोग के संदर्भ में लिंग, वचन, कारक के प्रभाव से उभरने वाला रूप।
2.	अविकारी रूप	: संज्ञा के संदर्भ में अर्थ संप्रेषित करने वाली इकाई।
3.	अव्यय	: जो व्यय न हो।
4.	रंजक क्रिया	: अर्थ में विशेषता लाने वाली सहायक क्रिया।
5.	निपात	: अव्यय किसी शब्द या पद के बाद जुड़कर उसके अर्थ में विशेष प्रकार का बल भर देते हैं।

13.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड – (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।

1. संज्ञा किसे कहते हैं? उसके प्रकारों का सोदाहरण परिचय दीजिए।
2. संज्ञा के विकारी रूपों का सोदाहरण परिचय दीजिए।
3. हिंदी सर्वनामों के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
4. विशेषण किसे कहते हैं? विशेषणों के प्रकारों का परिचय दीजिए।
5. रचना और प्रयोग की दृष्टि से क्रिया के प्रकारों का परिचय दीजिए।

खंड – (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए।

1. प्रेरणार्थक क्रिया किसे कहते हैं?
2. 'अव्यय' किसे कहते हैं? उसके प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
3. निश्चित संख्यावाचक विशेषण किसे कहते हैं? उसके कितने प्रकार हैं?
4. सार्वनामिक विशेषण किसे कहते हैं? उसकी व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।
5. लिंग किसे कहते हैं?
6. वचन किसे कहते हैं?
7. कारक किसे कहते हैं?

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. 'से, के द्वारा', कौनसा कारक है?

(अ) कर्ता कारक (आ) करण कारक (इ) कर्म कारक (ई) संप्रदान कारक

2. व्याकरण में शब्द विश्लेषण के लिए शब्दों के __________प्रकारों को प्रदानता दी जाती है।

(अ) 2 (इ) 3 (इ) 4 (ई) 5

3. प्रमुख शब्द वर्ग कितने है ?

(अ) 2 (इ) 3 (इ) 4 (ई) 5

4. संस्कृत सर्वनाम के कितने रूप सिद्ध है।

(अ) 36 (इ) 63 (इ) 6 (ई) 3

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. हिंदी में कुल ____________प्रकार के सर्वनाम है।

2. 'कौन' ____________वाचक सर्वनाम है।

3. 'सैकड़ा'_____________सूचक विशेषण है।

III. सुमेल कीजिए।

1. क्रिया विशेषण अव्यय (अ) भी
2. समुच्चय बोधक अव्यय (आ) और
3. विस्मायदि अव्यय (इ) आह !
4. निपात अव्यय (ई) प्रतिदिन

13.8 : पठनीय पुस्तकें

1. गुरु, कामताप्रसाद (1920), हिंदी व्याकरण

2. भाषा (हिंदी भाषाविज्ञान अंक), 1973

3. प्रसाद, वासुदेव नंदन (2011). आधुनिक

3. Sharma, Aryendra (1975), A Basic Grammer In Modern Hindi, New Delhi : Central Hindi Directorate

इकाई 14 : हिंदी शब्द रचना

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 मूल पाठ : हिंदी शब्द रचना

14.3.1 शब्द की परिभाषा

14.3.2 शब्दों का वर्गीकरण

14.3.3 उपसर्ग और प्रत्यय

14.3.4 हिंदी में आगत-विदेशी शब्द व उनमें परिवर्तन

14.4 पाठ सार

14.5 पाठ की उपलब्धियाँ

14.6 शब्द संपदा

14.7 परीक्षार्थ प्रश्न

14.8 पठनीय पुस्तकें

14.1: प्रस्तावना

सामान्य रूप से 'शब्द' से निम्नलिखित अर्थों का बोध होता है -

1. ध्वनि, आवाज़, (जैसे—क्रोध भरे शब्द में कहना, बच्चे के रोने का शब्द)।

2. सार्थक ध्वनि, लफ़्ज, वर्ड (जैसे—मधुर शब्द, आशीर्वाद के दो शब्द कहना)।

3. आप्त वचन।

व्याकरण और भाषाविज्ञान में इनमें से दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाता है। इसके अनुसार एक या एक से अधिक ध्वनियों अथवा वर्णों से बनी हुई भाषा की स्वतंत्र सार्थक इकाई शब्द है। जैसे - एक वर्ण से निर्मित शब्द - न (नहीं), व (और) अनेक वर्णों से निर्मित शब्द - कुत्ता, शेर, कमल, नयन, प्रसाद, सर्वव्यापी, परमात्मा आदि। एक से ज़्यादा शब्द मिलकर एक पूरा वाक्य बनाते हैं। इस इआकी में हिंदी में उपलब्ध शब्द संपदा पर चर्चा की जाएगी।

14.2 : उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. हिंदी शब्द रचना के बारे में जान सकेंगे।
2. शब्द क्या है और ये कितने प्रकार के होते हैं, यह जान सकेंगे।
3. उपसर्गों के विभिन्न प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
4. प्रत्ययों के विभिन्न प्रकारों से अवगत हो सकेंगे।
5. हिंदी में आगत शब्दों और उनमें आए परिवर्तन के बारे में जान सकेंगे।

14.3 मूल पाठ : हिंदी शब्द रचना

14.3.1 शब्द की परिभाषा

शब्द को भाषा की स्वतंत्र एवं सार्थक इकाई माना जाता है। अर्थात शब्द का प्रयोग भाषा में स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है तथा यह एक निश्चित अर्थ का बोध कराता है। किसी भाषा में बदलाव उसके 'शब्द समूह' द्वारा भी अभिव्यक्त होता है। अतः भाषा के अध्ययन में शब्द का अत्यधिक महत्व है। शब्द को भाषा की मूलभूत स्वतंत्र व सार्थक इकाई कहने का अभिप्राय यह भी है कि इसका निर्माण ध्वनियों के संयोजन से होता है जो भाषा की मूलभूत निरर्थक इकाई है।

प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने माना है कि भाषा की एक इकाई के रूप में शब्द को सबसे पहले भाषिक प्रतीक के रूप में देखा जाना चाहिए और उसके बाद अभिव्यक्ति और कथ्य के संदर्भ में। इस संदर्भ में हमें शब्दों के ये प्रकार प्राप्त होते हैं – एकशब्द (रूढ़ शब्द), सक्षम शब्द (योगरूढ़ शब्द), संबंधिम (यौगिक शब्द/ समस्त पद) और द्वि या बहु शब्द। इसे निम्नलिखित आरेख के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

		अभिव्यक्ति का आयाम	
		+	-
कथ्य का आयाम	+	एकशब्द	सक्षम शब्द
	-	संबंधिम	द्वि या बहु शब्द

'शब्द' की परिभाषा के आधार के रूप में तीन धारणाएँ प्रचलित हैं – (1) एक धारणा के अनुसार, शब्द को कोश विज्ञान की इकाई माना जाता है। इसके आधार पर कोशीय शब्द की संकल्पना सामने आती है। कोशीय शब्द 'संकेतित' (Signified) को व्यक्त करने वाला भाषिक प्रतीक है। (2) दूसरी धारणा शब्द को व्याकरणिक इकाई के रूप में स्वीकार करती है। इसके

आधार पर वाक्यात्मक एवं व्याकरणिक शब्दों की व्याख्या की जाती है। (3) तीसरी धारणा के अंतर्गत शब्द को अभिव्यक्ति की इकाई माना जाता है। इसके आधार पर स्वन प्रक्रिया और वर्ण विन्यास का विवेचन किया जाता है। स्वन और वर्ण को संकेतक (Signifier) कहा जा सकता है।

शब्द बहुसंयोजक स्थिति है जिसका प्रयोग एकाधिक प्रकार से किया जाता है, अतः इसे पारिभाषित करना कठिन है। लेकिन अनेक काव्यशास्त्रियों एवं भाषाविदों ने शब्द को पारिभाषित करने का प्रयास किया है। भारतीय विद्वानों ने शब्द पर गहराई से विचार किया है और उसे ब्रह्म माना है। उन्होंने शब्द को ऐसी सार्थक ध्वनि के रूप में स्वीकार किया है जिससे लोक व्यवहार में पदार्थ की प्रतीति हो। पतंजलि ने 'महाभाष्य' में स्फोट को ही शब्द की संज्ञा दी है। उनके अनुसार कान से प्राप्य, बुद्धि से ग्राह्य तथा प्रयोग से स्फुरित होने वाली ध्वनि ही 'शब्द' है। दंडी के अनुसार 'शब्द' ज्योति है। भर्तृहरि की मान्यता है कि 'शब्द' व्यवहार में प्रवृत्ति का साधन है। कामता प्रसाद गुरु के अनुसार, एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि 'शब्द' है। मंगल देव शास्त्री का मत है कि 'शब्द' हमारे विचारों के प्रतीक रूप (उच्चरित या लिखित संकेत) है। देवेंद्रनाथ शर्मा के अनुसार, उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई 'ध्वनि' है और सार्थकता की दृष्टि से 'शब्द'। भोलानाथ तिवारी के अनुसार, 'शब्द' अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई है।

पाश्चात्य चिंतकों ने भी शब्द को पारिभाषित करने का प्रयास किया है। मैलेट ने 'शब्द' को अर्थ और ध्वनि का योग माना है जिसका व्याकरणिक प्रयोग किया जा सकता है। स्वीट की मान्यता है कि 'शब्द' भाषा की लघुतम सार्थक इकाई है।

शब्द के लक्षण

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर शब्द के निम्नलिखित लक्षण निर्धारित किए जा सकते हैं –

1. स्वतंत्र प्रयोग की क्षमता : शब्द भाषा का लघुतम मुक्त रूप है। इसका प्रयोग वाक्य के अंतर्गत भी किया जा सकता है और स्वतंत्र रूप से भी। अनेक स्थितियों में शब्द अपने में पूर्ण कथन होता है। उदाहरण के लिए :

तुम कल आओगे?

'नहीं।'

यहाँ 'नहीं' से वक्ता का आशय है कि 'मैं कल नहीं आ सकता।'

2. सापेक्ष अभेदता : शब्द के अपने स्वरूप के साथ छेड़छाड़ नहीं की जा सकती है। सामान्य बातचीत में नवीन अंश प्रायः शब्द के मध्य में नहीं जुड़ते। विराम भी सदैव शब्द के अंत में आता

है। कथोपकथन के मध्य किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित होने पर वक्ता संपूर्ण शब्द उच्चरित करने के पश्चात ही विराम लेता है।

3. दृढ़ आंतरिक संरचना : समस्त भाषिक इकाइयों में शब्द की आंतरिक संरचना सर्वाधिक दृढ़ होती है। शब्द के घटकों का स्थान परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से अन्य अर्थ प्रकट होगा। एक उदहारण देखें : अनियमितता में अ+नियम+इत+ता : यह संयोजन क्रम निश्चित है जबकि 'यह ताजा मीठा दूध' इस रचना का दूसरा क्रम भी हो सकता है 'ताजा यह मीठा दूध।'

14.3.2 शब्दों का वर्गीकरण

शब्दों के वर्गीकरण के कई आधार हो सकते हैं। जैसे :

(i) सार्थकता और निरर्थकता परक

(ii) शब्द रचना परक

(iii) ध्वनि संरचना परक

(iv) शब्द व्युत्पत्ति परक

(v) शब्द और अर्थ परक

(vi) स्रोत परक

(i) सार्थकता और निरर्थकता परक वर्गीकरण : सार्थकता और निरर्थकता के आधार पर शब्द के दो भेद पाए जाते हैं –

(अ) अर्थ का बोध कराने वाले स्वतंत्र शब्द और

(आ) अर्थ का संवहन करने की क्षमता रखने पर भी स्वतंत्र रूप से प्रयोग में न आने वाले शब्द और शब्दांश।

'अर्थ का बोध' शब्द का मुख्य आधार है। ये कोशीय अंग (Lexical Unit) बनते हैं। अर्थात ये कोश में स्थान पाते हैं। इसीलिए इनको लेक्सीकोन (Lexicon) कहा जाता है।

दूसरे वर्ग के शब्द या शब्दांश वे हैं जिनका भाषा में विशिष्ट स्थान है, परंतु इनका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। इनके अंतर्गत अव्यय (जैसे : भी, ही, और, तथा आदि), प्रत्यय (जैसे : –ता, -आई, -पन आदि) और उपसर्ग (जैसे अ-, अप-, नि- आदि)। ये वाक्य में प्रयुक्त होकर अथवा शब्द निर्माण प्रक्रिया या अन्य संरचना प्रक्रियाओं से जुड़कर ही अपनी सार्थकता प्राप्त करते हैं।

यहाँ 'निरर्थकता' को भी समझ लेना आवश्यक है। सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि ध्वनियों की संरचना से शब्द बनता है लेकिन यह पूरा सच नहीं है। उदाहरण के लिए, 'फल'

शब्द को लिया जा सकता है। इसमें दो अक्षर हैं – 'फ' और 'ल' और तीन ध्वनियाँ हैं – 'फ्', 'अ' और 'ल्'। संरचना की दृष्टि से 'फल' सार्थक शब्द है लेकिन 'फ' और 'ल' का क्रम परिवर्तन कर दिया जाए तो उससे उत्पन्न शब्द 'लफ' निरर्थक है।

(ii) शब्द रचना परक वर्गीकरण

शब्द रचना के आधार पर शब्दों के दो वर्ग हैं – अर्थ मूलक और ध्वनि मूलक।

(अ) अर्थ मूलक : अर्थ के आधार पर शब्द के तीन प्रकार हैं – रूढ़, यौगिक और योग-रूढ।

रूढ : रूढ़ शब्द अखंड शब्द हैं। उनका एक मूल अर्थ होता है। अर्थ ग्रहण का आधार वहीं से जुड़ता है। इनको मूल शब्द भी कह सकते हैं। उदाहरण के लिए : सिर, आँख, पानी, देश, कमल आदि। इनका खंडित रूप अर्थ संवाहक नहीं होता। विखंडित रूप में ये अर्थ को खो देते हैं।

यौगिक : रूढ़ शब्दों के मेल से बने शब्दों को यौगिक शब्द कहते हैं। इनमें जुड़े शब्दों का स्वतंत्र अर्थ भी होता है और बाद में भी वह अर्थ रह जाता है। परंतु मेल से बने रूपों का भी अर्थ उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि मूल स्वतंत्र शब्द का। उदाहरण के लिए : राज-पुरुष, घुड़-सवार आदि।

योग-रूढ : दो स्वतंत्र शब्दों के योग से बनते हैं, परंतु विशेष अर्थ का बोध कराते हैं। उदाहरण के लिए : नीलकंठ (मोर, शिव), पंकज (कमल) आदि।

(आ) ध्वनि मूलक : ध्वनि मूलक के शब्दों को ध्वन्यानुकरण से बने शब्द भी कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए : पों-पों, भौं-भौं, कल-कल आदि। इनके उपयोग या प्रयोगगत संदर्भ सीमित होते हैं। इस कोटि के शब्द प्रायः हर जीवित भाषा में मिलते हैं।

4. ध्वनि संरचना परक वर्गीकरण : ध्वनि संरचना के आधार पर शब्दों को दो वर्गों में रखा जाता है – अक्षर क्रम के आधार पर (एकाक्षरात्मक, द्वि-अक्षरात्मक, त्रि-अक्षरात्मक, चतुराक्षरात्मक और पंचाक्षरात्मक) तथा ध्वन्यांतता के आधार पर (स्वरांत शब्द और व्यंजनांत शब्द)।

एकाक्षरात्मक शब्द : आ, जा, ना

द्वि-अक्षरात्मक शब्द : पानी, हाथी, घर

त्रि-अक्षरात्मक शब्द : कलम, परीक्षा, महल

चतुराक्षरात्मक शब्द : महेश्वर, महामना, कामायनी

पंचाक्षरात्मक शब्द : राजकुमार, राजकुमारी

स्वरांत शब्द : राजा, लड़का

व्यंजनांत शब्द : विकास, किताब, पुस्तक

5. शब्द व्युत्पत्ति परक वर्गीकरण : कोई भी भाषा समाज आवश्यकता के अनुसार नए-नए अर्थों का बोध कराने के लिए नए नए शब्दों का सृजन करता है। यह भाषा-समाज की मौलिक विशेषता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ये नए शब्द प्रायः दो प्रकार से बनते हैं – उपसर्गों की सहायता से और प्रत्ययों के योग से। जैसे :

उपसर्गों से निर्मित शब्द : कु + रूप = कुरूप
पर + लोक = परलोक
भर + पेट = भरपेट

प्रत्ययों के योग से सृजित शब्द : भला + आई = भलाई
मीठा + आस = मिठास
मनुष्य + ता = मनुष्यता

6. शब्द और अर्थ परक वर्गीकरण : भाषा में अर्थ को आधार बनाकर शब्द के चार प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं : (अ) एकार्थी शब्द, (आ) अनेकार्थी शब्द, (ग) पर्यायवाची शब्द और (घ) सम अर्थी शब्द।

(अ) एकार्थी शब्द वे हैं जिनका एक ही अर्थ होता है। यह एक अर्थ प्रायः अभिधार्थ के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस वर्ग में गाय, कुत्ता, घोड़ा, मनुष्य जैसे शब्द आते हैं।

(आ) अनेकार्थी शब्द वे शब्द माने जाते हैं जिनके एक से अधिक अर्थ होते हैं। जैसे अंबर = आकाश, कपड़ा; कर = हाथ, सूँड, टैक्स।

(इ) पर्यायवाची शब्द वे शब्द हैं जो समान अर्थ संप्रेषित करते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात है कि ये शब्द चाहे एक ही अर्थ क्यों न सूचित करें किंतु उनके प्रयोग में अर्थ की भिन्न-भिन्न छायाएँ मिलती हैं। जैसे अंधकार = अँधेरा, तम, तिमिर; आकाश = नभ, गगन, आसमान, व्योम, अंबर।

(ई) सम अर्थी शब्द विशेष परिस्थितियों में भाषा में उभरते हैं। जब एक भाषा दूसरी भाषाओं के संपर्क में आती हैं तो उस भाषा में सम अर्थी शब्द अपना स्थान प्राप्त करते हैं। एक ही अर्थ देने वाले एकाधिक शब्द भाषा में प्रयुक्त होने लगते हैं। जैसे पुस्तक-किताब-बुक; शेर-सिंह; पेड़-वृक्ष।

7. स्रोत परक वर्गीकरण : स्रोत के आधार शब्दों के चार वर्ग हैं – तत्सम (संस्कृत के मूल शब्द), तद्भव (संस्कृत शब्दों से विकसित शब्द), देशज (स्थानीय भाषाओं/ बोलियों से गृहीत शब्द) और विदेशी शब्द (विदेशी भाषाओं से गृहीत शब्द)।

14.3.3 उपसर्ग और प्रत्यय

आप जानते हैं कि व्युत्पत्ति के आधार पर शब्दों के वर्गीकरण में 'उपसर्ग' और 'प्रत्यय' नामक शब्दांशों का बड़ा महत्व है। अतः इन पर यहाँ विशेष चर्चा करना उचित होगा।

(i) उपसर्ग : उपसर्ग एक ऐसा शब्दांश है जिसका अकेला या स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। इसका स्वतंत्र अस्तित्व होते हुए भी यह स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त नहीं होता। इसलिए इसे 'शब्दांश' कहा गया है। इसके प्रयोग से मूल शब्द के अर्थ में विशेषता तथा परिवर्तन आ जाता है। इस प्रकार जो शब्दांश किसी शब्द के प्रारंभ में जुड़कर उसके अर्थ को बदल देते हैं, 'उपसर्ग' कहलाते हैं। उदाहरण के लिए : कु + कर्म = कुकर्म, अप + मान = अपमान, आ + गमन = आगमन। यहाँ कु, अप, आ आदि उपसर्ग हैं जिनके प्रयोग से मूल शब्दार्थ ही बदल जाता है।

हिंदी में तीन प्रकार के उपसर्गों का प्रयोग होता है – तत्सम उपसर्ग, तद्भव उपसर्ग और विदेशी उपसर्ग।

तत्सम उपसर्ग : संस्कृत भाषा से ज्यों का त्यों हिंदी में अपनाए गए उपसर्गों को तत्सम उपसर्ग कहते हैं। उदाहरण के लिए – अति, अधि, अनु, अप, उप, दुः, नि आदि। अतिक्रमण, अधिनियम, अनुचर, अपहरण, उपसरण आदि उनसे बनने वाले शब्द हैं।

तद्भव उपसर्ग : संस्कृत के उपसर्गों या शब्दों से ध्वनि की दृष्टि से थोड़ा-बहुत परिवर्तन के साथ हिंदी में लिए गए उपसर्गों को तद्भव उपसर्ग कहते हैं। इनका भी वाक्य में स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। कुछ अन्य शब्दों के साथ जुड़कर ही ये प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण : अन, कु, दु, अध आदि - अनमोल, कुचैला, दुबला, अधपका।

विदेशी उपसर्ग : विदेशी भाषाओं से ग्रहण किए गए उपसर्गों को विदेशी उपसर्ग कहते हैं। हिंदी के संदर्भ में फारसी, अरबी और अंग्रेजी विदेशी भाषाएँ हैं और जिनसे लिए गए उपसर्ग विदेशी उपसर्ग कहे जाते हैं। उदाहरण : अल, बे, दर, ला, डिप्टी, जनरल आदि। अलबत्ता, बेईमान, दरअसल, लाइलाज, डिप्टी कलेक्टर, जनरल मैनेजर आदि।

उपसर्ग और उनसे बनने वाले शब्द रूप और उनके अर्थ

उपसर्ग	अर्थ-द्योतक		शब्द रूप
अ	(1) प्रतिकूल	-	अहित, अमर, अधर्म
	(2) रहित, हीन (नहीं होने का)	-	अशांत, अज्ञान, अनंत,
	(3) निषेधार्थ	-	अपठनीय, अखाद्य
अन	(1) अतीत या परे	-	अनगिनत, अनमोल
	(2) अभाव	-	अनपढ़, अनादर

	(3) प्रतिकूल -	अनमना
अधि	(1) अधिक -	अधिसंख्य
	(2) अधिकार पूर्वक -	अधिसूचना
अनु	(1) समानता -	अनुरूप
	(2) पीछा -	अनुचर, अनुकरण, अनुगमन
उप	(1) नीचे -	उपसचिव, उपनिदेशक
	(2) गौण -	उपकथा, उपनिवेश, उपजाति
पर	(1) बाद -	परवर्ती, परसर्ग
	(2) पूर्वक -	परदादा, परपोता
स	(1) सहित -	सपरिवार, सहानुभूति
	(2) एक ही का -	सगोत्र, सहोदर
स्व	(1) अपना या स्वयं के -	स्वदेश, स्वरूप
कु	(1) बुरा -	कुकर्म, कुपुत्र, कुमार्ग
दु	(1) बुरा -	दुर्दिन, दुष्कर्म, दुष्ट
	(2) कठिन -	दुर्गम, दुर्बोध
ना	(1) निषेध -	नापसंद, नामंजूरी, नालायक
ला	(1) बिना या रहित -	लापरवाह, लापता, लाजवाब

(ii) प्रत्यय : प्रत्यय का प्रयोग वाक्य में स्वतंत्र रूप से न होकर शब्द के मूल रूप के अंत में जोड़कर किया जाता है। प्रत्यय के जोड़ने से मूल शब्द के अर्थ में परिवर्तन तथा परिवर्धन हो जाता है। प्रत्यय के जुड़ने से शब्द के रूप में निहित कोशगत अर्थ व्याकरणिक अर्थ में परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण के लिए, 'लड़का' शब्द में जुड़कर 'ए' प्रत्यय 'लड़का' शब्द के मूल अर्थ में थोड़ा सा परिवर्तन लाकर उसे बहुवचन शब्द 'लड़के' में बदल देता है। वाक्य में प्रयोग की दृष्टि से प्रत्यय के जोड़ने से बनने वाले शब्द रूपों की व्याप्ति अधिक होती है। हिंदी में चार प्रकार के प्रत्यय हैं – तत्सम प्रत्यय, तद्भव प्रत्यय, देशज प्रत्यय और विदेशी प्रत्यय।

(क) तत्सम प्रत्यय : ये संस्कृत से बिना कुछ बदले हिंदी में लिए गए प्रत्यय हैं। जैसे : आलु (दयालु), जीवी (बुद्धिजीवी), इक (ऐतिहासिक), अनीय उल्लेखनीय) आदि।

(ख) तद्भव प्रत्यय : ये संस्कृत से ध्वनि की दृष्टि से कुछ बदलकर हिंदी में आए हुए प्रत्यय हैं। जैसे : ई (बूढ़ी), आहट (घबराहट), आइन (ठकुराइन) आदि।

(ग) देशज प्रत्यय : ये देशज बोलियों या शब्दों से लिए गए प्रत्यय हैं। जैसे : अक्कड़ (पियक्कड़), अंत (घुमंत), आक (तैराक) आदि।

(घ) विदेशी प्रत्यय : ये विदेशी भाषा से हिंदी में आए हुए प्रत्यय हैं। जैसे : इयत (इनसानियत), खोर (घूसखोर) आदि।

प्रकार्य के आधार प्रत्ययों का वर्गीकरण

भाषा में प्रत्यय किस प्रकार का कार्य कर रहा है, इस आधार पर प्रत्ययों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। वे शब्द साधक प्रत्यय और रूप साधक प्रत्यय।

(अ) शब्द साधक प्रत्यय : कुछ प्रत्ययों को शब्द के साथ जोड़ने से, वह शब्द पूरी तरह से नया शब्द बन जाता है। ऐसे प्रत्ययों को शब्दसाधक अथवा व्युत्पादक प्रत्यय कहते हैं। जैसे : सोना + आर = सुनार, लोहा + आर = लुहार, ईमान + दार = ईमानदार आदि।

व्युत्पादक प्रत्ययों से बने शब्द वाक्य में प्रयोग की दृष्टि से भाषा के अन्य साधारण शब्दों जैसे ही होते हैं। इन प्रत्ययों को, शब्दों के साथ लगाने से शब्द-वर्ग (अर्थात संज्ञा से विशेषण, क्रिया से संज्ञा, विशेषण से भाववाचक संज्ञा आदि) ही बदल जाते हैं। जैसे :

- साँप (सं॰) + एरा (प्रत्यय) = सँपेरा (व्यक्तिवाचक संज्ञा)
- बच्चा (सं॰) + पन (प्रत्यय) = बचपन (भाववाचक संज्ञा)
- साफ (वि॰) + ई = सफाई (क्रि॰)
- लूट (क्रि॰) + एरा = लुटेरा (सं॰)
- रोक (क्रि॰) + वट = रुकावट (भाववाचक संज्ञा)

व्युत्पादक प्रत्यय लगाकर बनाए गए शब्दों में दुबारा प्रत्यय लगाकर नए शब्द बनाए जा सकते हैं। जैसे :

- पूजा + आरी + इन = पुजारिन
- नीति + इक + ता = नैतिकता
- घोडा + सवार + ई = घुड़सवारी

(आ) रूप साधक प्रत्यय : रूप साधक प्रत्यय वे प्रत्यय होते हैं, जिनको लगाने से कोई शब्द वाक्य में प्रयोग योग्य रूप में बदल जाता है। इन प्रत्ययों को लगाकर एक ही शब्द के विभिन्न रूप प्राप्त किए जा सकते हैं। जैसे :

- बच्चा सोता है।
- बच्चे सोते हैं।
- बच्चों को दूध पिलाओ।
- बच्चो! शोर मत मचाओ।
- ए बच्चे! क्यों रो रहे हो।

व्युत्पादक प्रत्यय लगाकर बनाए गए शब्दों को वाक्य में प्रयोग करना हो तो, उनमें भी कोई न कोई रूप साधक प्रत्यय लगाना पड़ता है। जैसे :

- साँप + एरा + ए = सँपेरे
- साँप + एरा + ओं = सँपेरों

रूप साधक प्रत्यय लगाने से एक ही शब्द के विभिन्न व्याकरणिक रूप बनते हैं। जैसे : बच्चे, बच्चों आदि। वाक्य में प्रयुक्त शब्दरूपों (पदों) के बीच के संबंध को स्पष्ट करने और वाक्य की संप्रेषणीयता को परिपूर्ण बनाने में रूप साधक प्रत्ययों का बड़ा योग रहता है।

14.3.4 हिंदी में आगत (गृहीत) विदेशी शब्द व उनमें परिवर्तन

आगत, गृहीत या विदेशी शब्दों को 'Loan Words' भी कहा जाता है। ये वे शब्द हैं जो विदेशी भाषाओं से हिंदी में ग्रहण कर लिए गए हैं। आगत या विदेशी और नवनिर्मित शब्दों के निर्माण में प्रमुख रूप से अंगीकरण, अनुकूलन, नवनिर्माण और अनुवाद की प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है।

(i) **अंगीकरण :** अर्थात कुछ अंतरराष्ट्रीय शब्दों को यथावत स्वीकार करके हिंदी में लिप्यंतरित करके प्रयोग करना। जैसे : रासायनिक तत्वों और यौगिकों के नाम – कार्बन, ऑक्सीज़न। कुछ वस्तुबोधक ने शब्द, जैसे : वोल्ट मीटर, एम्पियर आदि। पेट्रोल, राडार, इंजन, मोटर जैसे भारतीय भाषाओं में रचे-पचे शब्दों को भी स्वीकार किया गया है। अंगीकृत शब्दों का लिप्यंतरण देवनागरी में करते समय भारतीय भाषाओं की प्रकृति को ध्यान में रखा जाता है।

(ii) **अनुकूलन :** अर्थात जब विदेशी भाषा का कोई शब्द किसी भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है तो उसे उस भाषा का शब्द मानकर प्रयोग किया जाता है। जैसे : आयनीकरण, वोल्टता, साबुनीकरण आदि। विदेशी शब्दों में हिंदी प्रत्यय लगाकर संकर शब्द भी निर्मित किए जाते हैं। अनुकूलन की यह प्रवृत्ति भाषा की सहज प्रकृति होती है। जैसे : रेलगाड़ी, बसअड्डा जैसे शब्द हिंदी में पहले से मौजूद हैं। इस प्रवृत्ति से भाषा का सहज वाक्य विन्यास कायम रहता है।

हिंदी ने कुछ शब्द अंग्रेजी से अपनी ध्वनि व्यवस्था के अनुरूप सरलीकृत करके भी लिए हैं। उदाहरण के लिए एकेडमी से अकादमी या टेकनीक से तकनीक। कुछ शब्दों का सरलीकरण

इस रूप में किया गया है कि वे लगभग उसी अर्थ में हिंदी की अपनी भाषिक इकाइयों से बने सार्थक शब्द लगते हैं। जैसे 'कॉमेडी से कामड़ी, ट्रेजेडी से त्रासदी, पैराबोला से परवलय, इंटेरिम से अंतरिम, इंटोनेशन से अनुतान आदि। ये कुछ शब्द तो सायास बनाए गए हैं। कुछ शब्द जनता ने सहज रूप से ग्रहण करने की प्रक्रिया में भी बना लिए हैं। जैसे : हॉस्पिटल से हस्पताल या अस्पताल, ट्रेजरी से तिजोरी आदि।

(iii) **नवनिर्माण :** जिन शब्दों के लिए समुचित पर्याय भारतीय भाषाओं में न हों तथा जिन्हें अंगीकृत करना भी उपयोगी न हो, उनके लिए पर्यायों के नवनिर्माण का सिद्धांत अपनाया गया है। इस तरह नए शब्द के निर्माण के लिए संस्कृत की धातु लेकर उनमें उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए जाते हैं। 'क्रिया' शब्द से 'प्रक्रिया', 'संक्रिया', 'अभिक्रिया' आदि बनाए गए हैं। नवनिर्माण की यह पद्धति संकल्पनात्मक शब्दों के लिए तो बहुत ही उपयोगी और व्यावहारिक है। इसीलिए राष्ट्रीय शब्दावली के निर्माण में इसे खुलकर अपनाया गया है। बड़ी संख्या में शब्दों का नवनिर्माण किया गया है। इस पद्धति से अर्थ की दृष्टि से नजदीक अंग्रेजी के शब्दों के लिए अलग-अलग हिंदी पर्याय निर्धारित किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए :

Conservation – संरक्षण

Maintenance - अनुरक्षण

Reservation – आरक्षण

यहाँ 'रक्षण' में उपसर्गों को जोड़कर नए शब्द निर्मित किए गए हैं।

इसी प्रकार समास पद्धति द्वारा भी नए शब्द बनाए जाते हैं। जैसे :

Copyright – प्रतिलिप्यधिकार, स्वत्वाधिकार

Privilege - विशेषाधिकार

उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर बने शब्दों के उदाहरण :

Authority – प्राधिकार, प्राधिकरण

Authorities – प्राधिकारी

Authorized – प्राधिकृत, अधिकृत

इसके अलावा अन्य तरीकों से भी शब्दों का निर्माण किया जाता है जैसे विदेशी शब्दों को ज्यों-का-त्यों लिप्यंतरित करने की अपेक्षा हिंदी ध्वनियों के अनुसार अनुकूलन कर लिया जाता है –

Academy – अकादमी

Fantasy – फंतासी

Tragedy – त्रासदी

Comedy – कामदी

Reportage – रिपोर्ताज

किसी संदर्भ विशेष को व्यक्त करने के लिए भी पर्यायों में भेद किया जाता है। जैसे –

Director = निदेशक और निर्देशक।

'निर्देशक' शब्द किसी नाटक, फिल्म आदि के 'Director' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है, जबकि 'निदेशक' प्रशासनिक पद के अर्थ में।

बहुत-से अंग्रेजी शब्दों के अर्थ या भाव के आधार पर नए शब्दों का निर्माण भी किया गया है। जैसे : Phrase – पदबंध, Tug of War – रस्साकशी, Principal – प्राचार्य, Sketch – रेखाचित्र आदि।

(iv) **अनुवाद :** शब्दावली निर्माण की प्रक्रिया में अनुवाद की भूमिका भी बड़ी महत्वपूर्ण है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विकास के साथ जीवन पद्धतियों में बदलाव हुआ है। इस प्रकार अनेक प्रकार की नई-नई संकल्पनाएँ एवं स्थितियाँ विकसित हुई हैं और होती रहती हैं। उनकी अभिव्यक्ति के लिए नई शब्दावली आती हैं अथवा पुरानी शब्दावली में अर्थ विस्तार होता है। ऐसी राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली के विकास के लिए अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। इस पद्धति में कभी-कभी संकल्पना को प्रकट करने वाले पूरे शब्द समूह का अनुवाद कर लिया जाता है। जैसे –

Coldwar – शीतयुद्ध

Acid Rain – अम्लीय वर्षा

Workshop – कार्यशाला

Managing Director – प्रबंध निदेशक

Development Council – विकास परिषद

कहने का आशय है कि हिंदी भाषा ने समय-समय पर विविध परिवर्तनों, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति तथा आधुनिकीकरण को पूरी तरह अभिव्यक्त करने के लिए निस्संकोच विविध देशी-विदेशी भाषाओं से गृहीत (आगत) शब्दावली की सहायता से अपनी शब्द-संपदा का विस्तार किया है। नवनिर्माण और अनुवाद द्वारा भी अपना सामर्थ्य बढ़ाया है।

14.4 : पाठ सार

शब्द भाषा की स्वतंत्र एवं सार्थक इकाई है जिसकी रचना एक या एक से अधिक ध्वनियों अथवा वर्णों से होती है। जैसे न (नहीं) और व (और) एक वर्ण से निर्मित शब्द हैं तो कुत्ता, शेर, कमल, नयन, प्रसाद, सर्वव्यापी, परमात्मा अनेक वर्णों से निर्मित शब्द। शब्द का

प्रयोग भाषा में स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है तथा यह एक निश्चित अर्थ का बोध कराता है। किसी भाषा में बदलाव उसके शब्द-समूह द्वारा भी अभिव्यक्त होता है। अतः भाषा के अध्ययन में शब्द का अत्यधिक महत्व है। शब्द को भाषा की मूलभूत स्वतंत्र व सार्थक इकाई कहने का अभिप्राय यह भी है कि इसका निर्माण ध्वनियों के संयोजन से होता है जो भाषा की मूलभूत निरर्थक इकाई है। शब्दों के वर्गीकरण के कई आधार हो सकते हैं। जैसे : सार्थकता और निरर्थकता परक, शब्द रचना परक, ध्वनि संरचना परक, शब्द व्युत्पत्ति परक, शब्द और अर्थ परक, स्रोत परक वर्गीकरण।

स्रोत के आधार पर हिंदी शब्दों के चार वर्ग हैं – तत्सम (संस्कृत के मूल शब्द), तद्भव (संस्कृत शब्दों से विकसित शब्द), देशज (स्थानीय भाषाओं/ बोलियों से गृहीत शब्द) और विदेशी शब्द (विदेशी भाषाओं से गृहीत शब्द)। आगत, गृहीत या विदेशी शब्दों को 'लोन वर्ड्स' भी कहा जाता है। ये वे शब्द हैं जो विदेशी भाषाओं से हिंदी में ग्रहण कर लिए गए हैं। आगत या विदेशी और नवनिर्मित शब्दों के निर्माण में प्रमुख रूप से अंगीकरण, अनुकूलन, नवनिर्माण और अनुवाद की प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है। हिंदी भाषा ने समय-समय पर विविध परिवर्तनों, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति तथा आधुनिकीकरण को पूरी तरह अभिव्यक्त करने के लिए निस्संकोच विविध देशी-विदेशी भाषाओं से गृहीत (आगत) शब्दावली की सहायता से अपनी शब्द-संपदा का विस्तार किया है। साथ ही, नवनिर्माण और अनुवाद द्वारा भी अपना सामर्थ्य बढ़ाया है।

14.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन में निम्नलिखित विषय स्पष्ट हुए –

1. 'शब्द' की परिभाषा।
2. 'शब्द' के प्रकार ।
3. शब्द रचना में उपसर्ग और प्रत्यय की भूमिका।
4. हिंदी शब्द संपदा में विदेशी भाषाओं का योगदान।

14.6 : शब्द संपदा

1. अनुकूलन	:	adaptation
2. अभिव्यक्ति	:	expression
3. आगत शब्द	:	loan words
4. आधुनिकीकरण	:	modernization

5. उपसर्ग	:	prefix
6. कोश विज्ञान	:	lexicography
7. कोशीय अंग	:	lexical unit
8. प्रतीक	:	symbol
9. प्रत्यय	:	suffix
10. भाषिक प्रतीक	:	language symbol
11. लघुतम इकाई	:	minimal unit
12. संकल्पना	:	concept
13. संकेतक	:	signified
14. संकेतित	:	signifier
15. रूढ़ शब्द	:	मूल शब्द भी कहा जाता है। ये अखंड शब्द हैं। इंका एक मूल अर्थ होता है।
16. यौगिक शब्द	:	रूढ़ शब्दों के मेल से बने शब्द।
17. योगरूढ़ शब्द	:	दो स्वतंत्र शब्दों के योग से बनते हैं और विशेष अर्थ का बोधा कराते हैं।

14.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड – (अ)

दीर्घ उत्तर प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।

1. शब्द की परिभाषा देते हुए उसके प्रमुख लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
2. शब्दों के वर्गीकरण किन आधारों पर किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।
3. उपसर्ग और प्रत्यय किसे कहते हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

खंड – (ब)

लघु उत्तर प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए।

1. सार्थकता और निरर्थकता पर टिप्पणी लिखिए।
2. प्रत्यय के प्रकारों की चर्चा कीजिए।

3. उपसर्ग के प्रकारों को रेखांकित कीजिए।

4. अंगीकरण और अनुकूलन प्रक्रिया पर टिप्पणी लिखिए।

5. हिंदी में नवनिर्मित शब्दों में अनुवाद की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।

खंड – (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. 'सहानुभूति' में उपसर्ग क्या है ?

(अ) स (आ) अनुभूति (इ) सहा (ई) सह

2. उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुत्तम इकाई है ।

(अ) ध्वनि (आ) शब्द (इ) अक्षर (ई) वर्ण

3.अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुत्तम स्वंतत्र इकाई है ।

(अ) ध्वनि (आ) शब्द (इ) अक्षर (ई) वर्ण

4.__________का प्रयोग शब्द के मूल रूप के अंत में होता है ।

(अ) उपसर्ग (आ) प्रत्यय (इ) परसर्ग (ई) संसर्ग

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. हिंदी में __________प्रकार के उपसर्गों का प्रयोग होता है.
2. हिंदी में ___________ प्रकार के प्रत्यय है.
3. अंतरराष्ट्रीय शब्दों को यथावत स्वीकार करना ________है .

III. सुमेल कीजिए।

1. अ	(अ) अधिक
2. उप	(आ) पिच्छे
3. अधि	(इ) गौण
4. अनु	(ई) प्रतिकूल

14.8 : पठनीय पुस्तकें

1. शर्मा, राजमणि (1998). हिंदी भाषा : इतिहास और स्वरूप

2. शर्मा, राजमणि (1996). आधुनिक भाषाविज्ञान

3. रस्तोगी, कविता (2013). भाषाविज्ञान का परिचय

4. तिवारी, भोलानाथ और मुकुल प्रियदर्शिनी (1982). हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका. मद्रास : दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा

इकाई 15 : हिंदी का भाषिक स्वरूप और स्वनिमिकी

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 मूल पाठ : हिंदी का भाषिक स्वरूप और स्वनिमिकी

15.3.1 स्वनिम विज्ञान का अभिप्राय

15.3.2 स्वनिम विज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

15.3.3 मूलभूत संकल्पनाएँ

15.3.4 स्वनिम विज्ञान : अवधारणा और सिद्धांत

15.3.5 हिंदी की स्वनिम व्यवस्था

15.3.6 स्वनिम विश्लेषण

15.4 पाठ सार

15.5 पाठ की उपलब्धियाँ

15.6 शब्द संपदा

15.7 परीक्षार्थ प्रश्न

15.8 पठनीय पुस्तकें

15.1: प्रस्तावना

ध्वनि विज्ञान या स्वन विज्ञान वाक् उत्पादन प्रक्रिया, उच्चारण प्रक्रिया, वायु प्रवाह तंत्र, स्वर और व्यंजनों का वर्गीकरण आदि का अध्ययन करता है। आपको यह पता ही होगा कि हर व्यक्ति का हर ध्वनि का उच्चारण अलग होता है। एक शब्द को कहने के अनेक तरीखे हो सकते हैं। और इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि परिस्थिति के अनुसार उच्चारण भिन्न हो जाता है। अतः हमें स्वन विज्ञान (फ़ोनोटिक्स) से आगे बढ़कर स्वनिम विज्ञान (फ़ोनोलोजी) की ओर जाना होगा। प्रस्तुत इकाई में इसी विषम का अध्ययन किया जाएगा।

15.2 : उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने से आप -

1. स्वनिम विज्ञान के अर्थ को समझ सकेंगे।
2. स्वनिम विज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जान सकेंगे।
3. स्वनिम विज्ञान की मूलभूत संकल्पनाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।

4. हिंदी की स्वनिम व्यवस्था का विश्लेषण कर सकेंगे।

15.3 : मूल पाठ: हिंदी का भाषिक स्वरूप और स्वनिमिकी

15.3.1 स्वनिम विज्ञान का अभिप्राय

स्वनिम विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें किसी भाषा में प्रयुक्त स्वनिमों (ध्वनिग्रामों) तथा उनसे संबद्ध पूरी व्यवस्था पर विचार किया जाता है। अंग्रेजी 'फोनेमिक्स' के लिए हिंदी में अनेक शब्द प्रचलित हैं – ध्वनिग्राम विज्ञान, स्वनिमी, स्वनिम विज्ञान, स्वन ग्रामिकी, ध्वनि ग्रामिकी, ध्वनि तत्व विज्ञान, ध्वनि मात्रा विज्ञान, वर्ण विज्ञान आदि। इनमें से 'स्वनिम विज्ञान' भारत सरकार द्वारा स्वीकृत नाम है। 'फोन' के लिए 'स्वन' शब्द है। अतः 'फोनीम' को 'स्वनिम' और 'फोनीमिक्स' को स्वनिम विज्ञान कहा जा सकता है। 'फोन' का अनुवाद 'ध्वनि' होगा तो 'फोनीम' के लिए 'ध्वनिग्राम' और 'फोनीमिक्स' के लिए ध्वनिग्राम विज्ञान शब्द उपयुक्त होंगे।

स्वनिम विज्ञान भाषाशास्त्र का एक प्रमुख अंग है। इसमें प्रत्येक भाषा के स्वनिम का वैज्ञानिक विश्लेषण-विवेचन किया जाता है और उनके आधार पर ही प्रत्येक भाषा के लिए सुव्यवस्थित वैज्ञानिक लिपि तैयार की जाती है। यह विज्ञान अनेक दृष्टि से भाषाशास्त्र के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

स्वनिम के स्वरूप के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। ब्लूमफील्ड और डेनियल जोन्स आदि इसे भौतिक इकाई मानते हैं। एडवर्ड सेपीयर कुर्तिन तथा प्राग स्कूल के कुछ भाषाशास्त्री स्वनिम को मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं। डब्ल्यू. एफ. ट्वाडेल इसको अमूर्त काल्पनिक इकाई सिद्ध करते हैं। स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई मानना अधिक उचित है। स्वनिम ध्वनि समूह का द्योतक है, अतः यह जाति है। जिस प्रकार जाति और व्यक्ति में जाति अमूर्त है और व्यक्ति मूर्त, उसी प्रकार स्वनिम जाति होने के कारण अमूर्त है और उपस्वन या संध्वनि (allophone) मूर्त है। प्रयोग की दृष्टि संस्वन का ही अस्तित्व है, स्वनिम इसके मूल स्वरूप का द्योतक है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए स्वनिम की कुछ परिभाषाएँ निम्नप्रकार से हैं –

हॉकेट : 'स्वनिम वे तत्व हैं जो उस भाषा की स्वन प्रक्रियात्मक पद्धति में एक दूसरे के व्यतिरेकी रूप में आते हैं।'

ब्लॉक तथा ट्रेगर : 'स्वनिम रचनात्मक दृष्टि से समान स्वनों का समूह है जो किसी भाषा विशेष में उसी के अन्य समस्त समूह से व्यतिरेकी होता है।'

डेनियल जोन्स : 'स्वनिम संबंधित स्वनों का एक परिवार होता है जिसका कोई सदस्य किसी शब्द में इस प्रकार आता है कि उसी प्रकार से ध्वन्यात्मक संदर्भ में इसका कोई दूसरा सदस्य नहीं आता।'

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि स्वनिम उच्चरित ध्वनि की लघुतम इकाई है जिससे दो ध्वनियों के बीच अंतर व भिन्नता स्पष्ट होता है। स्वनिम विज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है जो किसी भी भाषा में ध्वनि व्यवस्था के अध्ययन के लिए स्वनिम की संकल्पना प्रस्तुत करते हुए स्वनिम तथा सहस्वन और उनके वितरण का अध्ययन करना आवश्यक मानता है। उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर स्वनिम की कुछ विशेषताओं को निम्नरूप से निर्धारित किया जा सकता है –

(i) स्वनिम का संबंध किसी भाषा विशेष से होता है।

(ii) जिन परिस्थितियों में एक स्वनिम आता है, उन्हीं परिस्थितियों में दूसरा स्वनिम नहीं आता।

(iii) प्रत्येक स्वनिम स्वतंत्र है।

(iv) उच्चारण स्थान और प्रयत्न की समानता के आधार पर स्वनिमों का निर्धारण किया जाता है।

(v) संस्वन (संध्वनि) अथवा 'एलोफोन' स्वनिम का उपस्वन है। 'एलोफोन' का अर्थ है अलग-अलग या एक-एक ध्वनि। इस एक ध्वनि में कई संस्वन हो सकते हैं। अर्थात एक स्वनिम के अनेक संस्वन होते हैं। इस दृष्टि से संस्वन स्वनिमों के स्थितिपरक प्रकार (positional variants) हैं।

15.3.2 स्वनिम विज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्वनिम का अस्तित्व 19 वीं शताब्दी में मिलता है किंतु वहाँ उसका प्रयोग इकाई के रूप में हुआ है। सन 1920 के आरंभ में अमेरिकी भाषावैज्ञानिकों की कृतियों में महत्वपूर्ण एवं महत्वहीन ध्वनि इकाइयों के आधार पर प्रकाश डाला गया है किंतु यहाँ भी स्वनिम के संप्रदाय का अभाव है। एडवर्ड सेपियर की पुस्तकों में स्वनिमिक व्यतिरेक का उल्लेख मिलता है, पर उसमें भी नियमबद्धता का अभाव है।

यह पहले भी बताया जा चुका है कि स्वनिम विज्ञान भाषाविज्ञान की शाखा है जो किसी भाषा में ध्वनि के उपयोग और उसकी व्यवस्था का अध्ययन करके यह स्पष्ट करती है कि सार्थक ध्वनि व्यवस्था के अध्ययन के लिए स्वनिम की संकल्पना करते हुए स्वनिम तथा सहस्वन और उसके वितरण तथा अनुक्रम का अध्ययन करना आवश्यक है।

स्वनिम के संबंध में सैद्धांतिक एवं व्यवस्थित रूप में विचार प्रस्तुत करने का श्रेय रूसी विद्वान त्रुवेत्सकाय को जाता है। उन्होंने अपनी पुस्तक में स्वन के संबंध में विचार व्यक्त किया है। स्वनिम एक मूर्त कार्यकारी संप्रत्यय है। यह लघुतम इकाई है, जो किसी अर्थ की भिन्नता प्रकट करती है। इनमें 'अर्थ व्यवच्छेदक' मुख्य तत्व है, जो दो शब्दों के अर्थ की भिन्नता को स्पष्ट

करता है। उदाहरण के लिए, हिंदी के 'पल' तथा 'फल' शब्दों में अर्थ की भिन्नता स्पष्ट है। यहाँ 'प्' तथा 'फ्' दो अलग स्वनिम हैं। किसी भाषा के स्वनिमों की खोज के लिए उसके न्यूनतम युग्मों (minimal pairs) को लेना पड़ता है।

एक दूसरा वर्ग भी सामने आया है, जो स्वनिम को भौतिक रूप में मानते हैं। इस वर्ग के अनुसार स्वनिम स्वनों के एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। यथा हिंदी 'प्' स्वनिम अपने वर्ग के उन सभी उपस्वनों का प्रतिनिधित्व करता है, जो हिंदी भाषा में उपलब्ध है। ब्लूमफील्ड स्वनिम को भेदक स्वन रूपों की लघुतम इकाई मानते हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि स्वनिम एक स्वन के विभिन्न रूपों का समूह है तो कुछ लोग यह मानते हैं कि स्वनिम एक अमूर्त तत्व है किंतु भौतिक धरातल पर किसी भाषा में यह प्रत्यक्ष रूप में अनुभूत किया जा सकता है।

इस प्रकार स्वनिम की प्रक्रिया विभिन्न प्रकार के रूपों से स्वीकृत हुई तथा इसे भेदक रूपों के समूह के रूप में परिभाषित किया गया। ये न्यूनतम व्यवच्छेदक अर्थवान इकाई थे।

स्वनिम विज्ञान के अध्ययन से भाषा के शुद्ध उच्चारण में सहायता मिलती है। भाषा शिक्षण की अधुनातन पद्धतियों में वर्णमाला के स्थान पर ध्वनियों (स्वनों), स्वनिम और संस्वनों पर ध्यान देने से भाषा का शुद्ध उच्चारण निश्चित है। स्वनिम विज्ञान भाषाविज्ञान की आधारशिला है। भाषाविज्ञान के सभी अंग स्वनिम के ज्ञान का प्रयोग करते हैं। स्वनिम भाषा के अर्थ भेदक इकाई है। भाषा के अन्य इकाइयाँ – शब्द, पद, वाक्य, अर्थ आदि का ज्ञान स्वनिम के मूल ज्ञान पर आधारित है। लिपि निर्माण में स्वनिमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन्हीं के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय लिपि चिह्नों (IPA – International Phonetic Alphabets) की व्यवस्था की गई है।

प्राचीन भारतीय वैयाकरणों ने ध्वनिशास्त्र एवं स्वनिम विज्ञान की आधारशिला रखी। स्वनिम विज्ञान के आदि प्रवर्तक के रूप में महर्षि पाणिनि को स्मरण करना चाहिए क्योंकि उन्होंने माहेश्वर सूत्रों के रूप में संस्कृत के स्वनिमों को प्रस्तुत किया। प्रो. एलेन ने अपनी पुस्तक 'फोनेटिक्स इन एनशिएंट इंडिया' में इसका विवेचन किया है। पं. विद्यानिवास मिश्र ने 'द डिस्क्रिप्टिव टेकनीक ऑफ पाणिनि (1966) में पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' को ध्वनिशास्त्र का आकर ग्रंथ कहा है।

15.3.3 मूलभूत संकल्पनाएँ

स्वनिम विज्ञान की मूलतः तीन मूलभूत संकल्पनाएँ हैं – स्वनिम, संस्वन और उपस्वन।

(i) स्वनिम

स्वनिम या ध्वनिग्राम को अनेक विद्वानों ने पारिभाषित करने का प्रयास किया है। हॉकेट के अनुसार स्वनिम किसी भाषा के वे तत्व हैं, जो उस भाषा की ध्वनि प्रक्रियात्मक पद्धति में

एक-दूसरे के व्यतिरेकी रूप में आते हैं। ब्लॉक और ट्रेगर ने स्वनिम को रचनात्मक दृष्टि से समान स्वनों का समूह माना है जो किसी भाषा विशेष में उसी प्रकार के अन्य समस्त समूहों से व्यतिरेकी होता है। ग्लीसन के अनुसार स्वनिम बोलचाल की भाषा के उच्चरित रूप की वह न्यूनतम विशेषता है जिसके द्वारा कही गई बात का, कही जाने वाली किसी अन्य बात से अंतर स्पष्ट किया जाता है। स्वनिम रचनात्मक दृष्टि से किसी भाषा/ बोली में समान स्वनों का समूह है, जिसके वितरण का एक ढाँचा होता है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वनिम का संबंध किसी भाषा विशेष से होता है तथा प्रत्येक भाषा की अपनी स्वनिम एवं स्वनिमिकीय व्यवस्था होती है। स्वनिम रचनात्मक दृष्टि से उपस्वनों का समूह होता है। वह किसी भाषा में व्यतिरेकी एवं अर्थभेदक रूप में उपलब्ध होता है।

स्वनिम के माध्यम से ही ध्वनियों के बीच निहित अंतर को प्रकट किया जा सकता है। स्वनिम भाषा की लघुतम इकाई है। यथा : अ, त, क, प आदि। यह अर्थभेदक इकाई है। यथा : 'तन' और 'मन' शब्दों में अर्थ भिन्नता 'त' और 'म' स्वनिमों की भिन्नता के कारण है। इन दोनों शब्दों के 'न' के उच्चारण में सूक्ष्म भिन्नता है किंतु दोनों एक ही स्वनिम से संबंधित है। इसलिए इनसे अर्थ भिन्नता नहीं होती। स्वनिम का संबंध उच्चरित भाषा से है, लिखित भाषा से नहीं। लिखित भाषा में इसी प्रकार की इकाई 'लेखिम' (grapheme) होती है। हिंदी के 'क' स्वनिम के लिए अंग्रेजी में कई लेखिमों का प्रयोग होता है। यथा : C > कैमल (camel); K > काइट (kite); Ch > केमेस्ट्री (chemistry), ck – बैक (back) आदि। ये स्वनिम भाषा विशेष पर आधारित होते हैं।

(ii) संस्वन

किसी एक स्वन का उच्चारण दो व्यक्ति एक समान नहीं करते। यही नहीं, एक व्यक्ति भी एक स्वन का उच्चारण हर बार एक समान नहीं कर पाता। अर्थात उनमें अंतर हो जाता है। परंतु उन अंतरों के आधार पर एक ही स्वन के अनेक रूप हो जाते हैं। सूक्ष्म अंतरों का अध्ययन संभव नहीं है। भाषावैज्ञानिक भाषा के कुछ स्वनों को निश्चित कर लेते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी के कल, काल, कला आदि में 'क्' स्वन के उच्चारण में थोड़ा सा अंतर है। स्वनिम विज्ञान में इनके लिए विशेष चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। स्वनिम को खड़ी रेखाओं के बीच तथा संस्वन को बड़े कोष्ठक [ ] द्वारा अंकित किया जाता है। जैसे।क। [क2] आदि। संस्वन को 'सहस्वन' भी कहा जाता है।

किसी स्वनिम के संस्वन परिपूरक वितरण (complementary distribution) में आते हैं। ध्वन्यात्मक संदर्भ में 'क' का प्रयोग होता है उसमें क2 का प्रयोग नहीं हो सकता।।ड। के दो

संस्वन हैं – [ड2] स्पर्श ध्वनि और [ड2] उत्क्षिप्त। भिन्नता को स्पष्ट करने के लिए उत्क्षिप्त को 'ड़' लिखा जाता है। इन दोनों के प्रयोग का क्षेत्र सुनिश्चित है। उदाहरण के लिए –

- शब्द के आरंभ में : डाक, डर, आदि
- शब्द के बीच में अनुस्वार के बाद : ठंडक, खंडन, कुंडल आदि
- शब्द के मध्य में अनुस्वार के पहले : आडंबर, विडंबना आदि
- शब्द के मध्य में द्वित्व की स्थिति में : अड्डा, गड्ड-मड्ड

स्वनिम और संस्वन में मूल अंतर है कि यदि हम किसी स्वनिम को किसी अन्य स्वनिम से बदल लेंगे तब शब्द भी बदल जाएगा तथा उसका अर्थ भी वह न रहेगा। उदाहरण के लिए 'मत' शब्द से 'त' के स्थान पर 'न' का प्रयोग करने से 'मन' शब्द बनता है जिसका अर्थ 'मत' से भिन्न है। पर यदि एक संस्वन के स्थान पर दूसरे संस्वन को रखकर उच्चारण करें तो केवल भिन्न उच्चारण सुनाई देगा पर अर्थ वही रहेगा। कहने का अभिप्राय है कि 'क' स्वनिम है। इसे 'कला', 'किन', 'कुल', 'शक्ल', 'क्लम,' 'क्वचित' में छह प्रकारों से उच्चरित किया जा सकता है। उच्चारण में थोड़ा सा अंतर स्वाभाविक है। अतः हर उच्चारण भेद के आधार पर 'क्' से छह संस्वन हुए। स्वनिम एक होता है और उसके अनेक संस्वन होते हैं।

(iii) उपस्वन

उपस्वन को 'संध्वनि' भी कहा जाता है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार, स्वनिम किसी भाषा की ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान ऐसी भाषा ध्वनियों (speech sounds) के वर्ग को कहते हैं, जो आपस में वितरण (distribution) की दृष्टि से अव्यतिरेकी (non-contrastive) हों। ये समान ध्वनियाँ उपस्वन (allophone) कहलाती हैं। स्वनिम और उपस्वन में निम्नलिखित अंतर हैं –

(1) स्वनिम प्रभेदक (distinctive) होता है। कहने का अभिप्राय है कि भाषा-विशेष के स्वनिमों में, उस भाषा में अर्थ भेद करने की क्षमता होती है। उदाहरण के लिए 'क' और 'ग' हिंदी में अर्थभेदक ध्वनियाँ हैं। 'काना' और 'गाना' शब्दों में 'क' और 'ग' के कारण अर्थ में अंतर है। अतः 'क' और 'ग' स्वनिम हैं। इसके विपरीत उपस्वन में यह क्षमता नहीं होती। यदि एक उपस्वन के स्थान पर किसी शब्द में दूसरे उपस्वन का प्रयोग कर दिया जाय तो अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। इसीलिए उपस्वन अ-भेदक (non- distinctive) होते हैं।

(2) वितरण की दृष्टि से स्वनिम व्यतिरेकी होते हैं और उपस्वन प्रतिपूरक या मुक्त।

(3) दो ध्वनियाँ एक की स्थिति में आएँ और अर्थ में भेद न हो तो दोनों का वितरण मुक्त वितरण (free distribution) कहलाता है।

15.3.4 स्वनिम विज्ञान : अवधारणा और सिद्धांत

स्वनिम विज्ञान की अवधारणा को समझने के लिए निम्नलिखित सिद्धांत सहायक सिद्ध होते हैं –

वितरण सिद्धांत

यह सिद्धांत किसी भाषा के स्वनिमों और सहस्वनों के अध्ययन में अधिक विश्वसनीय आधार प्रदान करता है। तीन प्राकर के वितरण हैं – परिपूरक वितरण, मुक्त वितरण और व्यतिरेकी वितरण।

परिपूरक वितरण (complementary distribution) : स्वनिम विज्ञान के नियमानुसार ध्वनियाँ परिपूरक वितरण के अंतर्गत आती हैं। उदाहरण के लिए 'ङ,' 'ञ,' 'ण,' 'म' आदि के स्थान पर 'न' ध्वनि का प्रयोग – चञ्चल > चंचल, सम्बन्ध > संबंध आदि। ये धावनियाँ एक—दूसरे की पूरक हैं, पर अर्थ भेद का कारण नहीं बनतीं। जब अर्थ भेद नहीं होती तब ये स्वनिम न होकर संस्वन ही होंगी। उच्चारण भेद ही होगा पर इसके कारण अर्थ नहीं बदलता।

मुक्त वितरण (free distribution) : जहाँ दो ध्वनियाँ बिना किसी अर्थ भेद के एक दूसरे के स्थान पर स्वच्छंद, मुक्त रूप से प्रयुक्त रूप से प्रयुक्त होती हैं, उसे मुक्त वितरण कहते हैं। उदाहरण के लिए 'श' के स्थान पर 'स' और 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग मुक्त वितरण है क्योंकि 'वसंत – बसंत', 'शाम – साम' में मंतव्य अर्थ नहीं बदलता। इसी प्रकार यजमान – जजमान, सिर – शिर, शुक – सुक, श्वसुर – ससुर आदि।

व्यतिरेकी वितरण (contrastive distribution) : जब दो स्वन या ध्वनियाँ समान संदर्भ में आती हैं और शब्द के अर्थ में अंतर या व्यतिरेक उत्पन्न करती हैं तो वे ध्वनियाँ व्यतिरेकी वितरण में कही जाती हैं। कल, खल, जल, चल, मल, नल, पल, हल, दल आदि। इसी तरह अंग्रेजी में पिन, बिन, सिन, टिन आदि।

ध्वन्यात्मक समानता का सिद्धांत :स्वनिमों के निर्धारण में यह विश्वसनीय कसौटी है। कान, नकल और अंकित शब्दों में 'क1', 'क2' और 'क3' के उच्चारण में अंतर होने के बावजूद ये सहस्वन हैं। इसके विपरीत काली, खाली और गाली शब्दों में क, ख और गा भिन्न-भिन्न स्वनिम हैं।

15.3.5 हिंदी की स्वनिम व्यवस्था

स्वनिम दो प्रकार के होते हैं – खंड्य (जिन्हें खंडित किया जा सके) और खंड्येतर (जिन्हें अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सके)। खंड्य ध्वनियों की स्वतंत्र सत्ता होती है जबकि खंड्येतर ध्वनियाँ खंड्य ध्वनियों पर आधारित होती हैं। इनका अलग उच्चारण भी संभव नहीं।

खंड्य = स्वर स्वनिम, व्यंजन स्वनिम

स्वनिम

खंड्येतर = अनुतान, बलाघात, दीर्घता, अनुनासिकता, संगम

खंड्य स्वनिम

खंड्य स्वनिम वे स्वनिम हैं जिन को अलग-अलग (खंड-खंड) किया जा सकता है। इन्हें 'खंडीय स्वनिम' भी कहा जाता है। स्वर और व्यंजनों को खंड्य स्वनिम माने जाते हैं।

हिंदी स्वर स्वनिम : हिंदी भाषा में दस स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वनिम हैं क्योंकि इनके न्यूनतम युग्म हिंदी में मिलते हैं – मल, माल, मिल, मील, मूल, मेल, मैल आदि। ये आपस में व्यतिरेकी और अर्थ भेदक हैं।

हिंदी व्यंजन स्वनिम : हिंदी के अधिकांश व्यंजनों के न्यूनतम युग्म मिल जाते हैं – चला, छला, जला, झला

खंड्य स्वनिम के कुछ लक्षण इस प्रकार हैं –

(i) इन्हें अलग-अलग बोला जा सकता है।

(ii) इन्हें स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है।

(iii) काल और प्रयत्न की दृष्टि से इनका वर्गीकरण व विश्लेषण किया जा सकता है।

खंड्येतर स्वनिम

ये वे स्वनिम हैं जिनका खंडन नहीं किया जा सकता। इनको छंद शास्त्रीय तत्वों (prosodic features) में गिना जाता है – अनुतान (intonation), बलाघात (stress), दीर्घता (length), सुर (pitch, tone), अनुनासिकता (nasalization), संगम (juncture)। इन स्वनिमों की स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। ये खंड्य स्वनिमों पर आधारित होती हैं।

अनुतान : इसे 'सुर-लहर' भी कहा जाता है। सुर स्वर-तंत्रियों के कारण उत्पन्न ध्वनिगुण है। सुर किसी एक ध्वनि का होता है। जब हम एक से अधिक ध्वनियों की कोई इकाई का उच्चारण करते हैं, तो हर ध्वनि का सुर प्रायः अलग-अलग होता है और इस प्रकार सुरों के उतार-चढ़ाव की लहर बनती है। इसे सुर-लहर या अनुतान कहते हैं। यह आरोह-अवरोह का क्रम है। उदाहरण के लिए :

वह आया।

वह आया!

वह आया?

बलाघात : यह ध्वनि के उच्चारण में प्रयुक्त बल की मात्रा है जिससे किसी भाषिक इकाई (ध्वनि, अक्षर, शब्द, वाक्यांश, वाक्य) का उच्चारण किया जाता है। स्तरों के आधार पर बालाघात के भेद हैं – ध्वनि बलाघात, अक्षर बलाघात, शब्द बलाघात, वाक्यांश बलाघात और वाक्य बलाघात। उदाहरण के लिए :

मुझे एक लाल रंग की गाड़ी चाहिए।

मुझे एक लाल रंग की गाड़ी चाहिए।

मुझे एक लाल रंग की गाड़ी चाहिए।

दीर्घता : किसी ध्वनि के उच्चारण में समय कम लग सकता है या बहुत कम या फिर ज्यादा। उदाहरण के लिए बचा – बच्चा। इसमें ‘च’ ध्वनि दीर्घ है।

अनुनासिकता : जिन स्वरों के उच्चारण में मुख के साथ-साथ नासिका की भी सहायता लेनी पड़ती है वे अनुनासिक कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, सास-साँस।

संगम : बोलने में एक ध्वनि के बाद दूसरी ध्वनि आती रहती है। वक्ता एक ध्वनि समाप्त करके दूसरी ध्वनि का उच्चारण करता है। उदाहरण के लिए तुम + हारे = तुम्हारे, पी + ली = पीली।

15.3.6 स्वनिम विश्लेषण

स्वनिम विश्लेषण सामग्री संचयन और ध्वन्यात्मक लेखन के माध्यम से किया जा सकता है।

सामग्री संचयन : किसी भी जीवित भाषा के स्वनिमों को छाँटने के लिए उसको बोलने वाले व्यक्ति से उस भाषा के वाक्य को सुनकर संकलित किया जाता है। जिस व्यक्ति को माध्यम बनाकर यह कार्य किया जाता है, उसे सूचक कहते हैं। यदि किसी मृत भाषा के स्वनिम का विश्लेषण करना है तो उसके साहित्यिक रूपों से यह कार्य किया जाता है।

ध्वन्यात्मक लेखन : संकलित सामग्री का ध्वन्यात्मक लेखन की सूक्ष्मप्रतिलेखन पद्धति से लिखा जाता है। इससे स्वरों एवं व्यंजनों की सूक्ष्मताओं को संकेत भी किया जा सकता है।

किसी भी भाषा में स्वनिमों को छाँटने के लिए सूचक द्वारा संकलित सामग्री को क्रमबद्ध किया जाता है, उसका तुलनात्मक परीक्षण किया जाता है तथा उसका ध्वनियों के साथ संयोजन किया जाता है। पहले एक चार्ट तैयार करके हर ध्वनि से प्रारंभ होने वाले शब्द का अलग-अलग नोट किया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा हर ध्वनि में अंतर को रेखांकित किया जाता है। विरोधी स्वनिमों को छाँटकर अलग किया जाता है। आदि, मध्य और अंत में प्रत्येक स्वनिम किस ध्वनि से संयुक्त है इसका विवरण भी दिया जाता है।

स्वनिमों के वर्गीकरण के लिए नियम हैं – वितरण और समानता। ये गुण जिन ध्वनियों में पाए जाते हैं वे एक ही वर्ग की ध्वनियाँ हैं। वितरण में यह देखा जाता है कि ये ध्वनियाँ किन परिस्थितियों में आई हैं। समानता में स्थान और प्रयत्न की समानता देखी जाती है।

15.4 : पाठ सार

ध्वनि विज्ञान या स्वन विज्ञान वाक् उत्पादन प्रक्रिया, उच्चारण प्रक्रिया, वायु प्रवाह तंत्र, स्वर और व्यंजनों का वर्गीकरण आदि का अध्ययन करता है। स्वनिम विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें किसी भाषा में प्रयुक्त स्वनिमों (ध्वनिग्रामों) तथा उनसे संबद्ध पूरी व्यवस्था पर विचार किया जाता है। अंग्रेजी 'फोनेमिक्स' के लिए हिंदी में अनेक शब्द प्रचलित हैं – ध्वनिग्राम विज्ञान, स्वनिमी, स्वनिम विज्ञान, स्वन ग्रामिकी, ध्वनि ग्रामिकी, ध्वनि तत्व विज्ञान, ध्वनि मात्रा विज्ञान, वर्ण विज्ञान आदि। इनमें से 'स्वनिम विज्ञान' भारत सरकार द्वारा स्वीकृत नाम है। 'फोन' के लिए 'स्वन' शब्द है। अतः 'फोनीम' को 'स्वनिम' और 'फोनीमिक्स' को स्वनिम विज्ञान कहा जा सकता है।

स्वनिम उच्चरित ध्वनि की लघुतम इकाई है जिससे दो ध्वनियों के बीच अंतर व भिन्नता स्पष्ट होता है। स्वनिम के संबंध में सैद्धांतिक एवं व्यवस्थित रूप में विचार प्रस्तुत करने का श्रेय रूसी विद्वान त्रुवेत्सकाय को जाता है। उन्होंने अपनी पुस्तक में स्वन के संबंध में विचार व्यक्त किया है। स्वनिम एक मूर्त कार्यकारी संप्रत्यय है। यह लघुतम इकाई है, जो किसी अर्थ की भिन्नता प्रकट करती है। उदाहरण के लिए, हिंदी के 'पल' तथा 'फल' शब्दों में अर्थ की भिन्नता स्पष्ट है। यहाँ 'प्' तथा 'फ्' दो अलग स्वनिम हैं।

स्वनिम विज्ञान की मूलतः तीन मूलभूत संकल्पनाएँ हैं – स्वनिम, संस्वन और उपस्वन। ग्लीसन के अनुसार स्वनिम बोलचाल की भाषा के उच्चरित रूप की वह न्यूनतम विशेषता है जिसके द्वारा कही गई बात का कही जाने वाली किसी अन्य बात से अंतर स्पष्ट किया जाता है। स्वनिम के माध्यम से ही ध्वनियों के बीच निहित अंतर को प्रकट किया जा सकता है। किसी एक स्वन का उच्चारण दो व्यक्ति एक समान नहीं करते। यही नहीं, एक व्यक्ति भी एक स्वन का उच्चारण हर बार एक समान नहीं कर पाता। अर्थात उनमें अंतर हो जाता है। परंतु उन अंतरों के आधार पर एक ही स्वन के अनेक रूप हो जाते हैं।।ड। के दो संस्वन हैं –स्पर्श ध्वनि और उत्क्षिप्त ध्वनि। भिन्नता को स्पष्ट करने के लिए उत्क्षिप्त को 'ड़' लिखा जाता है। इन दोनों के प्रयोग का क्षेत्र सुनिश्चित है। उदाहरण के लिए, शब्द के आरंभ में : डाक, डर, आदि; शब्द के बीच में अनुस्वार के बाद : ठंडक, खंडन, कुंडल आदि; शब्द के मध्य में अनुस्वार के पहले : आडंबर, विडंबना आदि; शब्द के मध्य में द्वित्व की स्थिति में : अड्डा, गड्डु-मड्डु।

स्वनिम और संस्वन में मूल अंतर है कि यदि हम किसी स्वनिम को किसी अन्य स्वनिम से बदल लेंगे तब शब्द भी बदल जाएगा तथा उसका अर्थ भी वह न रहेगा। उदाहरण के लिए 'मत' शब्द से 'त' के स्थान पर 'न' का प्रयोग करने से 'मन' शब्द बनता है जिसका अर्थ 'मत' से भिन्न है। पर यदि एक संस्वन के स्थान पर दूसरे संस्वन को रखकर उच्चारण करें तो केवल भिन्न उच्चारण सुनाई देगा पर अर्थ वही रहेगा। स्वनिम में उस भाषा में अर्थभेद करने की क्षमता होती है। उपस्वन या सहस्वन में यह क्षमता नहीं होती। 'सहस्वनिकी के कारण कभी-कभी समय के साथ शब्द अपना रूप बदल लेते हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत के 'व्यवहार' शब्द के हिंदी में दो रूप पाए जाते हैं। कुछ लोग इसमें 'व' को /v/ की भाँति बोलते हैं और कुछ लोग /w/ की भाँति। क्योंकि /व/ की ध्वनि तीख़ी है इसलिए यदि उसके साथ बोला जाए तो उच्चारण नहीं बदलता और 'व्यवहार' ही रहता है। लेकिन अगर 'व' को /w/ की तरह बोला जाए तो इसकी ध्वनि 'उअ' से मिलती-सी होती है और शब्द का उच्चारण पहले 'व्युअहार' और फिर बोलने की सरलता के लिए 'व्योहार' बन जाता है। इसी प्रक्रिया से कुछ लोग 'देवपुर' जैसे नाम को अंग्रेज़ी में 'devpur' लिखते हैं और अन्य क्षेत्रों के लोग इसे 'देओपुर' की तरह उच्चारित कर के अंग्रेज़ी में 'deopur' लिखते हैं।'

स्वनिम दो प्रकार के होते हैं – खंड्य (जिन्हें खंडित किया जा सके) और खंड्येतर (जिन्हें अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सके)। खंड्य ध्वनियों की स्वतंत्र सत्ता होती है, जबकि खंड्येतर ध्वनियाँ खंड्य ध्वनियों पर आधारित होती हैं। इनका अलग उच्चारण भी संभव नहीं। खंड्य स्वनिम वे स्वनिम हैं जिनको अलग-अलग (खंड-खंड) किया जा सकता है। इन्हें खंडीय स्वनिम भी कहा जाता है। हिंदी में स्वर और व्यंजन खंड्य स्वनिम माने जाते हैं। हिंदी भाषा में दस स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वनिम हैं क्योंकि इनके न्यूनतम युग्म हिंदी में मिलते हैं – मिल, मेल, मैल, माल, माल, मील आदि। ये आपस में व्यतिरेकी और अर्थभेदक हैं। हिंदी के अधिकांश व्यंजनों के भी न्यूनतम युग्म मिल जाते हैं – चला, छला, जला, झला।

15.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित विषय स्पष्ट हुए –

1. स्वनिम विज्ञान का अर्थ।
2. स्वनिम विज्ञान का इतिहास।
3. स्वनिम विज्ञान की संकल्पनाएँ।
4. हिंदी स्वनिम व्यवस्था।

15.6 : शब्द संपदा

1. स्वन	=	phone
2. स्वन विज्ञान	=	phonetics
3. स्वनिम विज्ञान	=	phonology
4. स्वनिम	=	ध्वनिग्राम, phoneme
5. उपस्वन या संध्वनि	=	allophone
6. लघुतम इकाई	=	minimal unit
7. वितरण	=	distribution
8. न्यूनतम युग्म	=	minimal pair
9. लेखिम	=	grapheme
10. परिपूरक वितरण	=	complementary distribution
11. मुक्त वितरण	=	free distribution
12. व्यतिरेकी वितरण	=	contrastive distribution
13. खंड्य	=	segmental
14. खंड्येतर	=	supra segmental
15. अनुतान	=	intonation
16. बलाघात	=	stress
17. दीर्घता	=	length
18. सुर	=	pitch, tone
19. अनुनासिकता	=	nasalization
20. संगम	=	juncture

15.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड – (अ)

दीर्घ उत्तर के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिए।

1. स्वनिम की परिभाषा देते हुए उसकी अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. स्वनिंम विज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।

3. वितरण सिद्धांत को समझाइए।

4. खंड्य एवं खंड्येतर स्वनिमों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

5. स्वनिम विज्ञान की मूलभूत संकल्पनाओं को स्पष्ट कीजिए।

खंड – (ब)

लघु उत्तर के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250 शब्दों में दीजिए।

1. स्वनिम विज्ञान किसे कहते हैं? समझाइए।
2. स्वनिम और उपस्वन के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
3. स्वनिम विश्लेषण कैसे किया जा सकता है?
4. अनुतान और बालाघात पर प्रकाश डालिए।
5. सुर लहर और संगम पर टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

i. सही विकल्प चुनिए.

खंड्येतर स्वनिम कौनसी है?

(अ) अनुतान (आ) बलाघात (इ) अनुनासिकता (ई) सभी

स्वनिम विज्ञान की मूलतः मूलभूत संकल्पना कौनसी है –

(अ) स्वनिम (आ) संस्वन (इ) उपस्वन (ई) उपर्युक्त सभी

स्वनिम विज्ञान को अंग्रेजी में क्या कहते है ?

(अ) फोनिमिक्स (आ) इकानामिक्स (इ) पोलेमिक्स (ई) कोई नहीं

हिंदी में 'ड' के ____________संस्वन है .

(अ) 2 (आ) 3 (इ) 4 (ई) 5

ii. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए.

1. खंडेत्तर स्वनिम का ____________नहीं किया जा सकता .
2. जिन स्वरों के उच्चारणों में नासिका की सहायता लेनी पड़ती है उन्हें __________कहते हैं.
3. स्वनिम के _________प्रकार होते हैं .

iii. सुमेल कीजिए.

5. अनुतान अ) Nasalization

6. बलाघात आ) Intonation

7. दीर्घता इ) Juncture

8. अनुनासिकता ई) length

9. संगम उ) stress

15.8 : पठनीय पुस्तकें

1. तिवारी, भोलानाथ (2007 पचासवाँ संस्करण). भाषाविज्ञान

2. भसीन, शारदा (1983). स्वनिम विज्ञान और हिंदी की स्वनिम व्यवस्था

3. रस्तोगी, कविता (2013). भाषाविज्ञान का परिचय. दिल्ली ; अविराम प्रकाशन

इकाई 16: लिपि विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 मूल पाठ : लिपि विज्ञान

16.3.1 'लिपि' शब्द का अर्थ

16.3.2 भाषा और लिपि

16.3.3 लिपि की उत्पत्ति

16.3.4 लिपि का इतिहास

16.3.5 भारतीय लिपियाँ

16.3.6 देवनागरी लिपि

16.3.7 देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

16.3.8 देवनागरी लिपि में वैज्ञानिकता संबंधी कुछ दोष (त्रुटियाँ)

16.3.9 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ (गुण, वैज्ञानिकता)

16.3.10 देवनागरी लिपि के सुधार संबंधी प्रयत्न

16.3.11 कंप्यूटर और देवनागरी

16.4 पाठ सार

16.5 पाठ की उपलब्धियाँ

16.6 शब्द संपदा

16.7 परीक्षार्थ प्रश्न

16.8 पठनीय पुस्तकें

16.1: प्रस्तावना

अपने विचारों के संप्रेषण के लिए सभ्यता के आदिकाल से मनुष्य जाति ध्वनि प्रतीकों का प्रयोग करती आई है। विकास क्रम में इन विचारों को स्थायी रूप प्रदान करने के लिए संजोकर रखने की आवश्यकता पड़ी होगी क्योंकि भाषा में व्यक्त सभी तथ्यों और विचारों को बहुत लंबे समय तक याद रख पाना आसान नहीं रहा होगा। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए इन ध्वनि प्रतीकों के लिए दृश्य प्रतीक का प्रयोग प्रारंभ हुआ जो आगे चलकर वर्णों के रूप में विकसित हो गए। उन वर्ण चिह्नों के माध्यम से उच्चरित भाषा को लिखित भाषा रूप में व्यक्त करने की

व्यवस्था की गई। इन वर्णों को ही लिपि चिह्न कहा जाता है और पूरी वर्ण व्यवस्था को लिपि व्यवस्था। अतः कहा जा सकता है कि लिपि उच्चरित भाषा को रेखांकन द्वारा दृश्य प्रतीकों के रूप में व्यक्त करने के साधन का नाम 'लिपि' है।

16.2 : उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. भाषा और लिपि के बीच निहित अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. लिपि के उद्भव और विकास के बारे जान सकेंगे।
3. भारतीय लिपियों के बारे में बता सकेंगे।
4. देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता एवं विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे|
5. देवनागरी लिपि के सुधार संबंधी प्रयत्नों को समझा सकेंगे|

16.3 : मूल पाठ : लिपि विज्ञान

16.3.1 'लिपि' शब्द का अर्थ

किसी भी भाषा की लिखावट, लिखने के ढंग या लेखन प्रणाली को 'लिपि' कहा जाता है। लिखित रूप भाषा को स्थायित्व प्रदान करता है क्योंकि भाषा का उच्चरित रूप तात्कालिक होता है। लिखित रूप में भाषा को स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से लिपि का आविष्कार हुआ। भाषा ध्वनि समूहों की अभिव्यक्ति है तो लिपि भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों के प्रतीक चिह्न हैं।

'हिंदी शब्द सागर' के अनुसार –

लिपि = अक्षर या वर्ण के अंकित चिह्न। 1. लिखा-वट 2. अक्षर लिखने की प्रणाली वर्ण अंकित करने की पद्धति। 3. लिखे हुए अक्षर या बात।

भारत में लिपि के आविष्कार और प्रचलन के इतिहास के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। लिपि की उत्पत्ति संबंधी अध्ययन करने वाले विदेशी विद्वान भारत की प्राचीन लिपियों को विदेशी (सेमिटिक) लिपियों की संतान मानते हैं तो भारतीय विद्वानों ने इसके भारतीय मूल पर अधिक बल दिया है। इस संबंध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है।

16.3.2 भाषा और लिपि

यह तो सहज समझ में आने वाली बात है कि दुनिया भर में लिपि का विकास भाषा के काफी बाद में हुआ है। भारत भर में श्रुति और स्मृति की परंपरा द्वारा ज्ञान को एक से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप में हस्तांतरित करने का लंबा इतिहास है। वेदों की रचना 5000 ई.पू. से 500 ई.पू. की कालावधि में हुई। माना जाता है कि द्वापर युग में महर्षि व्यास ने उन्हें लिपिबद्ध किया। एक मत यह है कि वर्तमान रूप में वेदों का लिप्यंकन 500 ई.पू. के आस-पास हुआ। स्पष्ट

है कि वैदिक काल में भाषा के स्थूल भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द बने थे। उसके बाद उन्हें लिपिबद्ध करने के लिए 'लिपि' का विकास किया गया।

भाषा और लिपि परस्पर संबंधित हैं। उच्चारण के स्तर पर संसार की सभी भाषाओं में अलग-अलग प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं। सब भाषाओं में कुछ समान ध्वनियाँ भी होती हैं। परंतु विभिन्न लिपियों में वर्णों की आकृति में वैसी समानता प्रायः नहीं मिलती क्योंकि हर भाषा की लिपि व्यवस्था ऐच्छिक होती है। अलग-अलग भाषा-समाज ने अपनी इच्छा से अपनी-अपनी लिपि व्यवस्था में अलग-अलग ध्वनियों के लिए अलग-अलग तरह के वर्ण बनाए हैं। उदाहरण के लिए 'ब' ध्वनि देवनागरी लिपि में 'ब' वर्ण के माध्यम से और रोमन लिपि में 'b' वर्ण के माध्यम से व्यक्त की जाती है।

भाषा के माध्यम से मौखिक संप्रेषण के लिए वक्ता और श्रोता का निकट होना अथवा बोलने-सुनने की सरणि द्वारा जुड़े होना आवश्यक है अन्यथा मौखिक संप्रेषण बाधित हो जाएगा। दूसरी ओर लिपिबद्ध भाषा में पाठक के समक्ष लेखक की कोई आवश्यकता नहीं है। आज से हजारों साल पहले भी किसी ने कोई बात लिखी है तो हम आज भी उसे पढ़ कर लेखक के विचारों से अवगत हो सकते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि 'भाषा जहाँ ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है वहीं लिपि दृश्य प्रतीकों (वर्णों) की व्यवस्था है। भाषा के इन ध्वनि प्रतीकों के लिए लिपि चिह्न बनाए जाते हैं और ये लिपि चिह्न यादृच्छिक होते हैं|'

बोध प्रश्न

- भाषा व लिपि का क्या संबंध है ?

16.3.3 लिपि की उत्पत्ति

जैसा कि पहले भी संकेत किया गया, लिपि के आरंभ के विषय में सर्वसम्मति संभव नहीं है। फिर भी लिपि के संबंध में भाषा की तुलना में अच्छे प्रमाण मिलते हैं क्योंकि लिपि उच्चारण से नहीं, बल्कि रेखाओं से संबंध रखती है। लिपि किसी भाषा के दृश्य प्रतीकों की व्यवस्था का नाम है। उसे आँखों से देखा जा सकता है। इसीलिए उसके प्राप्त प्रमाण भी स्थूल व पुष्ट हैं। विश्व भर में लिपि के अति प्राचीन नमूने प्राप्त हुए हैं। यहाँ तक कि आज तक प्राप्त कुछ लिपियाँ ऐसी हैं, जिनको पढ़ना अभी तक संभव नहीं हो सका है।

भारत में वेदों जैसे प्राचीनतम साहित्य की उपलब्धि के बावजूद यह संयोग ही है कि विश्व की प्राचीन लिपियों की तुलना में भारत की प्राचीन लिपियाँ अर्वाचीन हैं। भारतीय लिपियों की प्राचीनता केवल ई.पू. 500 वर्ष है। इसके काफी पहले विश्व में अनेक लिपियों का विकास हुआ। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार विश्व में ई.पू. 10000 वर्ष पहले ही अव्यवस्थित लिपि के प्रयास हुए हैं। वहीं विश्व में व्यवस्थित लिपि की प्राचीनता ई.पू. 4000 वर्ष तक नहीं जाती है। लगभग ई.पू. 10000 और ई.पू. 4000 के बीच में अर्थात लगभग 6000 वर्षों में व्यवस्थित

लिपि का धीरे-धीरे विकास हुआ। उन प्रकारों में चित्र लिपि, सूत्र लिपि, प्रतीकात्मक लिपि, भावमूलक लिपि, भाव-ध्वनिमूलक लिपि और ध्वनिमूलक लिपि मुख्य हैं। इनमें चित्र लिपि अति प्राचीन है तो ध्वनिमूलक लिपि अत्याधुनिक है। इनके बीच में ऐतिहासिक संबंध होने के साथ-साथ विकास को रेखांकित किया जा सकता है। इन लिपियों के नमूने विश्व के कोने-कोने में प्राप्त हुए हैं। अत्याधुनिक लिपि ध्वनिमूलक लिपि का आगे और विकास हुआ। उसके दो रूप हैं – आक्षरिक लिपि और वर्णिक लिपि। आक्षरिक लिपि में लिपि चिह्न अक्षर का प्रतिनिधित्व करता है। भारत की सभी लिपियाँ आक्षरिक हैं। जैसे नागरी, अजंता आदि। वर्णिक लिपि में लिपि चिह्न वर्ण या ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे रोमन लिपि।

16.3.4 लिपि का इतिहास

अब तक आप समझ गए होंगे कि लिपि का मूल गुण उसकी 'चित्रात्मकता' है। लिपि से अभिप्राय है – ध्वनि का रेखाओं द्वारा अक्षरों के रूप में लिखना। इस मूल गुण को आधार बनाकर विश्व की लिपियों को दो वर्गों में बाँटा गया है – अक्षर या वर्णहीन लिपि (क्यूनीफ़ॉर्म तथा चीनी लिपि) और अक्षर या वर्ण सहित लिपि। विश्व की सारी लिपियों को इन दोनों वर्गों में रखा जा सकता है। जैसे : क्यूनीफ़ॉर्म लिपि के अंतर्गत क्यूनीफ़ॉर्म, चीनी लिपि, सिंधु घाटी लिपि, हीरोग्लाफिक, क्रीट की लिपि, हिट्टाइट लिपि, प्राचीन अमेरिकन लिपि। अक्षर या वर्ण सहित लिपि के अंतर्गत सामी लिपि, आर्मेइक लिपि, भारतीय लिपि, हिब्रू लिपि, खरोष्ठी लिपि, अरबी लिपि, ग्रीक लिपि, लैटिन लिपि, फोनेशियन लिपि आदि। इन सारी लिपियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। भारत की प्राचीन लिपियाँ किसी एक वर्ग के अंतर्गत नहीं बल्कि दोनों वर्गों के अंतर्गत आती हैं। जैसे भारत की प्राचीन लिपि सिंधु घाटी लिपि क्यूनीफ़ॉर्म वर्ग के अंतर्गत और खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपियाँ अक्षरमूलक या वर्णिक वर्ग के अंतर्गत आती हैं। इससे भारत की प्राचीन लिपियों की विविधता का पता चलता है।

यह माना जाता है कि भाषा को स्थायित्व देने के लिए मनुष्य ने 'चित्रलिपि' का निर्माण पहले किया। जिस वस्तु को वह लिपिबद्ध करना चाहता था| उसका स्थूल या सूक्ष्म चित्र बना देता था। इस प्रकार भाषा में संप्रेषणीयता एवं स्थायित्व दोनों का निर्वाह होने लगा। पर चित्रलिपि की अपनी सीमाएँ एवं त्रुटियाँ थीं। वह केवल स्थूल भौतिक वस्तुओं को अंकित करने में काम आती थी। संतोष, प्यार, गुस्सा, निराशा जैसे भावों का संप्रेषण उस लिपि के माध्यम से नहीं किया जा सकता था| इस त्रुटि में सुधार लाते हुए, लिपि-निर्माण के अगले चरण में 'भावलिपि' का आविष्कार हुआ। इसमें वस्तुओं के यथार्थ चित्र न खींचकर उनके भावों को प्रकट करने के लिए कुछ सीधी-टेढ़ी रेखाएँ (वर्तमान के व्यंग्य चित्र जैसे) खींची जाती थीं। भावलिपि

में चित्रलिपि की अपेक्षा लाघव एवं संक्षिप्तता आई। पर यह सबके लिए आसानी से समझी जाने वाली परिपूर्ण लिपि नहीं थी। मनुष्य की शोधबुद्धि ने आगे चलकर 'ध्वनिलिपि' की खोज की। लिपि के विकास में ध्वनिलिपि सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है, क्योंकि इसमें भाषा की प्रत्येक ध्वनि को अंकित करने की क्षमता पाई जाती है। देवनागरी, अरबी, रोमन आदि लिपियाँ ध्वनिलिपि ही हैं।

बोध प्रश्न

- चित्र लिपि को लिपिबद्ध कर किन-किन आवेगों को कैसे व्यक्त किया जाता है ?

16.3.5 भारतीय लिपियाँ

भारतीय लिपियों की प्राचीनता के बारे में पर्याप्त मतभेद है। वैसे एक मान्यता के अनुसार प्रथम जैन तीर्थंकर के रूप में प्रतिष्ठित आदिनाथ ऋषभदेव ने असि, कृषि और मसि की खोज की। मसि का अर्थ है – स्याही (इंक)। अतः इसे लेखन कला या लिपि का उदय भी माना जाता है। इसी को पौराणिक भाषा में व्यक्त करते हुए कहा गया कि ऋषभ की एक पुत्री का नाम 'ब्राह्मी' था – वही ब्राह्मी लिपि की आविष्कर्ता थी।

प्राचीन भारत में कितनी लिपियाँ प्रचलित थीं, इससे संबंधित सामग्री पुस्तकें, पुराने सिक्के और शिलालेख के रूप में प्राप्त होती हैं। पुराने सिक्के और शिलालेखों के अनुसार सिंधु घाटी लिपि, खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि प्राचीन लिपियों के अंतर्गत आती हैं। इनके अतिरिक्त उस समय के ग्रंथों में बड़ी संख्या में भारतीय प्राचीन लिपियों का उल्लेख मिलता है। जैन ग्रंथ 'पन्नवणा सूत्र' में 18 लिपियों के नाम दिए गए हैं। इसी प्रकार बौद्धों के धर्म-ग्रंथ 'ललित विस्तर' में 64 भारतीय लिपियों के नाम दिए गए हैं। इनमें से सिंधु घाटी लिपि, खरोष्ठी लिपि और ब्राह्मी लिपि से संबंधित सामग्री उपलब्ध है।

(i) सिंधु घाटी लिपि

सिंधु घाटी में प्रचलित होने के कारण इसका नाम 'सिंधु घाटी' लिपि पड़ा। हरप्पा-मोहनजुदाड़ो की खुदाई में इस लिपि से संबंधित प्रमाण मिले हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के साथ इसका संबंध है। इसकी काल सीमा ई.पू. 3000 माना जाता है। इसकी उत्पत्ति के बारे में मतभेद भी है। एल.ए. वैडेल तथा डॉ. प्राणनाथ के अनुसार सिंधु घाटी लिपि का विकास 'सुमेरी लिपि' से हुआ है। सुमेरी लिपि में कुछ चित्र भी थे। यह लक्षण सिंधु घाटी लिपि में भी प्राप्त होता है। एच. हेरास ने सिंधु घाटी लिपि की उत्पत्ति द्रविड उत्पत्ति मानी है। इनके अनुसार सिंधु घाटी की सभ्यता द्रविडों की थी और वे लोग इस लिपि के जनक तथा विकास करने वाले थे। इस तर्क के कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते। कुछ भाषावैज्ञानिकों के अनुसार आर्यों ने इस लिपि का

निर्माण किया। यह भी कल्पना पर आधारित है। कहने का अर्थ है कि सिंधु घाटी लिपि के नमूने तो प्राप्त हुए, लेकिन उसकी उत्पत्ति के बारे में कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता।

सिंधु घाटी की लिपि चित्रात्मक एवं अक्षरमूलक लिपि के लक्षणों से युक्त है। यह लिपि अधूरी है। अभी तक इस लिपि को पूरी तरह पढ़ना और व्यवस्थित रूप देना संभव नहीं हो पाया है।

(ii) खरोष्ठी लिपि

'खरोष्ठी' का शाब्दिक अर्थ है 'खर + ओष्ठी' अर्थात गधे के ओंठ के समान। संभवतः देखने में कुरूप होने के कारण इसे यह नाम दिया गया हो। परंतु इसके नामकरण के संबंध में कई मत उपलब्ध हैं –

(1) 'फा-वान-शु-लिन' चीनी कोश के अनुसार खरोष्ठ नामक भारतीय विद्वान ने इसका आविष्कार किया, इसलिए इसे 'खरोष्ठी' कहा गया है।

(2) कुछ विद्वानों के अनुसार गधे की चमड़ी पर इसे लिखने के कारण ईरानी भाषा में इसे 'खर पोश्ती' कहा गया और उसी से 'खर पृष्ठी' और फिर खरोष्ठी शब्द विकसित हुआ।

(3) कुछ विद्वानों के अनुसार हिब्रू में 'खरोशेय' शब्द का अर्थ है – लिखावट। उसी से प्राकृत शब्द 'खरोष्ठ' बना। बाद में यह 'खरोष्ठी' के रूप में विकसित हुआ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि खरोष्ठी लिपि भारतीय लिपि है। भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में यह अधिक प्रचलित थी। अन्य भारतीय लिपियों के साथ इसका साम्य काफी कम है। यह शुद्ध रेखात्मक लिपि थी। यह मुख्यतः ई.पू. तीसरी शती में व्यवहार में थी। बाद में ब्राह्मी के प्रभाव के कारण इसका महत्व कम हो गया।

खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति के संदर्भ में जी. बूलर का मत अधिक प्रचलित है। उन्होंने इसका विकास आर्मेइक से माना है क्योंकि खरोष्ठी लिपि भी आर्मेइक लिपि की तरह दायें से बाएँ लिखी जाती है। उनके अनुसार खरोष्ठी की 11 ध्वनियाँ तथा उनके लिपि चिह्न आर्मेइक ध्वनियों एवं लिपि चिह्नों से मिलते-जुलते हैं। जैसे खरोष्ठी के क, ज, द, न, ब, य, र, व, ष, स, ह और आर्मेइक के काफ्, जाइन, शलेथ्, न, नू, बै, था, यो, ध, रेश, वाव्, शिन्, त्सार्ध, हे पूरी तरह मिलते-जुलते हैं। एक तर्क यह भी उन्होंने दिया कि आर्मेइक लिपि खरोष्ठी लिपि से पुरानी है। परंतु डॉ. राजबली पांडेय ने इसे शुद्ध भारतीय लिपि माना है। परंतु वे अपने मत के समर्थन में कोई ठोस प्रमाण नहीं दे सके।

खरोष्ठी लिपि की विशेषताएँ

(1) आरंभ में खरोष्ठी लिपी दायें से बाएँ लिखी जाने पर भी ब्राह्मी लिपि के प्रभाव के बाद उसी के अनुरूप बाएँ से दायें लिखी जाने लगी थीं।

(2) आरंभ में इसमें स्वरों का अभाव था। वृत्त, रेखा या अन्य चिह्नों के माध्यम से स्वरों को लिखना ब्राह्मी के प्रभाव के बाद शुरू हो गया था। ह्रस्व व स्वर ब्राह्मी से अधिक प्रभावित हुए।

(3) म, घ तथा ध के लिपि चिह्न आर्मेइक में नहीं थे। ब्राह्मी के कारण खरोष्ठी में इनका भी विकास हुआ है।

(4) यह एक कामचलाऊ लिपि थी। अधिकांश अंदाज से प्रयोग से पढ़ी जाती थी।

(5) खरोष्ठी लिपि में मात्राओं का प्रयोग कम था। मुख्य रूप से र्, र्व स्वर तथा आ, ई, ऊ, ऐ और औ का सर्वथा अभाव है।

(6) संयुक्त व्यंजन ध्वनि चिह्न भी नहीं के बराबर हैं। इसकी वर्ण माला में वर्णों की कुल संख्या 37 है। ईसा पहली सदी के बाद खरोष्ठी लिपि प्रयोग से दूर हो गई।

(iii) ब्राह्मी लिपि

खरोष्ठी लिपि की तरह ब्राह्मी लिपि के संदर्भ में व्यक्त किए गए विचार भी कल्पानाधारित हैं। किसी भी विचार के पीछे कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं है। ऐसे में ब्राह्मी लिपि का नामकरण अनिर्णीत ही है। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति को लेकर व्यक्त किए गए विचारों को दो वर्गों में रखा जा सकता है – (1) पहले प्रकार के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति किसी विदेशी लिपि में हुई है। (2) दूसरे प्रकार के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति भारत में हुई है।

बोध प्रश्न

1. भारत में जिन लिपियों का आविष्कार हुआ उनके नाम व विशेषताएँ क्या है ?

विदेशी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति

इस वर्ग के अंतर्गत सर्वाधिक तर्क ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति आर्य लिपि से हुई, के पक्ष में दिए गए हैं। खासकर बेबर, कस्ट, बेनफ आदि ने सामी लिपि की फोनीशियन शाखा से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति मानी है। ब्राह्मी लिपि की विदेशी उत्पत्ति को स्वीकार करने वालों की मुख्य स्थापनाएँ ये हैं –

(i) सिंधु घाटी लिपि चित्रात्मक या भाव ध्वनिमूलक लिपि है। उससे ब्राह्मी का विकास मानना गलत है क्योंकि ब्राह्मी वर्णात्मक या आक्षरिक है।

(ii) उत्तरी सामी और ब्राह्मी में अधिक साम्य है।

(iii) ब्राह्मी आरंभ में सामी की तरह दायें से बाएँ लिखी जाती थी।

(iv) भारत में ई.पू. 5वीं सदी के पहले के लिपि नमूने नहीं मिलते हैं।

परंतु कुछ भारतीय विद्वानों ने मुख्यतया गौरीशंकर ओझा तथा डॉ. भोलानाथ तिवारी जैसों ने इस मत का खंडन करते हुए अपने तर्क प्रस्तुत किए हैं-

(i) लिपि का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि चित्रात्मक लिपि से भी ध्वनिमूलक व वर्णात्मक लिपि का विकास हुआ है। वैसे भी सिंधु घाटी लिपि पूर्ण चित्रात्मक नहीं है।

(ii).उत्तरी सामी और ब्राह्मी लिपि में साम्य कम है। बूलर के द्वारा दिया गया अक्षरों का विकास क्रम हास्यास्पद इसलिए है कि ऐसा विकास क्रम किसी भी लिपि से दिया जा सकता है। ऐसे में दोनों लिपियों में पाए जाने वाले साम्य उनके बीच के संबंध को प्रमाणित करने में असफल ही होंगे।

(iii). आरंभ में ब्राह्मी लिपि दायें से बाएँ लिखी जाती थी। इसके समर्थन में जो नमूने प्राप्त हुए हैं, वे बहुत कम हैं। यह भी सही है कि एक ही नमूने में बारी-बारी से दायें से बाएँ पुनः बाएँ से दायें लिखे जाने के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि लिखने वाला या तो प्रयोग कर रहा था या खिलवाड़|

(iv) चौथे विचार के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि संभावित सभी खुदवाइयों के बाद ही इस निष्कर्ष पर पहुँचना ठीक होगा कि ब्राह्मी लिपि के ई.पू. 5 वीं सदी के पहले के नमूने प्राप्त नहीं होते हैं। अभी ख़ुदवाई जारी है। किसी भी समय नए प्रमाण सामने आने की पूरी संभावना है।

इन सभी तर्कों के साथ डॉ. गौरीशंकर ओझा आदि ने ब्राह्मी की किसी विदेशी उत्पत्ति का खंडन किया है। उसे शुद्ध भारतीय लिपि से विकसित होने के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

ब्राह्मी की भारतीय उत्पत्ति

ब्राह्मी की भारतीय उत्पत्ति के संदर्भ में चार प्रमुख मत हैं –

1. एडवर्ड थॉमस का मत
2. आर. शाम शास्त्री का मत
3. जगमोहन वर्मा का मत
4. डाउसन, लासन, थॉमस आदि का मत

एडवर्ड थॉमस ने ब्राह्मी को द्रविड उत्पत्ति माना है, लेकिन डॉ. राजबली पांडेय ने इस मत का खंडन किया। आर. शाम शास्त्री ने ब्राह्मी की उत्पत्ति सांकेतिक चिह्नों से मानी है, लेकिन डॉ. गौरीशंकर ओझा ने इस मत का खंडन किया है। जगमोहन वर्मा ने वैदिक चित्र लिपि से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति मानी है। प्रमाणों के अभाव मैं यह भी स्वीकार्य नहीं है। डाउसन, लासन, थॉमस आदि के अनुसार ब्राह्मी का विकास आर्यों ने भारत में आने पर वहाँ की प्राचीन किसी चित्रलिपि से किया है। बूलर ने पहले इस मत का विरोध किया था लेकिन सिंधु घाटी के नमूने प्राप्त होने पर बूलर के विचारों का महत्व नहीं रहा।

इस प्रकार ब्राह्मी की उत्पत्ति बहुत विवादास्पद बनी है। इस संदर्भ में डॉ. गौरीशंकर ओझा के विचार उल्लेखनीय हैं। “जीतने प्रमाण मिलते हैं, चाहे प्राचीन शीला लेखों के अक्षरों की शैली और चाहे साहित्य के उल्लेख, सभी यह दिखाते हैं कि लेखन कला अपनी प्रौढ़ावस्था में थी। उनके आरंभिक विकास का पता नहीं चलता है। ऐसी दशा में यह निश्चितपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ब्राह्मी लिपि का आविष्कार कैसे हुआ और इस परिपक्व रूप में वह किन-किन परिवर्तनों के बाद पहुँची। निश्चय के साथ इतना ही कहा जा सकता है कि इस विषय के प्रमाण जहाँ तक मिलती हैं, वहाँ तक ब्राह्मी लिपि अपनी प्रौढ़ अवस्था में और पूर्ण व्यवहार में आती हुई मिलती है और उसका किसी बाहरी स्रोत और प्रभाव से निकलना सिद्ध नहीं होता।”

ब्राह्मी लिपि की विशेषताएँ

1. ब्राह्मी लिपि अपने समय की वैज्ञानिक, सर्वश्रेष्ठ, सार्वभौमिक लिपि थी। हिंदुओं के संस्कृत ग्रंथों के साथ हिंदुओं की भाषा का विरोध करने वाले जैन-बौद्धों ने भी अपने ग्रंथों में इसे स्थान दिया था।

2. ब्राह्मी लिपि बाएँ से दायें लिखी जाने वाली लिपि है। इसके अक्षर प्रायः सीधे होते थे।

3. अधिकांश अक्षरों के अंत में तथा कुछ के प्रारंभ और अंत दोनों स्थानों में सीधी रेखाएँ होती थीं। किंतु केवल प्रारंभ में सीधी रेखा से युक्त अक्षरों का उस में नितांत अभाव था।

4. ब्राह्मी लिपि संस्कृत एवं प्रकृत भाषाओं के लिए लगभग 350 ई.पू. से लेकर 350 ई. तक सिर्फ भारत में ही नहीं कतिपय पड़ोसी देशों में भी प्रयुक्त होती थी।

5. ब्राह्मी लिपि में कुल 64 वर्ण थे। बाद में प्राकृत काल में ये 46-47 ही रह गए।

ब्राह्मी से अन्य भारतीय लिपियों का विकास

350 ई.पू. बाद ब्राह्मी लिपि में परिवर्तनों का दौर शुरू हो गया। डॉ. गौरीशंकर ओझा के अनुसार “हस्तलिखित लिपियों में सर्वत्र ही समय के साथ और लेखक की रुचि के अनुसार परिवर्तन हुआ करता है। ब्राह्मी में भी समय के साथ बहुत परिवर्तन हुआ और उससे कई लिपियाँ निकलीं जिनके अक्षर मूल अक्षरों से बिलकुल बदल गए।“ लिपि वैज्ञानिकों के अनुसार ई. चौथीं सदी के उत्तरार्ध में ब्राह्मी की दो प्रमुख शैलियाँ विकसित हुई – उत्तरी शैली और दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली का प्रचार प्रायः विंध्य पर्वत के उत्तर में तथा दक्षिणी शैली का प्रचार मुख्य रूप से दक्षिण में हुआ। इस रूप में उत्तर भारत की सभी परवर्ती लिपियाँ ब्राह्मी की उत्तरी शैली से और दक्षिण भारत की सभी परवर्ती लिपियाँ दक्षिणी शैली से विकसित हुई हैं।

उत्तरी शैली से विकसित लिपियाँ

उत्तरी शैली से विकसित लिपियाँ इस प्रकार हैं -

(1) गुप्त लिपि

इस लिपि का नाम गुप्तवंशी शासकों के लेखों में प्रयुक्त होने के कारण गुप्त लिपि पड़ा। इसका उद्भव काल ईसा चौथी सदी है।

(2) कुटिल लिपि

इसका उद्भव काल ईसा छठी सदी है। अक्षरों की आकृति कुटिल (टेढ़ी) होने के कारण इसका नाम कुटिल लिपि पड़ा। इसका विकास गुप्त लिपि से माना जाता है। कुटिल लिपि से नागरी और शारदा लिपियों का विकास माना जाता है।

(3) प्राचीन नागरी

इसे दक्षिण में नंदीनागरी भी कहते थे। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से बंगला, मैथिली, कैथी, नेवारी, उडिया, आसामिया और प्राचीन मणिपुरी आदि लिपियों का और पश्चिमी शाखा से महाजनी, राजस्थानी, गुजराती, नागरी आदि लिपियों का विकास हुआ।

(4) शारदा लिपि

इस लिपि का प्रचार कश्मीर और पंजाब प्रांत में पाया जाता है। वर्तमान कश्मीरी, मंडेआली, डोगरी, चंबा, सिरमौरी, जौनसारी, कुल्लई, मुलतानी, सिंधी तथा गुरुमुखी लिपियों की उत्पत्ति शारदा लिपि से हुई है।

दक्षिणी शैली से विकसित लिपियाँ

दक्षिणी शैली से विकसित लिपियाँ हैं पश्चिमी, मध्य परदेशी, तेलुगू-कन्नड, ग्रंथ-लिपि, तमिल लिपि, कलिंग लिपि।

ब्राह्मी से अन्य भारतीय लिपियों

(उत्तरी शैली)	**(दक्षिणी शैली)**
(1) गुप्त लिपि	(1) पश्चिमी लिपि
(2) कुटिल लिपि	(2) मध्य लिपि
(3) प्राचीन नागरी	(3) तेलुगु-कन्नड लिपि
(i) पूर्वी शाखा (बंगला, मैथिली, उड़िया आदि)	(4) ग्रंथ-लिपि
(ii) पश्चिमी शाखा (महाजनी, राजस्थानी, गुजराती आदि)	(5) तमिल लिपि
(4) शारदा लिपि (कश्मीरी, गुरुमुखी आदि)	(6) कलिंग लिपि

बोध प्रश्न

- उत्तरी व दक्षिणी लिपियों में क्या अंतर है ?

16.3.6 देवनागरी लिपि

देवनागरी लिपि का उद्भव कुटिल लिपि से होने की बात बहुत से विद्वानों ने स्वीकार की है। देवनागरी लिपि के नामकरण के संबंध में कई मतभेद हैं। कुछ इस प्रकार हैं –

(1) मुख्य रूप से नगरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम नागरी पड़ा है।

(2) गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा अपनाए जाने के कारण इसका नाम नागरी पड़ा।

(3) देवनगर अर्थात काशी में प्रचार होने के कारण इस लिपि का नाम देवनागरी पड़ा।

(4) देवभाषा संस्कृत के लिए प्रयुक्त होने के कारण यह लिपि देवनागरी कहलाई गई।

(5) कुछ तांत्रिक यंत्रों के चिह्न – जो देवनागर कहलाते थे, के आधार पर इस लिपि का नाम देवनागरी पड़ा।

(6) बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तार में उल्लेखित नाग लिपि ही बाद में नागरी नाम से प्रचलित हुई होगी।

16.3.7 देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

किसी भी भाषा की उच्चरित समस्त ध्वनियों को अंकित करने की क्षमता रखने वाली लिपि ही पूर्ण और वैज्ञानिक कहलाएगी। संसार की अन्य लिपियों की तुलना में देवनागरी की पूर्णता एवं वैज्ञानिकता सर्वोपरि है। इस संबंध में ध्वनि लिपि के प्रख्यात विद्वान सर इसाक पिटमैन का कथन - संसार में यदि कोई सर्वांगपूर्ण और सर्वोत्तम वर्णमाला है तो वह देवनागरी ही है – उल्लेखनीय है। देवनागरी की वैज्ञानिकता का प्रमाण निम्नलिखित रूप से अंकित किया जा सकता है –

(i) यह लिपि वर्णात्मक है और इसमें संसार की लगभग सभी भाषाओं की ध्वनियों को उच्चरित एवं अंकित करने के लिए लिपि चिह्न मौजूद हैं।

(ii) इस लिपि के वर्ण उच्चारण के अनुरूप हैं। ध्वनि और लिपि मैं सामंजस्य हैं। अर्थात जो बोला जाता है वही लिखा जाता है और जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। इसमें रोमन और अरबी लिपि की तरह उच्चारण और लेखन में भेद नहीं है।

(iii) प्रत्येक उच्चरित ध्वनि के लिए इसमें अलग-अलग चिह्न हैं। रोमन लिपि में एक ध्वनि के लिए अनेक संकेतों का प्रयोग किया जाता है, जैसे 'क' के लिए K (King), C (Cat), Q (Queen), CH (Chemistry) आदि। अरबी में भी इसी तरह एक ध्वनि के लिए कई वर्ण हैं, जैसे 'ज' के लिए जे, जाद, जो, जाल संकेतों का प्रयोग किया जाता है। रोमन लिपि में एक संकेत से कई ध्वनियाँ व्यक्त की जा सकती हैं – जैसे 'a' से बने rat, ball, many, was शब्दों में 'a' की उच्चरित ध्वनियाँ अलग-अलग है, उसी प्रकार 'u' से बने शब्द 'but', 'cut' और 'put' में भी

यह अलगाव को देखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य है कि एक लिपि संकेत से अनेक ध्वनियों की अभिव्यंजना और एक ध्वनि के लिए अनेक संकेतों का प्रयोग लिपि संबंधी बहुत बड़ी कमी मानी जाती है। देवनागरी इससे मुक्त लिपि है।

(iv) स्वरों की मात्रा-चिह्न व्यंजनों पर भी लगते हैं।

(v) अन्य सभी लिपियों की तुलना में देवनागरी में अधिक स्वर हैं।

(vi) व्यंजन संयोगों को लिखने के लिए अत्यंत उत्तम पद्धति है। बड़ी आसानी से संयुक्त व्यंजन की प्रथम और द्वितीय ध्वनियाँ पहचानी जा सकती हैं।

(vii) यह लिपि 'सुपाठ्य' है और 'संदेहरहित' है। अर्थात इस लिपि के किसी एक संकेत में दूसरे संकेत का भ्रम नहीं होता।

बोध प्रश्न

- देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता को प्रमाणित कीजिए |

16.3.8 देवनागरी लिपि में वैज्ञानिकता संबंधी कुछ दोष (त्रुटियाँ)

भारत में मुद्रण और मीडिया के विकास के अनुरूप देवनागरी लिपि में परिवर्तन नहीं किए गए। फलस्वरूप इसमें कुछ दोष दिखाई पड़ते हैं जो इस प्रकार हैं –

(i) अक्षरों की द्वैतता : देवनागरी का प्रयोग भारत के कई सुदूर स्थित प्रांतों में होता है। इसलिए कुछ अक्षरों को दो रूपों में लिखा जाता है।

(ii) संदिग्धता : कुछ वर्णों में इतना अधिक साम्य है कि वे दूसरे वर्ण की तरह प्रतीत होते हैं, जैसे ख > रव, घ > ध, व > ब, म > भ, ड़ > ङ आदि।

(iii) कई संयुक्ताक्षरों की बहुलता : देवनागरी में संयुक्ताक्षरों के लिए स्वतंत्र लिपि संकेत हैं जो मुद्रण की दृष्टि से असुविधाजनक प्रतीत होते हैं। क्ष (क्षय), श्र (श्रम), ज्ञ (ज्ञान), त्र (त्रिशूल), द्या (विद्या) आदि।

(iv) 'र' के संयोग की तीन स्थितियाँ बनती हैं जो लिपि को अधिक जटिल बना देती हैं। अर्थात अगले व्यंजन के ऊपर (वर्ण), व्यंजन के नीचे (प्रकार) और 'ट' वर्ण के नीचे (ट्राम) आदि।

(v) अनुस्वार और नासिक्य वर्णों का वैकल्पिक प्रयोग लेखन और मुद्रण में द्वैतता और असमंजस लाते हैं। जैसे चंदन > चन्दन, खंडन > खण्डन, आलंबन > आलम्बन, घंटा > घण्टा आदि।

(vi) मात्राएँ : देवनागरी अक्षरात्मक लिपि है। इसमें स्वर व्यंजन के संयोग के लिए मात्राओं का प्रयोग किया जाता है। ये मात्राएँ ऊपर, नीचे, बाएँ, दाएँ चारों तरफ लगाई जाती हैं जो मुद्रण में अधिक स्थान घेरती हैं। जैसे केशव, मौर्य (ऊपर), गुरू, मृत, भूल (नीचे), किसान, नीम,

मीनार, बिना (बाएँ-दाएँ)। इसके अलावा अनुस्वार, अनुनासिकता और विसर्ग भी मात्रा की तरह प्रयुक्त होते हैं। जैसे कंठ, आँख, आदि। जब दो मात्राएँ एक ही वर्ण के साथ एक ही स्थान पर लगाई जाती है तो असुविधा होती है। जैसे सर्दी, आशीर्वाद आदि।

16.3.9 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ (गुण, वैज्ञानिकता)

देवनागरी लिपि की कुछ त्रुटियाँ होने पर भी निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं

(i) देवनागरी लिपि समृद्ध लिपि है। भारतीय भाषाओं और हिंदी में उच्चरित सारी ध्वनियों के लिए इसमें लिपि चिह्न हैं।

(ii) देवनागरी लिपि मूलतः अक्षर लिपि है। यह बाएँ से दाएँ लिखी जाती है।

(iii) देवनागरी में स्वर, व्यंजन, ह्रस्व, दीर्घ सभी के लिए स्वतंत्र लिपि चिह्न हैं।

(iv) 13 स्वर लिपि चिह्न, 35 + 8 व्यंजन लिपि चिह्न देवनागरी में हैं।

(v) देवनागरी में दूसरी लिपियों से आवश्यक चिह्नों को लेने की शक्ति भी है। जैसे फारसी लिपि से नुक्ता को लेकर उससे लिपि चिह्न बनाए गए। जैसे क़, ख़, ज़, फ़, ड़, ढ़, ग़। इसी तरह ऑ को भी नागरी ने अपनाया है।

(vi) भाषा में उच्चरित ध्वनियों को यथासंभव उसी रूप में लिपिबद्ध करने के लिए प्रत्येक के लिए लिपि चिह्न हैं।

(vii) गुजराती लिपि के गुण को आत्मसात करते हुए आज देवनागरी लिपि शिरोरेखा विहीन लिखी जा रही है।

(viii) देवनागरी लिपि के अपने अंक हैं जो प्रायः भारत में ही विकसित हैं|

बोध प्रश्न

- देवनागरी लिपि की विशेषताएँ लिखें |

16.3.10 देवनागरी लिपि के सुधार संबंधी प्रयत्न

अन्य किसी लिपि की तुलना में देवनागरी लिपि अधिक वैज्ञानिक सिद्ध होने पर भी, पूर्णतः दोष-मुक्त नहीं है। इन कमियों के निवारण करते हुए इसमें सुधार लाने के प्रयत्न समय-समय पर होते रहे हैं। स्वयं महात्मा गांधी ने, काका कालेलकर की अध्यक्षता में एक लिपि-सुधार समिति बनाकर देवनागरी को पूर्ण रूप से वैज्ञानिक बनाने के कार्य का शुभारंभ किया था। अनेक वर्षों के प्रयत्न के कारण हिंदी साहित्य सम्मेलन (आगरा) की ओर से लिपि सुधार के संबंध में सुझाव सामने आए। ये निम्न प्रकार के हैं –

(i) नागरी लिपि से शिरोरेखा को हटा देना चाहिए। जहाँ शिरोरेखा न होने पर अक्षरों की बनावट में अस्पष्टता आए वहाँ शिरोरेखा लगाई जा सकते हैं। जैसे भ, म, घ, ध आदि।

(ii) मात्रा के स्वरूप और स्थान में परिवर्तन होना चाहिए। जैसे – 'अ' से ही सभी स्वरों को लिखा जाए। के, कै, के बाद कु, कू का स्थान होना चाहिए।

(iii) प्रत्येक वर्ण ध्वनि उच्चारण के अनुसार ही वर्ग में स्थान पाना चाहिए। इस सुझाव का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है –

- ए, ऐ की मात्राएँ वर्ण के ठीक ऊपर न लगाकर थोड़ा हटाकर लगानी चाहिए।
- उ, ऊ, ऋ की मात्राएँ अक्षर से थोड़ा आगे पंक्ति से सटाकर लगानी चाहिए।
- अनुस्वार और अनुनासिक चिह्न ऊपर अक्षर से थोड़ा आगे हटाकर लगाना चाहिए।
- 'रेफ' के 'र' के स्थान उच्चारण के अनुकूल ही रखना चाहिए।
- संयुक्ताक्षर में 'र' की बनावट सामान्य होनी चाहिए।
- संयुक्ताक्षर में वर्ण उच्चारण क्रम से ही रखना चाहिए।

(iv) दक्षिण की लिपियों में पाए जाने वाले स्वर 'ए' और 'ओ' के लिए अलग लिपि चिह्न बनाना चाहिए।

(v) पूर्ण अनुस्वार ध्वनि के लिए 'O' चिह्न अक्षर के बाद लगाना चाहिए। उदाहरण के लिए गOध (गंध)। अनुनासिक के लिए 'o' का प्रयोग होना चाहिए। जैसे आoसू (आँसू)

(vi) मुद्रण में अक्षर के नीचे फारसी ध्वनियों जैसे बिंदी होगी तो, इसका यह अर्थ होगा कि इसका उच्चारण मूल ध्वनि से कुछ भिन्न है। जैसे – आज़ादी।

(vii) विराम चिह्न पूर्ववत रहे।

(viii) अंकों के स्वरूप इस प्रकार हों – १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०

(ix) प्रचलित 'रव' के स्थान पर गुजराती के 'ख' को अपनाया गया।

(x) अन्य प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित 'ल' का रूप ही अपनाया जाए।

(xi) 'ज्ञ' का वही रूप रहे।

(xii) खड़ी पाई वाले वर्णों के साथ संयुक्ताक्षर बनाते समय, वर्णों का पाई हटाकर संयुक्ताक्षर बनाना चाहिए। जिन वर्णों में खड़ी पाई न हो वहाँ संयोजक चिह्न (-) मानना चाहिए।

(xiii) शिरोरेखा हटने से 'ध' और 'भ' वर्णों को स्पष्ट करने के लिए गुजराती की भाँति इन्हें घुंडी लगाकर लिखना चाहिए।

काका कालेलकर समिति द्वारा सूचित उपर्युक्त सुझाव लिपि सुधार की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। परंतु इनमें व्यावहारिकता कम थी। इसके बाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से

लिपि सुधार के कुछ सुझाव दिए गए। उत्तर प्रदेश की नरेंद्र देव समिति ने सन 1943 के लखनऊ सम्मेलन में कुछ सुधार दिए हैं। उसके अनुसार –

(1) वर्णमाला के अंतर्गत 15 स्वरों को स्थान दिया गया। स्वरों में ऋ, ॠ, लृ को भी रखे गए थे। कुल मिलाकर 36 व्यंजनों को स्थान दिया गया। क्ष, त्र, ज्ञ और ष को भी रखे गए थे।

(2) संयुक्त व्यंजन ऊपर-नीचे न लगाकर आगे-पीछे जोड़ने का सुझाव दिया गया था। जैसे – पक्का, गड्ढा आदि।

(3) स्वर के ऊपर अनुनासिक ध्वनि को सूचित करने के लिए बिंदी का प्रयोग और व्यंजन के ऊपर की अनुनासिकता के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग करने का सुझाव दिया गया था।

(4) विदेशी ध्वनियों के उच्चारण के लिए विशेष सूचक चिह्न लगाने का सुझाव दिया गया था।

नरेंद्रदेव समिति द्वारा दिए गए सुझावों को उस सम्मेलन में तो स्वीकार किया गया था लेकिन कार्य रूप में लाने पर तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा।

शिक्षा मंत्रालय ने 1956 अगस्त को शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन आयोजन किया था। उस सम्मेलन में पूर्व सुझावों पर विचार-विमर्श हुआ और कुछ नए सुधार पेश किए गए। उक्त सभी प्रकार के प्रयत्नों के फलस्वरूप देवनागरी लिपि में कुछ आवश्यक सुधार लाए गए हैं। टंकण और मुद्रण कार्य को ध्यान में रखकर भी नियम बनाए गए हैं। कुछ स्वरों को वर्णमाला से हटाया गया। दूसरी भाषा की ध्वनियों के लिए नए संकेत तथा चिह्नों को स्वीकार किया गया है। इस प्रकार कुछ नए सुधारों को अपनाते हुए देवनागरी लिपि को पूर्ण वैज्ञानिक रूप देने की कोशिश जारी है। कुछ विद्वानों ने देवनागरी के दोषों को ध्यान में रखकर रोमन लिपि को भारतीय भाषाओं के लिए अपनाने की सलाह दी है। देवनागरी लिपि भारतीय संस्कृति के साथ जुड़ी हुई है। इस लिपि का भारत की लगभग सभी भाषाओं के साथ पारिवारिक संबंध है। और भी, इस लिपि में लिखी गई विभिन्न भाषाओं के विपुल साहित्य को रोमन लिपि में लाना असंभव है। अतः देवनागरी लिपि को समय एवं तकनीकी माँग के अनुरूप परिवर्तित-परिवर्धित करते हुए इसकी वैज्ञानिकता एवं उपयोगिता की मात्रा को बढ़ानी चाहिए। आधुनिक समय में देवनागरी लिपि का टंकण कार्य कंप्यूटर द्वारा भी आसानी से किया जा रहा है। यह एक शुभ सूचना है कि इस लिपि को किसी भी नवीन तकनीक के अनुरूप सुधारा जा सकता है।

16.3.11 कंप्यूटर और देवनागरी

देवनागरी का वर्तमान रूप शताब्दियों के प्रयोग पर आधारित क्रमिक विकास का प्रतिफल है। यह लिपि ध्वन्यात्मक लिपि है। लिपि के इतिहास में ध्वन्यात्मक लिपि का सबसे ऊँचा स्थान है। इस लिपि की सबसे बड़ी विशेषता है, इसकी सुनियोजित एवं वैज्ञानिक वर्ण व्यवस्था। अपनी इन तमाम स्वरूपगत विशेषताओं के कारण इस लिपि की संभावनाएँ अनंत हैं।

कंप्यूटर, आधुनिक तकनीकी विकास में एक क्रांतिकारी आविष्कार है। आज कंप्यूटर का प्रवेश जीवन के हर क्षेत्र में हो चुका है। भाषिक अध्ययन और विश्लेषण भी इससे दूर नहीं रहा है। भारतीय भाषाएँ विश्व की कई भाषाओं की तुलना में वाक्य विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, रेखिक (Linear) दृष्टि से अधिक व्यवस्थित है। अमेरिकी वैज्ञानिक रिक ब्रिग्ज़ की धारणा है कि संस्कृत भाषा कंप्यूटर प्रोग्राम की दृष्टि से एक आदर्श भाषा है। इसलिए देवनागरी लिपि से कंप्यूटर पर काम करना सरल साध्य है। रोमन लिपि ध्वन्यात्मक न होने के कारण उसके माध्यम से भारतीय भाषाओं के विश्लेषण-संशोधन का कार्य कंप्यूटर पर करना तर्क संगत नहीं है।

विविधता में एकता भारतीय भाषाओं एवं लिपियों की मूलभूत विशेषता है। इस मूलभूत एकता को ध्यान में रखकर कंप्यूटर ने सभी भारतीय भाषाओं के कुंजीयन (Keying) के लिए एक सामान्य कुंजीपटल (Key Board) का विकास किया है। सभी भारतीय भाषाओं में वर्णमाला का क्रम एक जैसा होने के कारण उसका आंतरिक संदेश (ध्वन्यात्मक संदेश) एक ही होता है। बाहरी संदेश (प्रतीकात्मक या रेखीय स्वरूप – जैसे हिंदी 'अ' और तमिल 'अ' – रेखीय दृष्टि से भिन्न हैं पर ध्वनि की दृष्टि से समान है) भिन्न होता है। इस आंतरिक संदेश की समानता को ध्यान में रखकर भारत सरकार के इलेक्ट्रोनिक विभाग ने सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक समान कोड स्वीकार किया है – जिसका नाम इस्की-8 (ICCII–8) है। इस कोड की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस के माध्यम से किसी भी भारतीय लिपि के जरिए सभी भारतीय भाषाओं का अध्ययन-विश्लेषण का कार्य किया जा सकता है। भारतीय भाषाओं में परस्पर लिप्यंतरण इस तकनीक की और एक विशेषता है जिससे पुस्तकालयों में विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों की अनुक्रमणिका तैयार की जा सकती है। कोश निर्माण में वर्णमाला के अनुसार अक्षर क्रम बनाया जा सकता है। पर्यायवाची कोश या थिसॉरस (thesaurus) के लिए अपेक्षित सुसंगतता (Concordance) की भी तैयारी हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में किया जा सकता है।

इलेक्ट्रोनिक विभाग - भारत सरकार के सहयोग से आई-आई-टी मद्रास में हिंदी की उच्चरित ध्वनियों को देवनागरी लिपि में बदलना और लिपि को ध्वनि में परिवर्तित करने की प्रणाली का विकास किया जा रहा है जिसमें आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई है। सफलता का मुख्य आधार नागरिलिपि की वैज्ञानिकता कहा जा सकता है।

बोध प्रश्न

- 'कम्प्युटर व देवनागरी लिपि'विषय पर एक निबंध 200 शब्दों में लिखें।

16.4 : पाठ सार

किसी भी भाषा की लिखावट, लिखने के ढंग या लेखन प्रणाली को लिपि कहा जाता है। लिखित रूप भाषा को स्थायित्व प्रदान करता है क्योंकि भाषा का उच्चरित रूप तात्कालिक

होता है। लिखित रूप में भाषा को स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से लिपि का आविष्कार हुआ। भाषा ध्वनि समूहों की अभिव्यक्ति है तो लिपि भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों के प्रतीक चिह्न हैं। भाषा और लिपि परस्पर संबंधित हैं। उच्चारण के स्तर पर संसार की सभी भाषाओं में अलग-अलग प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं। सब भाषाओं में कुछ समान ध्वनियाँ भी होती हैं। परंतु विभिन्न लिपियों में वर्णों की आकृति में वैसी समानता प्रायः नहीं मिलती क्योंकि हर भाषा की लिपि व्यवस्था ऐच्छिक होती है। अलग-अलग भाषा-समाज ने अपनी इच्छा से अपनी-अपनी लिपि व्यवस्था में अलग-अलग ध्वनियों के लिए अलग-अलग तरह के वर्ण बनाए हैं। उदाहरण के लिए 'ब' ध्वनि देवनागरी लिपि में 'ब' वर्ण के माध्यम से और रोमन लिपि में 'b' वर्ण के माध्यम से व्यक्त की जाती है।

लिपि का मूल गुण उसकी चित्रात्मकता है। इस मूल गुण को आधार बनाकर विश्व की लिपियों को दो वर्गों में बाँटा गया है – अक्षर या वर्ण हीन लिपि और अक्षर या वर्ण सहित लिपि। जैसे पहले वर्ग के अंतर्गत क्यूनीफ़ॉर्म, चीनी लिपि, सिंधु घाटी लिपि, हीरोग्लाफिक, क्रीट की लिपि, हिट्टाइट लिपि, प्राचीन अमेरिकन लिपि शामिल हैं। दूसरे वर्ग के अंतर्गत सामी लिपि, आर्मेइक लिपि, भारतीय लिपि, हिब्रू लिपि, खरोष्ठी लिपि, अरबी लिपि, ग्रीक लिपि, लैटिन लिपि, फोनेशियन लिपि आदि।

प्राचीन भारत में कितनी लिपियाँ प्रचलित थीं, इससे संबंधित सामग्री पुस्तकों, पुराने सिक्कों और शिलालेखों के रूप में प्राप्त होती हैं। पुराने सिक्कों और शिलालेखों के अनुसार सिंधु घाटी लिपि, खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि प्राचीन लिपियों के अंतर्गत आती हैं। इनके अतिरिक्त उस समय के ग्रंथों में बड़ी संख्या में भारतीय प्राचीन लिपियों का उल्लेख मिलता है। जैन ग्रंथ 'पन्नवणा सूत्र' में 18 लिपियों के नाम दिए गए हैं। इसी प्रकार बौद्ध धर्मग्रंथ 'ललित विस्तर' में 64 भारतीय लिपियों के नाम दिए गए हैं। इनमें से सिंधु घाटी लिपि, खरोष्ठी लिपि और ब्राह्मी लिपि से संबंधित सामग्री उपलब्ध है।

लिपि वैज्ञानिकों के अनुसार ईसा की चौथी सदी के उत्तरार्ध में ब्राह्मी की दो प्रमुख शैलियाँ विकसित हुईं – उत्तरी शैली और दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली का प्रचार प्रायः विंध्य पर्वत के उत्तर में तथा दक्षिणी शैली का प्रचार मुख्य रूप से दक्षिण में हुआ। उत्तर भारत की सभी परवर्ती लिपियाँ ब्राह्मी की उत्तरी शैली से और दक्षिण भारत की सभी परवर्ती लिपियाँ दक्षिणी शैली से विकसित हुई हैं।

हिंदी की लिपि देवनागरी है जो एक प्रमुख आधुनिक भारतीय लिपि है। किसी भी भाषा की उच्चरित समस्त ध्वनियों को अंकित करने की क्षमता रखने वाली लिपि ही पूर्ण और वैज्ञानिक मानी जा सकती है। इस दृष्टि से संसार की अन्य लिपियों की तुलना में देवनागरी की पूर्णता एवं वैज्ञानिकता सर्वोपरि है। इस संबंध में ध्वनि लिपि के प्रख्यात विद्वान सर इसाक पिटमैन का यह

कथन उल्लेखनीय है की संसार में यदि कोई सर्वांगपूर्ण और सर्वोत्तम वर्णमाला है तो वह देवनागरी ही है।

कुछ सीमाओं के बावजूद देवनागरी लिपि अत्यंत समृद्ध लिपि है। भारतीय भाषाओं और हिंदी में उच्चरित सारी ध्वनियों के लिए इसमें लिपि चिह्न हैं। यह मूलतः अक्षर लिपि है और बाएँ से दाएँ लिखी जाती है। इसमें स्वर, व्यंजन, ह्रस्व, दीर्घ सभी के लिए स्वतंत्र लिपि चिह्न हैं। साथ ही, देवनागरी में दूसरी लिपियों से आवश्यक चिह्नों को लेने की शक्ति भी है। जैसे फारसी लिपि से नुक्ता को लेकर उससे लिपि चिह्न बनाए गए। जैसे क़, ख़, ज़, फ़, ड़, ढ़, ग़। इसी तरह ऑ को भी नागरी ने अपनाया है। भाषा में उच्चरित ध्वनियों को यथासंभव उसी रूप में लिपिबद्ध करने के लिए प्रत्येक ध्वनि के लिए लिपि चिह्न हैं तथा इस लिपि के अपने अंक हैं जो प्रायः भारत में ही विकसित हुए हैं।

देवनागरी का वर्तमान रूप शताब्दियों के प्रयोग पर आधारित क्रमिक विकास का प्रतिफल है। यह लिपि ध्वन्यात्मक लिपि है। लिपि के इतिहास में ध्वन्यात्मक लिपि का सबसे ऊँचा स्थान है। इस लिपि की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी सुनियोजित एवं वैज्ञानिक वर्ण व्यवस्था। अपनी इन तमाम स्वरूपगत विशेषताओं के कारण इस लिपि की संभावनाएँ अनंत हैं।

16.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों पर विशद जानकारी प्राप्त हुई –

1. लिपि का अर्थ तथा उसका भाषा में संबंध।
2. लिपि की उत्पत्ति और विकास का इतिहास।
3. भारतीय लिपियों की परंपरा।
4. देवनागरी लिपि और उसकी वैज्ञानिकता।
5. देवनागरी लिपि में सुधारों का इतिहास।

16.6 : शब्द संपदा

1. सार्वभौमिक - जो सर्वत्र प्रचलित हो
2. उच्चारित - बोला गया, जो बोला गया हो
3. कुंजी पटल - की बोर्ड
4. थिसॉरस - पर्यायवाची कोश

167 : परीक्षार्थ प्रश्न

खण्ड (अ)

दीर्घ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।

1. भारत में लिपि का उद्भव एवं विकास क्रम की चर्चा करते हुए देवनागरी लिपि की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2. देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डालिए।

3. देवनागरी लिपि से संबंधित कुछ त्रुटियों को रेखांकित कीजिए।

4. देवनागरी लिपि की सुधारों में उठाए गए कदमों का वर्णन करते हुए सुधार-संबंधी अपना तर्क प्रस्तुत कीजिए।

खण्ड (ब)

लघु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए।

1. सिंधु घाटी लिपि पर प्रकाश डालिए।
2. खरोष्ठी लिपि किसे कहते हैं? उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. ब्राह्मी लिपि किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।
4. शारदा लिपि पर टिप्पणी लिखिए।
5. देवनागरी लिपि के नामकरण से सं्बंधित मतों पर प्रकाश डालिए।
6. आज के कंप्यूटर युग में देवनागरी लिपि की सार्थकता पर विचार कीजिए।

खण्ड (स)

I. सही विकल्प चुनिए

1. संप्रेषण के लिए आदिकाल से मनुष्य जाति किसका प्रयोग करती आई है?
   (अ) ध्वनि प्रतीकों (आ) कम्प्युटर (इ) बोली (ई) लिपि ( )
2. बौद्ध धर्मग्रंथ ‘ललित विस्तर’ में कितनी भारतीय लिपियों के नाम दिए गए हैं?
   (अ) 54 (आ) 64 (इ) 34 (ई) 44 ( )
3. भाषा की लिखावट, लिखने के ढंग या लेखन प्रणाली को क्या कहा जाता है?
   (अ)भाषा (आ) बोली (इ) लिपि (ई) उपभाषा ( )
4. कौनसी भाषा कंप्यूटर प्रोग्राम की दृष्टि से एक आदर्श भाषा है?
   (अ)संस्कृत (आ) हिंदी (इ) बंगला (ई) उड़ीसा ( )
5. किस लिपि से नुक्ता को लेकर उससे लिपि चिह्न बनाए गए?
   (अ)अरबी (आ) फ़ारसी (इ) अफगानिस्तानी (ई) अवधी ( )

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए|

1. देवनागरी लिपि के अपने अंक हैं जो प्रायः ____________में ही विकसित हैं|
2. ___________ लिपि से नागरी और शारदा लिपियों का विकास माना जाता है|
3. 'खरोष्ठी' का शाब्दिक अर्थ है 'खर + ओष्ठी' अर्थात __________ के ओंठ के समान|
4. वेदों की रचना 5000 ई.पू. से __________ ई.पू. की कालावधि में हुई थी |
5. देवनागरी, अरबी, रोमन आदि लिपियाँ ________________ ही हैं|

III. सुमेल कीजिए |

(अ)	**(ब)**
(i) गुरुमुखी लिपि	(i) भाव ध्वनिमूलक लिपि
(ii) सिंधु घाटी लिपि	(ii) शारदा लिपि
(iii) मराठी	(iii) ग्रन्थ-लिपि
(iv) शिरोरेखा विहीन	(iv) देवनागरी
(v) दक्षिणी लिपि	(v) गुजरती लिपि

16.8 : पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान -- डॉ॰ भोलानाथ तिवारी

2. भाषा विज्ञान -- डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना

3.भाषा विज्ञान व हिंदी भाषा का इतिहास -- डॉ॰ शीला मिश्र

4. शर्मा, रामकिशोर (2007). भाषाविज्ञान, हिंदी भाषा और लिपि

5. तिवारी, भोलानाथ. भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा

6. शर्मा, राजमणि (1996). आधुनिक भाषाविज्ञान

7. शर्मा, राजमणि (2010). हिंदी भाषा, इतिहास और स्वरूप

8. शर्मा, देवेंद्रनाथ (1966). भाषाविज्ञान की भूमिका

9. टेकचंदाणी, रवि प्रकाश (मुख्य संपादक, 2016). देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण

परीक्षा प्रश्नपत्र नमूना

MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

PROGRAMME: M.A –HINDI

III – SEMESTER EXAMINATION May - 2024

TITLE & PAPER CODE : भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा का विकास(MAHN303CCT)

TIME: 3 HOURS TOTAL MARKS: 70

यह प्रश्न पत्र तीन भागों में विभाजित हैं- भाग -1, भाग -2 और भाग -3 प्रत्येक प्रश्न के उत्तर निर्धारित शब्दों में दीजिए।

भाग – 1

1. निम्नलिखित विकल्पों में सही विकल्प चुनिए । 10X1=10

i. "नित्याः शब्दार्थसम्बन्धः समाम्नाता महर्षिभिः। " उक्त परिभाषा किनकी है ?

(A) भरतमुनि (B) भोलानाथ तिवारी (C) एलफ्रेड सिजविक (D) भर्तृहरि

ii. निम्न में से 'दुहिता' शब्द का अर्थ कौनसा है ?

(A) गाय दुहने वाली (B) लड़की (c) दूध (D) दुखियाँ

iii. वाक्य के गुणों में यह समाहित नहीं है।

(A) लयबद्धता (B) सार्थकता (C) क्रमबद्धता (D) आकांक्षा

iv. 'नाव में नदी है' - इस वाक्य में किस वाक्य-गुण का अभाव है?

(A) आकांक्षा (B) क्रम (C) योग्यता (D) आसक्ति

v. अधिकतर भारतीय भाषाओँ का विकास किस लिपि से हुआ?

(A) शारदा लिपि (B) खरोष्ठी लिपि (C) कुटिल लिपि (D) ब्राह्मी लिपि

vi. हिंदी भाषा किस लिपि में लिखी जाती है?

(A) गुरुमुखी (B) ब्राम्ही (C) देवनागरी (D) सौराष्ट्री

vii. पारिवारिक वर्गीकरण में भाषिक समानता कितने प्रकार की होती है ?

(B) 2 (B) 3 (C) 4 (D) 5

viii. द्रविड़ परिवार किस खंड के अंतर्गत आता है ?

(B) यूरेशिया (B) अफ्रीका (C) प्रशांत महासागर (D) अमेरिका

ix. हिंदी की बोलियों को कितने भागों में बांटा गया है ?

(A)15 (B) 10 (C) 8 (D) 5

x. भारत संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी को भारतीय संविधान में कब स्वीकृति प्राप्त हुई?

(A) 14 सितंबर 1950 (B) 14 सितंबर 1947

(C) 14 सितंबर 1949 (D) 14 सितंबर 1948

भाग – 2

निम्नलिखित आठ प्रश्नों में से किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए । प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 200 शब्दों में देना आनिवार्य है। 5X6 =30

2. जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से स्वरों के कितने भेद हैं?
3. शब्द व अर्थ का संबंध कैसे समझा जा सकता हैं ?
4. भारोपीय परिवार की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. हिंदी भाषा समाज की बहुबोलीयता पर प्रकाश डालिए।
6. हिंदी के संकर शब्दों पर टिप्पणी लिखिए।
7. हिंदी भाषा समाज की बहुबोलीयता पर प्रकाश डालिए।
8. शब्द, पद और पदबंध क्या है? स्पष्ट कीजिए।
9. अर्थ की परिभाषा व स्वरूप क्या है ? अर्थ की प्रतीति को समझाइए।

भाग- 3

निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं तीन प्रश्नों के उत्तर दीजिए । प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 500 शब्दों में देना अनिवार्य है । 3X10=30

10. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
11. देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डालिए।
12. भाषा की उपयुक्त परिभाषा देते हुए उसकी विवेचना कीजिए।
13. भारोपीय परिवार की भाषाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
14. शब्द की परिभाषा देते हुए उसके प्रमुख लक्षणों पर प्रकाश डालिए।